देश-विदेश 38

अनियतकालीन बुलेटिन

जून-2021

सहयोग राशि तीस रुपये

इस अंक में विशेष

- ★ ऑक्सीजन की कमी से जनता बेमौत मारी गयी
- ★ कोरोना महामारी में जर्जर स्वास्थ्य व्यवस्था
- ★ जोश मलीहाबादी
- ★ खेती-किसानी पर साम्राज्यवादी वर्चस्व
- ★ गाजा पर इजरायल का हमला
- ★ किसान आन्दोलन के आह्वान पर मिट्टी सत्याग्रह यात्रा

देश–विदेश

अनियतकालीन बुलेटिन 38

अंक – 38

जून 2021

सहयोग राशि

तीस रुपये

सम्पादक

उमा रमण

उपसम्पादक

विक्रम प्रताप

सम्पर्क सूत्र

502/10 एस 1 साई कॉम्प्लैक्स,
डी ब्लॉक गली न. 1, अशोक नगर, शाहदरा
दिल्ली 110093

Email : deshvidesh@rediffmail.com

फोन न. : 09818622601

www.deshvidesh.net

उमा रमण द्वारा प्रोग्रेसिव प्रिन्टर्स, ए- 21 झिलमिल इन्डस्ट्रियल एरिया, शाहदरा, दिल्ली-93 से मुद्रित और 502/10 एस 1 साई कॉम्प्लैक्स, डी ब्लॉक गली न. 1, अशोक नगर, शाहदरा दिल्ली-93 से प्रकाशित किया गया।

इस अंक में –

सम्पादकीय

सरकार की बेपरवाही ने लाखों लोगों की जान ले ली 1

कोरोना विशेष

ऑक्सीजन की कमी से जनता बेमौत मारी गयी -विशाल विवेक 6

कोरोना महामारी में जर्जर स्वास्थ्य व्यवस्था -मोहित पुण्डिर 9

कोरोना महामारी : सच्चाई बनाम मिथक -अमित इकबाल 12

जोश मलीहाबादी -विजय गुप्त 15

विश्व साहित्य में महामारी का चित्रण -शैलेन्द्र चौहान 23

कोविड संकट : जनता पर चौतरफा कहर -सीमा श्रीवास्तव 25

समाचार-विचार

कोरोना ने सबको रुलाया 28

अन्तरराष्ट्रीय मीडिया में भारत के कोरोना संकट की रिपोर्ट 29

कश्मीर : यहाँ लाशों की तस्वीर लेना मना है 30

मुस्लिम होने का डर 31

कोरोना और कुम्भ मेला 32

लाशें ढोते भारत में सेन्ट्रल विस्टा! 33

अमरीकी घुसपैठ के आगे नतमस्तक राष्ट्रवादी सरकार 35

सरकार द्वारा लक्ष्यद्वीप की जनता की संस्कृति पर हमला 36

अभिव्यक्ति की आजादी का झूठा भ्रम खड़ा करना 37

समसामयिक विमर्श

भारत के मौजूदा कृषि संकट की अन्तरवस्तु -विक्रम प्रताप 39

खेती-किसानी पर साम्राज्यवादी वर्चस्व -विक्रम प्रताप 44

किसान आन्दोलन के आह्वान पर मिट्टी सत्याग्रह यात्रा 48

किसान आन्दोलन : समसामयिक परिदृश्य -सुरजीत पातर 50

हरियाणा किसान आन्दोलन की समीक्षा -उदय चे 53

गहरे संकट में फँसी भारतीय अर्थव्यवस्था -मोहित पुण्डिर 57

गाजा पर इजरायल का हमला -पारिजात 60

बर्मा में सत्ता संघर्ष और अन्तरराष्ट्रीय खेमेबन्दी -प्रवीण कुमार 64

महामारी में 2020 में वैश्विक सामरिक खर्च में भारी उछाल 70

सम्पादकीय

सरकार की बेपरवाही ने लाखों लोगों की जान ले ली

कोरोना महामारी की दूसरी लहर देशभर में कहर ढा रही है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म-- फेसबुक, वाट्सएप, ट्वीटर, हर रोज किसी करीबी रिश्तेदार, किसी दोस्त, किसी साहित्यकार, पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता, यहाँ तक कि पार्टियों के बड़े नेताओं के मरने की हृदय-विदारक सूचनाओं से भरे हुए हैं। सरकार की लापरवाही और इलाज की बदइन्तजामी को लेकर लोगों में गुस्सा, बेबसी, बदहवासी और विलाप के वीडियो आते रहे। 'मेरे पिता इलाज के बिना मर रहे हैं', 'अलविदा दोस्त ऑक्सीजन बेड नहीं मिलने के कारण मैं दम तोड़ रहा हूँ', 'मौत मेरे सामने खड़ी है और बचने का कोई उपाय नहीं है।' मौत से पहले के असंख्य ट्वीट या फेसबुक पोस्ट, यहाँ तक कि लाइव विडियो भी सामने आये। हर जगह 'त्राहिमाम-त्राहिमाम' अस्पतालों में बेड नहीं, ऑक्सीजन नहीं, यहाँ तक कि मामूली दवाएँ भी नहीं, जिनसे कोरोना संक्रमण के दुष्प्रभावों को कम किया जा सके। स्वास्थ्य सहायता समूहों द्वारा ऑक्सीजन, सीरम, अस्पतालों में बेड और दवाओं की अपीलें। एम्बुलेन्स में, सड़कों पर, अस्पताल परिसर में इलाज के बिना तड़प-तड़प कर मरते लोग।

पहले भी हमारे देश में प्लेग, हैजा और दूसरी तमाम महामारियों से लाखों लोग मरे, लेकिन उस दौरान हम अंग्रेजों के गुलाम थे और देश में इलाज के साधन नहीं थे। लेकिन आज के दौर में जब हमारा देश ऑक्सीजन, वैक्सीन और दवा उत्पादन के मामले में दुनिया के शीर्ष पर विराजमान है, मेडिकल टूरिज्म की डींग हाकते विराट प्राइवेट अस्पताल और नरसिंग होम हैं फिर भी मामूली उपचार, ऑक्सीजन और दवाओं के अभाव में लोग तड़प-तड़प कर दम तोड़ते रहे। राजधानी दिल्ली जहाँ विश्वस्तर की चिकित्सा सुविधा मौजूद है वहाँ भी बड़ी संख्या में लोग ऑक्सीजन के अभाव में मर गये। सर गंगाराम, जयपुर गोल्डन और बतरा जैसे नामी-गिरामी अस्पतालों में भी न होने के कारण लोगों की जान चली गयी। बड़े-बड़े निजी अस्पतालों में ऑक्सीजन वेन्टीलेटर, ऑक्सीजन एम्बुलेन्स और दवा नहीं है, पर्याप्त संख्या में डॉक्टर और नर्स नहीं है। ऐसे में, देश भर के जिला अस्पतालों, छोटे नरसिंग होम और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की हालत क्या होगी इसकी कल्पना करना भयावह है। लाखों रुपये खर्च करने के लिए तैयार, साधन सम्पन्न लोग इलाज के अभाव में काल के गाल में समा गये, तो गाँवों-कस्बों के गरीबी और बेरोजगारी की महामारी से ग्रस्त करोड़ों लोगों पर क्या बीती होगी?

और तो और शमशान और कब्रिस्तान को चुनावी मुद्दा बनाकर वोट बटोरने वाले सत्ताधारियों ने कोरोना महामारी के शिकार लोगों की अंत्येष्ठि का भी इन्तजाम नहीं किया। शमशान और कब्रिस्तान में जगह नहीं, जलाने के लिए लकड़ी नहीं, लगातार जलती लाशों के ताप से विद्युत शवदाह गृह की चिमनी पिघल गयी। अर्थी की लम्बी कतारें, घण्टों लाइन में खड़े होकर अपनी बारी का इन्तजार, शमसान के पास फुटपाथ और पार्क में जलती चिताएँ, गंगा में बहती हजारों लाशें, नदी किनारे रेत में दबी लाशें।

कोरोना से होने वाली असंख्य मौतें दरसल सरकार की आपराधिक लापरवाही, गलत प्राथमिकताएँ और जनविरोधी नीतियों के जरिये की गयी गैर इरादतन हत्याएँ हैं। जिस दौरान देश में कोरोना का कहर जारी था, लोग दवा-इलाज के अभाव में तड़प-तड़प दम तोड़ रहे थे, उस समय प्रधानमंत्री मोदी, भाजपा के दिग्गज नेता और मंत्रीगण चुनावी सभाओं में भारी भीड़ जमा होने पर खुशी जाहिर कर रहे थे, राम मन्दिर का शिलान्यास कर रहे थे, कुम्भ मेले का आयोजन करके लाखों लोंगों की भीड़ जुटा रहे थे। लोगों के लिए ऑक्सीजन और वैक्सीन का इन्तजाम करने के बजाय प्रधानमंत्री मोदी अपने लिए 8,458 करोड़ के दो मिसाइलरोधी बोइंग 777-300 इआर खरीद रहे थे और 20,000 करोड़ का नया महल और संसद भवन सेन्ट्रल विष्टा की बुनियाद रख रहे थे।

भारत में उत्पन्न होने वाला कोरोना का नया वायरस बी-1-617 जो कोरोना की दूसरी लहर के लिए जिम्मेदार है, उसके बारे में 5 अक्तूबर 2020 को ही पता चल गया था। दो महीने बाद जनवरी 2021 में इस बारे में आगे शोध करने के लिए 10 प्रयोगशालाओं के समूह 'कोविड जिनोमिक कन्सोर्टियम' की स्थापना हुई, जिसके लिए 115 करोड़ का बजट तय हुआ। लेकिन स्वास्थ्य मंत्री ने इस बजट की राशि को बायोटेक्नोलोजी विभाग को नहीं दिया। उससे खुद यह धनराशि जुटाने के लिए कहा गया। आखिरकार नये वायरस का पता लगने के छः महीने बाद जब

दूसरी लहर अपने चरम पर पहुँच रही थी और लोग कोरोना की चपेट में आकर मौत के मुँह में समाते जा रहे थे, तब 31 मार्च को सरकार द्वारा इस प्रोजेक्ट के लिए 80 करोड़ रुपये दिये गये।

नए वायरस पर शोध में सरकार ने लापरवाही की थी। 28 जनवरी को दावोस में अयोजित वर्ल्ड सोशल फोरम के वर्चुअल सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने कोविड-19 के ऊपर विजय की घोषणा कर दी थी। 21 फरवरी को भाजपा ने गर्व के साथ यह प्रस्ताव पारित किया था कि प्रधानमंत्री के समर्थ, संवेदनशील, समर्पित और कुशल नेतृत्व में भारत ने कोविड-19 को परास्त कर दिया है। जाहिर है कि कोविड को हराने की घोषणा करके अपनी पीठ थपथपाने के बाद प्रधानमंत्री और उनकी पार्टी ने अपना ध्यान अपने असली एजेण्डे की और मोड़ दिया, उन कुछ प्रमुख उपलब्धियों पर सरसरी निगाह डाल लेना मुनासिब होगा।

जब कोविड नया रूप धारण करके मौत का कहर ढाने के लिए देशभर में गुपचुप तरीके से अपने पाँव पसार रहा था तब 24 फरवरी 2021 को प्रधानमंत्री अहमदाबाद स्थित दुनिया के सबसे बड़े क्रिकेट स्टेडियम सरदार पटेल स्टेडियम का नाम बदलकर नरेन्द्र मोदी स्टेडियम कर रहे थे। वे राष्ट्रपति कोविन्द और अमित शाह के पुत्र जयशाह की उपस्थिति में इन्डियन प्रीमियर लीग नामक विश्व के सबसे बड़े टूर्नामेन्ट का उद्घाटन कर रहे थे जो 25 मई तक चलना था। 55,000 लोगों की उपस्थिति में इंगलैण्ड और भारत के बीच मैच को देखने वालों में प्रधानमंत्री के चहेते मुकेश अम्बानी और गौतम अदानी भी शामिल थे।

महामारी फैलने के बाद सरकार ने वैज्ञानिक विशेषज्ञों का कोविड टास्क फोर्स गठित किया था। फरवरी-मार्च 2021 में उसकी कोई बैठक नहीं हुई। इलाज और टीकाकरण पर ध्यान देने के बजाय प्रधानमंत्री की छवि बनाने और कोविड से बचाव के लिए नीम हकीमी नुस्खे और अंधविश्वास फैलाने का काम जोरों पर था। हिन्दू महासभा के अध्यक्ष त्रिदंडी महाराज गोमूत्र और गोबर का सेवन करने, ओम नमः शिवाय का जाप करने और पूरे शरीर पर गोबर पोतने को कोरोना संक्रमण से बचाव का अचूक उपाय बता रहे थे। एक मंत्री भाभी जी के पापड़ को रामबाण दवा बता रहा था तो लाला रामदेव ने रातों रात कोरोनिल औषधि को बाजार में उतार दिया था। गोदी मीडिया और मोदी की जी हजूरी करने वाले सिनेमा के हिरो-हिरोइन, क्रिकेटर और तथाकथित सेलिब्रेटी भी इन अंधविश्वासों से भरी नानी की कहानियों और नीम हकीमी नुस्खों को फैलाने में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। हद तो तब हो गयी जब लाला रामदेव ने ऑक्सीजन के अभाव में मरने वालों का मजाक उड़ाते हुए एक वीडियो जारी करके अनुलोम-विलोम से ऑक्सीजन लेवल बढ़ाने का नुस्खा पेश किया था। साथ ही उसने एलोपैथी डॉक्टरों का भी मजाक उड़ाया था, जो अपनी जान की बाजी लगाकर कोरोना मरीजों की जान बचा रहे थे।

12 साल पर होने वाले हरिद्वार कुम्भ मेले का आयोजन 2022 में होना था जिसे साधू-सन्यासियों के विरोध के बावजूद एक साल पहले ही 11 मार्च से 17 अप्रैल को आयोजित किया गया। 12 और 27 अप्रैल को शाही स्नान था। ऐसी मान्यता है कि उस दिन गंगा में डुबकी लगाने से सभी पाप धुल जाते हैं। 12 अप्रैल को हरिद्वार के अलग-अलग घाटों पर लगभग 50 लाख लोगों ने डुबकी लगायी। 10 से 14 अप्रैल के बीच वहाँ 2,37,751 लोगों की कोरोना जाँच हुई जिनमें 1700 लोग कोरोना संक्रमित पाये गये। अगर सभी 50 लाख श्रद्धालुओं की जाँच होती तो संक्रमित लोगों की संख्या इस हिसाब से 42,500 होती और पूरे मेले के दौरान आये लोगों में लाखों संक्रमित मामले मिलते। कोविड के बढ़ते मामलों को देखते हुए कुम्भ मेले के आयोजन पर पूछे गये सवाल के जवाब में उत्तराखण्ड के तत्कालीन मुख्यमंत्री तीरथ सिंह रावत ने कहा था कि माँ गंगा में स्नान करने वालों को कोरोना नहीं होगा।

कुम्भ मेला जैसे विराट धार्मिक जमावड़े का समय से सालभर पहले आयोजन किया जाना कोई संयोग नहीं, बल्कि प्रयोग था क्योंकि उसी दौरान देश के 5 राज्यों में विधानसभा चुनाव और उत्तर प्रदेश में पंचायत चुनाव होना था। चुनाव की तिथि कुम्भ मेले के आस-पास तय करने का मकसद हिन्दू वोटरों को लुभाना था क्योंकि उस दौरान कुम्भ नहाने के लिए देशभर से लगभग 15 करोड़ तीर्थयात्रियों के आने की सम्भावना थी।

अप्रैल के मध्य में जब कोविड की दूसरी लहर पूरे देश में फैल चुकी थी तब प्रधानमंत्री मोदी और उनकी पार्टी के तमाम बड़े नेता पाँच राज्यों की चुनावी रैलियों और खास तौर से बंगाल चुनाव में मशगूल थे। 17 अप्रैल को मोदी ने आसनसोल की एक रैली में कहा था कि "मैंने एसी सभा पहली बार देखी है।" 'दो गज की दूरी मास्क जरूरी' की अपनी ही बातों की खिल्ली उड़ते देखकर प्रधानमंत्री ने जिस दिन यह उद्गार व्यक्त किया, उसी दिन देश में कोरोना संक्रमण के 2,61,000 नये मामले सामने आये और उस दिन कोरोना से 1501 लोगों की मौत हुई थी। 21-22 अप्रैल को जब कोविड संक्रमित लोगों की संख्या प्रतिदिन 3,00,000 से ऊपर और मृतकों की संख्या 2000 से अधिक हो गयी, तब भी अमित शाह बंगाल में चुनावी रैली कर रहे थे।

बिहार विधानसभा चुनाव के दौरान 22 अक्तूबर 2020 को भाजपा ने अपने घोषणापत्र में पहला यही वादा किया था कि कोविड की वैक्सीन बनते ही बिहार के हर व्यक्ति का मुफ्त टीकाकरण होगा। 23 अप्रैल 2021 को बंगाल चुनाव के दौरान भी

भाजपा ने वादा किया था कि पार्टी सत्ता में आयी तो बंगाल के सभी लोगों को मुफ्त में टीका लगाया जायेगा। बिहार में चुनाव जीतने और मुफ्त टीकाकरण की घोषणा के आठ महीने बीतने के बाद बिहार ही नहीं, बल्कि पूरे देश में टीकाकरण की जमीनी हकीकत क्या है यह किसी से छिपा नहीं है।

2020 तक भारत दुनिया का सबसे ज्यादा वैक्सीन निर्माता देश था, लेकिन सरकार के उपेक्षापूर्ण रवैये की वजह से आज भारत वैक्सीन का आयात कर रहा है, जबकि आज अमरीका और चीन कोविड वैक्सीन बनाने में भारत से आगे निकल गये हैं। 2012 में चेन्नई के निकट एक विराट एकीकृत वैक्सीन कॉम्पलेक्स एचबीएल की बुनियाद रखी गयी थी। यह पहले के तीन पुराने वैक्सीन लैब- कुन्नूर, चेन्नई और मोहाली की जगह लेने वाला था और वहाँ रैबीज, चेचक, जापानी इनसेफेलाइटिस, हेपेटाइटिस बी और अन्य बीमारियों के 58.5 करोड़ टीके हर साल बनते थे। लेकिन 2014 में मोदी सरकार बनने के बाद इस प्रोजेक्ट को फण्ड देना बन्द कर दिया गया। 2017 में बढ़े हुए खर्च 710 करोड़ का अनुमोदन किया गया, लेकिन 2019 में स्वास्थ्य मंत्रालय ने उस प्रोजेक्ट का खर्च देने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि इससे मुनाफा नहीं होगा। आज एचबीएल में 6 प्रोडक्शन लाइन हैं जो चालू हालत में नहीं हैं। उन्हें पूरी तरह क्रियाशील बनाने में 150 करोड़ का खर्च आयेगा, ताकि उन्हें कोविड वैक्सीन इकाई में तब्दील किया जा सके। एचबीएल ने स्वास्थ्य मंत्रालय और नीति आयोग को इस सम्बन्ध में पत्र लिखा, लेकिन सरकार ने धन मुहैया करने से मना कर दिया। सार्वजनिक उद्यमों के प्रति मोदी सरकार की घोर उपेक्षा और मुनाफा-केन्द्रित सोच के कारण राष्ट्रीय महत्त्व की इस परियोजना को कोविड का टीका बनाने में नहीं लगाया गया। हालत यह है कि आज वहाँ अस्पतालों के लिए संक्रमणरोधी और सेनिटाइजर बनाने का काम हो रहा है।

इसके अलावा एचबीएल कोविड सैम्पल को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए वायरस ट्रांसपोर्ट मीडियम (वीटीएम) किट बनाने में भी सक्षम है। जाँच किट की भारी माँग को देखते हुए बहुत सस्ते में इसका निर्माण सम्भव है, लेकिन इसके लिए एचबीएल को राज्य और केन्द्र से उत्पादन लाइसेन्स की जरूरत है। इस सम्बन्ध में एचबीएल द्वारा दिया गया आवेदन अधर में लटका है और 5 मई 2021 तक उसे स्वीकृति नहीं मिली थी। नवउदारवादी नीतियों के प्रबल समर्थक होने के नाते सार्वजनिक उद्यमों के प्रति मोदी सरकार का रवैया जानने के लिए एचबीएल सबसे ज्वलन्त उदाहरण है। जनवरी 2021 में सरकार ने इसकी बिक्री का भी फैसला ले लिया जिसका कोई खरीदार अभी तक सामने नहीं आया और इस तरह बिलकुल नये प्लाण्ट को जंग खाने के लिए छोड़ दिया गया।

जिस समय देश में टीकाकरण की सबसे ज्यादा जरूरत थी, उस दौरान जनवरी से 16 अप्रैल 2021 के बीच 'वैक्सीन मैत्री' कार्यक्रम के तहत मोदी सरकार ने 95 देशों को 6.64 करोड़ खुराक वैक्सीन का निर्यात किया। अमरीका ने अपने वैक्सीन निर्माताओं के आगे यह शर्त रखी थी कि जब तक वहाँ के हर नागरिक को टीका नहीं लग जाता, तब तक वे निर्यात नहीं करेंगे। लेकिन "विश्वगुरू" और "वैश्विक नेता" की छवि बनाने के आगे मोदी सरकार ने अपने लोगों की परवाह नहीं की।

पूरी दुनिया में अगस्त 2020 से ही टीके की खरीद शुरू हो गयी थी। अमरीका और यूरोपीय यूनियन अपने देश की जनसंख्या से अधिक खुराक खरीद रहे थे जबकि भारत से टीके का निर्यात हो रहा था और सरकार ने पहली बार जनवरी 2021 में 1.65 करोड़ और बाद में 10 करोड़ खुराक का ऑर्डर सीरम इन्स्टीट्यूट ऑफ इंडिया को दिया। पहले मोदी सरकार ने घोषित किया कि टीके की खरीद केवल केन्द्र सरकार करेगी कोई, निजी बिक्री नहीं होगी। लेकिन उसने गैर भाजपा राज्य सरकारों को पर्याप्त मात्रा में वैक्सीन मुहैया नहीं किया। उसने न तो वैक्सीन प्लांट का वित्तपोषण करके उसे टीका बनाने के लिए तैयार किया और न ही पर्याप्त मात्रा में टीके की खरीद की। आखिरकार 1 मई 2021 को उसने राज्य सरकारों को सीधी खरीद और आयात की अनुमति दी।

वैक्सीन निर्माण में सार्वजनिक खर्चे पर निजी मुनाफे का उदाहरण भी साफ-साफ देखने को मिला। भारत बायोटेक का कोवैक्सीन पूणे स्थित नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ वायरोलोजी में विकसित किया गया था जो आइसीएमआर के अधीन है। उसने यह टीका भारत बायोटेक को बिना किसी रॉयल्टी के, निर्माण और वितरण के लिए दिया। कम्पनी ने भारत सरकार के निर्देशानुसार इसकी कीमत सरकारी अस्पतालों के लिए 600 रुपये और निजी अस्पतालों के लिए 1200 रुपये तय की। इस कम्पनी की कोवैक्सीन उत्पादन क्षमता 2 करोड़ टीका प्रतिमाह है। कोविशिल्ड निर्माता सीरम इन्स्टीट्यूट ऑफ इंडिया (एसआईआई) ने टीका बनाने के लिए एस्ट्राजेनेका (स्वीडेन) से लाइसेन्स लिया है। और हर महीने 7 करोड़ खुराक तैयार कर रही है। उत्पादन शर्तों के मुताबिक इस कम्पनी को 90 करोड़ खुराक एक्स्ट्राजेनेका और 14.5 करोड़ खुराक नोवावैक्स को देना है। जनवरी से मई के बीच इसने भारत सरकार को 3 करोड़ खुराक दिया जिसमें 1 करोड़ विश्व स्वास्थ्य संगठन के हिस्से का था। इस कम्पनी के मालिक ने अपने उत्पादन का विस्तार करने के लिए 80,000 करोड़ रुपये अगले 12 महीने में टीका खरीदने के लिए उपलब्ध कराने की माँग की, जिसपर सरकार राजी नहीं हुई। अब तक स्पष्ट नहीं है कि सरकार ने इस मद में कितना धन निर्धारित किया है। सच तो यह है कि टीकाकरण के बारे में मोदी सरकार की नीति और नीयत

संदिग्ध है। आखिरकार, जब सुप्रीम कोर्ट ने कड़ा रुख अपनाया और टीकाकरण के लिए निर्धारित रकम के बारे में सवाल उठाया तो सरकार ने एक बार फिर अपना रवैया बदला और आनन-फानन में प्रधानमंत्री मोदी ने 18 साल से 45 साल तक के लोगों को मुफ्त टीका लगाने की घोषणा की।

जैसा कि पहले ही बताया गया, कोविड की दूसरी लहर के दौरान ऑक्सीजन न मिलने के चलते अनगिनत लोग घुट-घुटकर मरते रहे। वायरस से भी कहीं ज्यादा घातक ऑक्सीजन की भारी कमी थी। जबकि देशभर में ऑक्सीजन के कई प्लाण्ट केन्द्र सरकार की अनुमति के बिना लग नहीं पाये, क्योंकि मोदी सरकार ने लोगों की जिन्दगी के लिए इतने महत्त्वपूर्ण काम में पूरी तरह ढिलाई की। स्वास्थ्य से सम्बन्धित संसद की स्थायी समिति ने अक्टूबर 2020 में ही चेतावनी जारी की थी कि कोविड की दूसरी लहर आसन्न है और ऑक्सीजन की भारी कमी सम्भव है। स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन सेन्ट्रल मेडिकल सर्विसेज सोसायटी (एसएमएसएस) को ऑक्सीजन प्लाण्ट लगवाने का जिम्मा दिया गया। 21 अक्तूबर को उसने 14 राज्यों में कुल 154 मैट्रिक टन क्षमता वाले 162 ऑक्सीजन प्लाण्ट लगाने के लिए बोली मँगायी। दिसम्बर में ठेके दिये गये जिन्हें डेढ़ महीने में प्लाण्ट लगाना था। इस पर कुल 201.58 करोड़ रुपये, यानी प्रति प्लाण्ट औसतन 1.25 करोड़ रुपये पीएम केयर से दिये गये। हर प्लांट की उत्पादन क्षमता से 100-150 रोगियों को ऑक्सीजन सहायता मिल सकती थी जो अपने आप में बहुत ही अपर्याप्त था। लेकिन ठेका छूटने के चार महीने बाद, 14 अप्रैल 2021 तक जिन 162 प्लांट का ठेका दिया गया था उनमें से सिर्फ 33 प्लाण्ट ही खड़े हुए।

देश को 800 मैट्रिक टन ऑक्सीजन की कमी थी, जिसकी जगह सरकार ने 154 मैट्रिक टन ऑक्सीजन के लिए प्लाण्ट लगवाने का ठेका दिया और केवल 20 प्रतिशत उत्पादन करने वाले प्लाण्ट ही लग पाये। अगर सरकार ने समय रहते पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन की आपूर्ति का इन्तजाम किया होता तो लाखों लोगों की जान बचायी जा सकती थी। लेकिन सरकार ने उल्टा ही काम किया। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक महामारी के दौरान भारत ने 9000 मैट्रिक टन ऑक्सीजन का निर्यात किया। जनवरी 2021 में ऑक्सीजन के निर्यात में साढ़े सात गुने की बढ़ोतरी हुई। एक समय ऑक्सीजन का सबसे बड़ा उत्पादक देश आज 50,000 मैट्रिक टन ऑक्सीजन आयात करने और वायु सेना के विमान से लाने पर मजबूर है।

दुनियाभर के पर्यवेक्षकों, स्वास्थ्य रक्षा विशेषज्ञों, पत्रकारों और न्यायविदों ने बार-बार संकट की गम्भीरता और सरकार के गैरजिम्मेदाराना रवैये की और ध्यान दिलाया। मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस बैनर्जी ने 26 अप्रैल 2021 को कहा था कि "आप (चुनाव आयोग) अकेली संस्था है जो आज की परिस्थिति के लिए जिम्मेदार है। चुनावी रैली करने वाली राजनीतिक पार्टियों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गयी। आपके चुनाव आयोग पर मानवहत्या का मुकदमा दर्ज होना चाहिए।" न्यायमूर्ति बनर्जी का इशारा समझना कठिन नहीं, क्योंकि सबको पता है कि चुनाव आयोग किसके अधीन है। इसी तरह 4 मई 2021 को उत्तर प्रदेश उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की बेंच, जिसमें जस्टिस सिद्धार्थ वर्मा और जस्टिस ललित कुमार शामिल थे, उसका मानना था कि सिर्फ अस्पतालों में ऑक्सीजन की आपूर्ति न होने के कारण कोविड-19 के रोगियों की मौत "एक अपराधिक कृत्य है, जो नरसंहार से कम नहीं" क्योंकि सरकार ने अस्पतालों में पर्याप्त ऑक्सीजन की आपूर्ति नहीं की। उल्लेखनीय है कि मुख्य मंत्री योगी ने उत्तर प्रदेश में ऑक्सीजन और अस्पतालों में बेड की कमी से पूरी तरह इनकार किया था और इस बारे में सोशल मीडिया पर लिखने वालों पर देशद्रोह का मुकदमा करने की धमकी दी थी।

जिस समय महामारी की दूसरी लहर अपने चरम पर थी, लोग इलाज के अभाव में काल के गाल में समा रहे थे और पूरा देश एक अभूतपूर्व त्रासदी से गुजर रहा था, तब मोदी की छवि निखारने का काम जोरों पर चल रहा था। कारण यह है कि इस महामारी ने सरकार की आपराधिक उपेक्षा, उसके झूठे दावे, नकली राष्ट्रवाद, कॉर्पोरेट भक्ती और जनविरोधी चरित्र को पूरी तरह उजागर कर दिया। दुनियाभर में सरकार की असफलताओं और लापरवाही के चर्चे होने लगे। दुनिया के छोटे-छोटे देशों से भी कोरोना पीड़ितों के लिए सहायता आने लगी। मोदी समर्थक लोगों की सहायता करने के बजाय, रातोंरात उनके गुस्से और घृणा को ढकने के लिए सक्रीय हो गये। वे मोदी सरकार की आलोचना करने वालों को नकारात्मकता फैलाने वाले, देशद्रोही, भारतमाता की छवि धूमिल करने वाले गिद्ध और हिन्दुओं के दुश्मन बताने में लग गये। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री ने माहौल बिगाड़ने वालों (यानि कोरोना इलाज में सरकार की नाकामी पर सवाल उठाने वालों) पर राष्ट्रीय सुरक्षा कानून लगाने और उनकी सम्पत्ती जब्त करने की धमकी दी। हरियाणा के मुख्यमंत्री पर जब कोविड से होने वाली मौतों को कम करने का आरोप लगा तो उनका कहना था कि मरने वालों की संख्या पर बहस करना बेकार है क्योंकि अब वे लोग वापस तो आयेंगे नहीं। केन्द्रीय मंत्री गजेन्द्र शेखावत ने जोधपुर के अस्पताल में कोविड रोगियों के परिवार वालों से कहा कि बालाजी को नारियल चढ़ाने से सब ठीक हो जायेगा। विदेश मंत्री जयशंकर ने भारतीय राजनयिकों को निर्देश दिया कि वे सरकार की कोरोना से निपटने में असफलता पर दुनियाभर में मीडिया द्वारा "एकतरफा" रिपोटिंग का जवाब दे। विड़म्बना यह है कि उन्हीं के सहकर्मी, 5 देशों के राजदूत रहे अशोक अमरोही, 27 अप्रैल को

मेदान्ता अस्पताल के पार्किंग में बेड का इन्तजार करते हुए तड़प-तड़प कर मर गये थे। उत्तर प्रदेश के 3 मंत्री और 5 भाजपा विधायक और कई नवनिर्वाचित प्रधान कोरोना की भेंट चढ़ गये। उत्तर प्रदेश के पंचायत चुनावों में ड्यूटी पर तैनात लगभग 1500 कर्मचारियों की कोरोना से मौत की भी खबर आयी लेकिन लोगों की जान से ज्यादा प्रधानमंत्री और उनकी सरकार की छवि की चिन्ता की गयी।

इन तथ्यों की रोशनी में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि कोरोना की दूसरी लहर में लाखों लोगों की मौत के लिए मोदी सरकार की गलत प्राथमिकता, कोरोना की गम्भीरता को नजरअन्दाज करना, देश में पहले से मौजूद भरपूर संसाधनों को लोगों की जीवन रक्षा लगाने के काम में अपराधिक लापरवाही तथा लाखों लोगों की जिन्दगी को दाँव पर लगाकर अपने चहेतों की दौलत में इजाफा करने और हिन्दू राष्ट्र परियोजना को आगे बढ़ाने की सनक जिम्मेदार रही है।

कोरोना की दूसरी लहर और कहर के दौरान यह सर्वमान्य सच्चाई एक बार फिर रेखांकित हुई कि मोदी सरकार किसके लिए अच्छी है और किसके लिए अच्छे दिन आये हैं। एक तरफ जहाँ देशभर में करोड़ों लोगों का रोजी-रोजगार छिन गया, देश की अर्थव्यवस्था चौपट हो गयी, वहीं मोदी के चहेते अडानी-अम्बानी की सम्पत्ति इस महाविपदा के दौरान भी तेजी से बढ़ी। मई 2014 से अब तक अम्बानी की सम्पत्ति 23.6 अरब डॉलर से बढ़कर 84 अरब डॉलर और अडानी की सम्पत्ति 1.9 अरब डॉलर से बढ़कर 55.7 अरब डॉलर हो गयी।

आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार कोरोना से देशभर में मरनेवालों की संख्या तीन लाख से ऊपर है, जानकारों का कहना है कि यह हकीकत से बहुत कम है। कई जगहों पर मौत के आँकड़ों का ऑडिट भी नहीं हुआ है। अपनी शर्मिंदगी को छिपाने के लिए सरकारें आँकड़ों में हेरफेर कर रही हैं।

इतिहास में इस दौर का वृतान्त काले अक्षरों में लिखा जायेगा, जब सत्ता के शीर्ष पर विराजमान जनसेवक की निगाह में एक अरब चालीस करोड़ लोगों की हैसियत कीड़े मकोड़े से अधिक नहीं थी। जब बेगुनाह लोग हर रोज हजारों की तादाद में दवा-इलाज के बिना मर रहे थे तो वह अपने लिए करोडों रुपये खर्च करके विमान और आलीशान महल बनाने में लगा था। आपदा को अवसर में बदलनेवाले अकर्मण्य और गैरजिम्मेदार शासकों ने इस कोविड नरसंहार में असंख्य निर्दोष देशवासियों की जान ले ली। इस मानवनिर्मित त्रासदी में बलिदान हुए सभी जाने-अनजाने लोगों को गम और गुस्से से भरी श्रद्धांजलि!

पाठकों से अपील

❑ 'देश-विदेश' अंक 38 आपके हाथ में है। हमारा प्रयास है कि इसे अनियतकालीन पत्रिका की जगह हर तीन माह पर नियमित प्रकाशित किया जाये।

❑ जिन साथियों को पत्रिका निरन्तर डाक से भेजी जा रही है, वे कृपया सूचित करें कि उन्हें पत्रिका मिल रही है या नहीं और उन्हें आगे से भेजी जाये या नहीं।

❑ देश-विदेश अव्यवसायिक पत्रिका है। यह साथियों के श्रम और सहयोग से ही प्रकाशित होती है। आर्थिक संकट से जूझते हुए अब तक हमने 38 अंक निकाले। पाठकों के सहयोग से ही यह सम्भव हो पाया।

❑ पत्रिका अभी भी अनियमित है, इसलिए नियमित चन्दे की दर तय करना सम्भव नहीं। डाक से मँगवाने के लिए 4 अंकों की सहयोग राशि 200 रुपये या आजीवन सदस्यता न्यूनतम 2000 रुपये निम्नलिखित बैंक खाते में अन्तरित करें और इसकी सूचना एसएमएस या ईमेल से भेज दें।

नाम : मोहित कुमार
मोबाइल नं. 8755762077
AC. No. 30456084252
IFSC : SBIN0002292
स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया (एसबीआई),
एलम, शामली, उत्तर प्रदेश

मनी ऑर्डर भेजने का पता है-

अतुल कुमार गुप्ता
1/4649/45 बी, गली नं. 4,
न्यू मॉर्डन शाहदरा
दिल्ली- 110032

कोरोना विशेष

निजीकरण ने ऑक्सीजन की कमी से जनता को बेमौत मारा

--विशाल विवेक

ताजा सूरत-ए-हाल

कोरोना की दूसरी लहर के आगे देश की स्वास्थ्य व्यवस्था ताश के पत्तों की तरह ढह गयी। डॉक्टरों और अस्पतालों की तो बात ही क्या, दवाईयों, ऑक्सीजन और शवों के अन्तिम संस्कार तक के लिए जानता मारी-मारी फिर रही है। कोरोना की पहली लहर के समय भी अस्पतालों में ऑक्सीजन आपूर्ति की भारी समस्या आयी थी। इस बार तो अधिकतर मौतें ही ऑक्सीजन की कमी से हो रही हैं। हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ के के अग्रवाल ने बिलकुल सही कहा है कि कोरोना संक्रमण से होने वाली मौतें बहुत कम हैं, अधिकतर लोग ऑक्सीजन की कमी से मर रहे हैं। दुर्भाग्य यह कि उनकी मौत भी कोरोना की वजह से हुई।

ऑक्सीजन का संकट इतना भयावह है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय देश में हो रही मौतों को नरसंहार की संज्ञा दे चुका है। हालाँकि इससे भी सरकार पर कोई फर्क नहीं पड़ा है, उसकी बेहयाई ऐसी सीमाओं को बहुत पहले लाँघ चुकी है।

मरीज को ऑक्सीजन की जरूरत होने पर परिजन कबाड़ी से, वेल्डिंग की दुकानों से या किसी और जरिये से ऑक्सीजन सिलेण्डर का जुगाड करने और फिर उसे भरवाने के लिए मारे-मारे फिरते रहते हैं। इस तरह के मरीजों की संख्या अस्पतालों में भर्ती मरीजों की संख्या से कई गुना ज्यादा है।

बहुत पहले उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में ऑक्सीजन की कमी से सौ से ज्यादा बच्चों की मौत हुई थी क्योंकि भुगतान समय पर न होने के कारण सप्लायर ने ऑक्सीजन की आपूर्ति बन्द कर दी थी। संकट की घड़ी में बच्चों के लिए ऑक्सीजन के इन्तजाम की कोशिश करने वाले डॉक्टर कफील खान को ही सरकार ने दोषी ठहरा दिया था।

कोरोना की पहली लहर से चिकित्सा विशेषज्ञों ने नतीजा निकाला था कि कोरोना से गम्भीर रूप से संक्रमित सभी मरीजों को वेंटीलेटर की जरूरत नहीं होती, अधिकतर मरीजों का काम उच्च दाब पर ऑक्सीजन देने से चल जाता है। यह एक महत्त्वपूर्ण अनुभव था क्योंकि संक्रमण बढ़ने पर खराब स्वास्थ्य सेवाओं वाले भारत देश में गिनती के मरीजों को ही वेंटीलेटर उपलब्ध कराया जा सकता है जबकि उच्च दाब पर ऑक्सीजन बहुतों को उपलब्ध कराना सम्भव है। इस बेशकीमती अनुभव को सरकार ने कूड़ेदान में फेंक दिया।

वास्तविकता यह है कि कोरोना से मरने वाले लोगों की संख्या सरकारी आँकड़ों के बीस गुना से भी ज्यादा है। उदाहरण के लिए जिन 12 दिनों में मध्य प्रदेश सरकार ने भोपाल में मौत का आँकड़ा 34 लोगों का बताया था, हिन्दुस्तान टाइम्स की रिपोर्ट बताती है कि उन 12 दिनों में भोपाल में कोरोना से 883 लोगों की मौतें हुई थी।

बहुसंख्यक मेहनतकश जनता मरने को मजबूर

भारत की लगभग सारी स्वास्थ्य सेवाएँ शहरों में ही केन्द्रित हैं। देहात में रहनेवाली भारत की 65 फीसदी से ज्यादा आबादी, जिनके बीच दूसरी लहर में संक्रमण खूब फैल रहा है, उनके पास डॉक्टर और अस्पताल ही नहीं हैं, ऑक्सीजन भला कैसे मिल सकती है।

अस्पतालों में और उनसे कहीं ज्यादा घरों में, मरीज मरते रहते हैं, अस्पताल फोन कर-कर के थक जाते हैं, लोग दिनभर कंधों पर खाली ऑक्सीजन सिलेण्डर के लिए दौड़ते रहते हैं, सारी-सारी रात लाइनों में लगे रहते हैं, लेकिन ऑक्सीजन नहीं मिलती। हमारे चारों ओर का मंजर तथा समाचार माध्यमों की तस्वीरों से ऑक्सीजन के जरूरतमन्द मरीजों की जो संख्या हमारे दिमाग में आती है, वास्तविक संख्या इससे बहुत ज्यादा है। कोरोना संक्रमित करोड़ों मेहनतकश लोग जो देहात में और शहरों की गरीब बस्तियों में भरे पड़े हैं वे किसी तस्वीर में नहीं हैं, उनकी कहीं गिनती नहीं है। वे ऑक्सीजन के अभाव में चुपचाप अपने दड़बेनुमा घरों में पड़े हुए साँसों की डोर टूटने का इन्तजार कर रहे हैं। अस्पतालों और शमशानों/कब्रिस्तानों के मौत के आँकड़ों में जो बीस गुने तक का अन्तर आ रहा है वह इन्ही बदनसीबों की गुमनाम मौत के कारण है।

सामान्य दिनों में भी अधिकतर लोग सही इलाज से वंचित रह जाते हैं। आज, जब कोरोना महामारी भयावह रूप से फैली है और स्वास्थ्य सेवाओं का केवल एक हिस्सा ही उपयोग में आ रहा है तो जाहिर है कि मेहनतकश आबादी तो उसकी सुविधा पाने की

कल्पना भी नहीं कर सकती। इसीलिए शहरों की आबादी का यह बड़ा हिस्सा इलाज के लिए कहीं हाथ-पाँव मारे बिना या ऑक्सीजन के सिलेण्डर का इन्तजाम किये बिना चुपचाप संक्रमित होकर अपने दड़बों में पड़ा है। इन्ही मेहनतकशों की लाशें हैं जो सरकारी आँकड़ों और जमीनी हकीकत में भारी अन्तर पैदा कर रही हैं।

स्वास्थ्य व्यवस्था का सम्पूर्ण संकट

सार्वजनिक और निजी अस्पतालों के पास भी अपने ऑक्सीजन प्लांट नहीं हैं। ऑक्सीजन प्लांट लोगों की जान बचाने के लिए भले ही बहुत जरूरी हो, लेकिन मुनाफे के अनुकूल नहीं है। इसके रखरखाव और परिचालन के लिए निश्चित संख्या में लोगों को नियमित काम पर रखना पड़ता है जबकि इसकी जरूरत हमेशा एक जैसी नहीं होती। जनता के इलाज को व्यापार माननेवाले प्लांट क्यों लगाएँगे। सार्वजनिक अस्पतालों ने खर्च घटाने के सरकारी दबाव के चलते और निजी अस्पतालों ने ज्यादा लागत और कम मुनाफा के गणित के चलते अपने प्लांट नहीं लगाये। ये कम्पनियों से ऑक्सीजन के टैंकर खरीदकर काम चलाते हैं। कोरोना की पहली लहर के दौरान ही बहुत से देशों ने बड़े अस्पतालों के लिए ऑक्सीजन प्लांट लगाना अनिवार्य कर दिया था, लेकिन भारत के मौजूदा शासक अक्ल से नफरत की अपनी परम्परा पर ही कायम रहे।

छोटे निजी अस्पतालों, जिला अस्पतालों की हालत और ज्यादा खराब है। ये छोटे-छोटे ऑक्सीजन सिलेण्डर सप्लायर से खरीदकर काम चलाते हैं, अचानक ज्यादा जरूरत होने पर ये एजेंसियो को फोन करने के अलावा कोई इन्तजाम नहीं कर सकते। आपदा में सिलेण्डरों की बड़ी संख्या इन्ही में खप गयी। इनके छोटे-छोटे सिलेण्डर भरने के लिए बड़े-बड़े टैंकर शहरों की गलियों में घूमते रहते हैं। अब तो मरीज इनमें भर्ती होने के लिए अपना बेड, सिलेण्डर और दवाईयाँ लेकर जाने लगे हैं।

गली-मोहल्लों में कुकुरमुत्तों की तरह उग आये नर्सिंग होम का हाल और बुरा है। ये साधारण मामलों में कुछ दिन मरीज को भर्ती रख लेते हैं, साधारण सर्जरी कर देते हैं या प्रसव करवा देते हैं। इनके पास वेंटीलेटर या आईसीयू की कोई व्यवस्था नहीं है, इसलिए इनके पास ऑक्सीजन की भी कोई व्यवस्था नहीं होती। कोरोना के समय में इनमें से अधिकतर बन्द पड़े हैं या इन्होंने कुछ ऐसे मरीजों को लिटा रखा है जिनके पास अपना ऑक्सीजन सिलेण्डर है। महामारी के दौर में भी भारत के चिकत्सा संसाधनों का बड़ा हिस्सा इस रूप में बेकार पड़ा है। इनको कब्जे में लेकर ऑक्सीजन की लाइन दो दिन में ज्यादा से ज्यादा हफ्ते भर में डाली जा सकती थी। इससे लाखों मरीजों को इलाज भी मिलता और ऑक्सीजन सिलेण्डरों के लिए मारा-मारी भी नहीं होती।

भारत में स्वास्थ्य सेवाओं का निजीकरण इस हद तक किया गया है कि परचून की दुकानों की तरह डॉक्टरों की दुकानें खुली हैं। निम्न मध्यम वर्ग का बड़ा हिस्सा इनसे फोन पर सलाह लेकर घर पर ही कोरोना का इलाज करने को मजबूर है।

ऑक्सीजन की कमी क्यों हुई?

मीडिया संस्था *'द प्रिंट'* का कहना है कि मार्च 2020 में कॉविड के लिए बनायी गयी आधिकारिक समिति ने केंद्र सरकार को 12 राज्यों की एक सूची देकर बताया था कि इन्हे मध्य अप्रैल में 6500 टन ऑक्सीजन की रोजाना जरूरत होगी। दूसरी बार नवम्बर में समिति ने सरकार को ऑक्सीजन आपूर्ति के बारे में फिर आगाह किया। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थाएँ और विशेषज्ञ भी कोरोना की दूसरी लहर के बारे में पिछले साल से ही भारत समेत सारी दुनिया को आगाह कर रहे थे। सरकार ने इन महत्त्वपूर्ण पूर्वानुमानो को सुनकर भी अनसुना कर दिया। शायद सरकार ने नरसंहार को अंजाम देने की ही सोच रखी थी। अपनी स्वास्थ्य व्यवस्था के हिसाब से न उन्होंने ऑक्सीजन प्लांट का इन्तजाम किया ना ही टैंकर और सिलेण्डर का।

भारत दुनिया में सबसे ज्यादा ऑक्सीजन तैयार करने वाले देशों में है। तैयार ऑक्सीजन का बमुश्किल दस फीसदी ही अस्पतालों में खर्च होता है, बाकी उद्योगों में इस्तेमाल होता है। सरकारी तथ्यों के मुताबिक कोरोना से पहले भारत में रोजाना 7,127 टन ऑक्सीजन का उत्पादन होता था जबकि कुल खपत 6,630 टन थी, इसमें से अस्पतालों की रोजाना माँग 700 टन थी। सरकार का दावा है कि फिलहाल ऑक्सीजन का बड़ा हिस्सा अस्पतालों में भेजा जा रहा है।

असल में, बड़ा संकट ऑक्सीजन का नहीं बल्कि उसे जरूरतमन्द मरीजों तक पहुँचाने का है। ऑक्सीजन की आपूर्ति के लिए नोडल ऑफिसर बनाये गये। श्री एस डी शर्मा का कहना है कि हमारे पास ऑक्सीजन की कमी नहीं है लेकिन देश के दक्षिणी और पूर्वी हिस्से से उत्तरी हिस्से में ऑक्सीजन लाना हमारे लिए बहुत बड़ी चुनौती है। लेकिन ऐसा नहीं है। ऑक्सीजन की भारी कमी का सामना करने वाला महाराष्ट्र दक्षिणी राज्यों से सटा हुआ है और मध्य प्रदेश ज्यादा ऑक्सीजन उत्पादन करने वाले उड़ीसा और छत्तीसगढ़ से सटा हुआ है।

कोरोना की दूसरी लहर में हालत बेकाबू होने के बाद, जब सरकार ने अस्पतालों में ऑक्सीजन की आपूर्ति बढ़ाने की कोशिश की तो उसके पास इसे ले जाने के लिए क्रायोजेनिक टैंकर ही नहीं मिले। सरकारी रिकार्ड के मुताबिक ऑक्सीजन ढोने के लिए मात्र 1171 टैंकर हैं, जिनमें से अधिकतर निजी हैं, जबकि जरूरत इससे चार गुणा की है। जल्दी ही घमण्डी सरकार का नशा चूर हुआ और विश्व गुरू को दान दक्षिणा से गुजारा करने की नौबत आ गयी। दुनिया के दूसरे देशों के अलावा भूटान ने भी 40 टैंकर भारत

को दान में दिये हैं।

समस्या यहीं खत्म नहीं होती। इन टैंकरों से सीधे मरीज को ऑक्सीजन नहीं दी जा सकती। देश में ऐसे अस्पताल गिनती के ही हैं जिनके पास अपने भूमिगत टैंकर से पाइप लाइन के जरिये मरीजों तक ऑक्सीजन पहुँचाने की व्यवस्था हो। इसलिए कहीं टैंकर मिल भी गये तो गली-मोहल्लों में कुकुरमुत्तों की तरह उग आये नर्सिंग होम में भारी संख्या में भर्ती मरीजों और उससे भी कई गुणा संख्या में अपने घरों में ही मौजूद मरीजों की जरूरत पूरी करने के लिए छोटे-छोटे सिलेण्डरों का भयावह अकाल सामने आ गया। कुल-मिलाकर भारत की स्वास्थ्य प्रणाली चरमरा गयी। यह सिस्टम के फेल हो जाने की स्थिति है।

निजीकरण ने लोगों की हत्या की है

मरीजों को ऑक्सीजन उपलब्ध कराना कोई कठिन काम नहीं है। अधिकतर देशों में बड़े अस्पतालों के अपने साथ ही जुड़े ऑक्सीजन प्लांट होते हैं, इसी तरह भारत में भी पिछले एक साल में हर बड़े अस्पताल में आसानी से एक प्लांट लगाया जा सकता था। नये संसद भवन, नरेंद्र मोदी स्टेडियम और बंगाल चुनाव प्रचार का खर्च ही करीब दो हजार करोड़ है। पीएम केयर फण्ड में साढ़े छह हजार करोड़ रुपये भी इस काम के लिए जरूरत से अधिक थे। अगर सरकार को अपने नागरिकों की जिन्दगी की जरा भी परवाह होती तो वह इस पैसे से ऐसे पाँच सौ प्लांट लगा सकती थी जो रोजाना दस लाख मरीजों तक ऑक्सीजन की पहुँच सुनिश्चित करते। लेकिन निजीकरण का भूत सरकार पर इस कदर हावी है कि उसने प्लांट लगाने का ठेका किसी निजी कम्पनी को देने के लिए अक्टूबर से मार्च तक इन्तजार किया। लेकिन कोई निजी कम्पनी आगे नहीं आयी।

पहली लहर के दौरान सारी दुनिया ने देखा था कि मुनाफा केन्द्रित निजी अस्पतालों की व्यवस्था महामारी से निपटने में पूरी तरह असफल रही थी। सरकार एक साल में जनता की सम्पदा पूँजीपतियों पर न्योछावर करने और जनता को गुलाम बनाने वाले कड़े से कड़े कानून बनाने जैसे कुकर्मों में मशगूल रही। इस दौरान जहाँ दुनिया आगामी कोरोना लहर से निपटने के लिए स्वास्थ्य प्रणाली को दुरुस्त करने में लगी थी, हमारी सरकार नये संसद भवन ,मोटेरा स्टेडियम और बंगाल चुनाव पर हजारों करोड़ रुपये फूँक रही थी। उसने कोरोना की अगली लहर से निपटने के नाम पर केवल दो काम किये, पूँजीपतियों के लिए कोरोना से ज्यादा से ज्यादा मुनाफा निचोड़ने का इन्तजाम किया और जनता के लिए फोन की कॉलर ट्यून बदली।

आजादी के बाद जो एक आधी अधूरी स्वास्थ्य प्रणाली इस देश में तैयार की गयी थी, वैश्वीकरण की नीतियाँ लागू होने के बाद वह भी तबाह हो चुकी है। भारत अपनी जीडीपी का 1.5 फीसद से ज्यादा शायद ही कभी सार्वजनिक स्वास्थ्य पर खर्च किया हो। सीधे-सीधे स्वास्थ्य पर खर्च होने वाली रकम तो जीडीपी के आधे फीसदी से भी कम है। दुनिया के लगभग सभी देश भारत से ज्यादा खर्च करते हैं। यूरोप तथा अमरीका, ऑस्ट्रेलिया जैसे देश तो जीडीपी का 12 से 16 फीसद लोगों के स्वास्थ्य पर खर्च करते हैं।

ऐसा नहीं है कि भारत सरकार के पास अपनी जनता के इलाज पर खर्च करने के लिए पर्याप्त धन नहीं है, समस्या यह है कि इससे मुठ्ठी भर लोगों और कम्पनियों के नाराज हो जाने का खतरा है। अगर सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली बेहतर हो जाये तो बीमा कम्पनियों, दवा और चिकित्सा उपकरण बनाने वाली कम्पनियों, जाँच और इलाज के काम में लगी कम्पनियों, इनमे फाइनेंस करने वालों और सट्टेबाजी करने वालों, निजी अस्पताल चलाने वाले लोगो को नुकसान होगा। इनके मुनाफे को बरकार रखने के लिए सरकार ने एक अरब ज्यादा लोगों की जान को संकट में डाल दिया है। वैश्वीकरण ने इलाज का यही मॉडल पूरी दुनिया में चलाया है। भारत के शासकों ने सबसे मुस्तैदी से इसे लागू किया है। वास्तव में यह नरसंहार का ही मॉडल है। इसका संहार किये बिना जनता के लिए सस्ते और अच्छे इलाज की कल्पना नहीं की जा सकती। आज भारत की जनता का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है की संकट की इस घड़ी में भारत में मोदी की अगुआई में भाजपा का शासन है जो इस हत्यारे मॉडल के सबसे बड़े उपासक है। भले ही भारत की धरती लाशों से पट जाये लेकिन वह कम्पनियों और व्यापारियों के मुनाफे पर आँच नहीं आने देंगे बल्कि महामारी में उनके मुनाफे को और बढ़ाने के इन्तजाम करेंगे। यह भारत की जनता के ऊपर है कि वह इसे कब तक सहन करती है।

ऑक्सीजन संकट के कुछ बिन्दु

1. पहले से मौजूद ऑक्सीजन संकट पर सरकार ने ध्यान नहीं दिया। आपूर्ति और वितरण की बदतर व्यवस्था से संकट भयावह हो गया।

2. देश की लगभग सत्तर फीसदी ग्रामीण और शहरी मेहनतकश जनता के लिए महामारी के इस दौर में न स्वास्थ्य सेवाएँ मौजूद है और ना ही चिकित्सकीय ऑक्सीजन।

3. निम्न मध्यम वर्ग का बड़ा हिस्सा ऑक्सीजन सिलेण्डर के सहारे घर पर ही नीम-हकीमी इलाज कराने के लिए मजबूर है।

4.अस्पतालों के पास खुद की ऑक्सीजन का या उसकी बड़ी मात्रा में भण्डारण का प्रबंध नहीं था, अधिकतर सिलेण्डरों के भरोसे थे जिनकी भारी कमी थी।

कोरोना विशेष

कोरोना महामारी और जर्जर स्वास्थ्य व्यवस्था

-- मोहित पुण्डिर

डॉक्टरों के सामने अपने मरते पिता के लिए एक महिला बेड की गुहार लगाती रही लेकिन कहीं भी उसके पिता को बेड नहीं मिला। कुछ ही देर में ऑक्सीजन की कमी से उसके पिता ने दम तोड़ दिया। उत्तर प्रदेश के अस्पताल में रोते हुए एक आदमी ने बताया कि कैसे इलाज न मिलने के कारण तड़प-तड़पकर उसकी पत्नी और गर्भ में पल रहे अजन्मे बच्चे की मौत हो गयी। पिछले दिनों अखबार और टीवी में ऐसी दिल दहला देनेवाली घटनाओं की बाढ़ आ गयी। अप्रैल माह की शुरुआत से ही अचानक कोरोना संक्रमण के मामलों में तेजी से बढ़ोतरी होने लगी। यूपी, महाराष्ट्र, गुजरात, दिल्ली समेत पूरे देश में कोरोना संक्रमण की घटनाएँ तेजी से फैल गयीं। पिछले साल के मुकाबले संक्रमण की दर इस बार 40 फीसदी अधिक है।

संक्रमित मरीजों में ऑक्सीजन का स्तर गिरता गया, जिससे अस्पतालों में मरीजों की बाढ़ उमड़ आयी। लेकिन इस संकट के सामने इतने बड़े देश की स्वास्थ्य व्यवस्था पल भर भी नहीं टिक सकी। कुछ ही समय में देश के कोने-कोने से आईसीयू बेड और ऑक्सीजन की भारी किल्लत की खबरें आने लगीं। समय पर ऑक्सीजन और आईसीयू बेड न मिलने के कारण देश में हाहाकार मच गया। कुछ अस्पतालों ने "ऑक्सीजन आउट ऑफ स्टॉक" की तख्ती लगा दी और मरीजों को अस्पताल के बाहर ही तिल-तिल मरने को छोड़ दिया गया।

कानपुर के सबसे बड़े अस्पताल 'हैलट' में एक बेड पर मजबूरन दो-दो मरीजों को लिटाया गया। हालात इतने भयावह हो गये कि छोटे-छोटे पाउच में बमुश्किल थोड़ी बहुत ऑक्सीजन उपलब्ध हो पायी। सुल्तानपुर में तो ऑक्सीजन और दवा न होने पर डॉक्टर, नर्स और कर्मचारी अस्पताल छोड़कर चले गये। गुजरात के कच्छ में बेड और ऑक्सीजन के लिए गोलियाँ तक चल गयीं। इक्के-दुक्के अस्पताल का नहीं बल्कि देश के तमाम अस्पतालों का ऐसा मंजर नजर आने लगा। जनता पर संकट का पहाड़ टूट पड़ा, हर कोई मजबूर और परेशान नजर आया। अकूत मुनाफे की हवस के पुजारी ज्यादातर निजी डॉक्टर अपनी दुकानें बन्द करके छिप गये। इनसानियत के लिए अपनी जान जोखिम में डालनेवाले डॉक्टर रात-दिन काम करने के बाद भी लोगों को बचा नहीं पाये, अपनी इस बेबसी पर अनेक डॉक्टरों के आँसू तक छलक गये। देश के सबसे प्रतिष्ठित अस्पताल एम्स के पूर्व निर्देशक एमसी मिश्रा ने कहा कि "मैं इस पेशे में 50 साल से हूँ...लेकिन आज किसी की मदद नहीं कर पा रहा।" कोई उम्मीद नजर न आते देख लोग अपने परिजनों की जान बचाने के लिए खुद ऑक्सीजन और आईसीयू बेड की व्यवस्था करने के लिए इधर-उधर भटकते रहे। व्हाट्सएप, फेसबुक और दूसरे सोशल मीडिया पर मदद की गुहार की बाढ़ आ गयी। कई जगह मरीजों के बेहाल परिजन खुद ऑक्सीजन सिलिण्डर लेकर टी-फिलिंग सेण्टर के बाहर घण्टों लाइन में खड़े रहे। कालाबाजारी इतनी बढ़ी की ऑक्सीजन सोने से भी महँगी हो गयी। 600 रुपये का सिलिण्डर 50 हजार तक बिका। प्रशासन इसे काबू में करने के बजाय हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा। हैदराबाद में एक ऑक्सीजन प्लांट के बाहर जमा भीड़ पर काबू पाने के लिए पुलिस बुलानी पड़ी। हर सम्भव कोशिशों के बावजूद भी लोग अपने परिचितों की जान बचाने में असफल हो गये। ऐसी भयावह हालत न केवल आज भी जारी है, बल्कि कोरोना महामारी के कई नये और भयानक हमले सामने आ रहे हैं और जनता की बदहाली बढ़ती जा रही है।

आज भी स्थिति इतनी भयावह है कि मृतक के परिजनों को अन्तिम संस्कार के लिए लम्बा इन्तजार करना पड़ रहा है। इससे पहले हर शहर के शमशान घाटों पर जगह कम पड़ गयी। दिल्ली की राजधानी सीमापुरी शमशान घाट में कोहराम मचा गया। 28 अप्रैल को वहाँ 122 लाशें जलीं। अन्तिम संस्कार करने वाले ने बताया कि पिछले साल यहाँ लाये गये मृतकों की अधिकतम संख्या 22 ही थी। लेकिन अब इसका कोई हिसाब रखनेवाला ही नहीं है। दिल्ली ही नहीं बल्कि सूरत, लखनऊ, पुणे और देश के हर हिस्से से ऐसी मातम और निराशाभरी खबरें आ रही हैं। कितने ही शहरों में नये शमशान बनाने पड़े।

आखिर पूरे देश में लाखों लोगों को मौत के मुँह में धकेलने का जिम्मेदार कौन है? दिल्ली सरकार केन्द्र सरकार को जिम्मेदार बता रही है तो केन्द्र सरकार राज्य सरकारों पर ठीकरा फोड़ रही है। जबकि सभी जानते हैं कि बद-इन्तजामी और सही उपचार के अभाव में लोग मर रहे हैं। पिछले साल भर में जब से महामारी शुरू हुई है, तब से व्यवस्था को दुरुस्त क्यों नहीं किया गया? कोरोना की दूसरी लहर की पहले से तैयारी क्यों नहीं की गयी, जबकि वैज्ञानिक लगातार इसकी चेतावनी दे रहे थे? यह सब जाँच-पड़ताल

का विषय है।

यह बात गौर करने वाली है कि जब तमाम देशों की सरकारें कोरोना वायरस की पहली लहर से सबक लेकर जरूरी कदम उठा रही थी तब भारत सरकार इससे निपटने की कोई भी कार्य-योजना नहीं बना रही थी। इस साल की जनवरी में प्रधानमंत्री बेहद गैर-जिम्मेदारी का परिचय देते हुए खुद अपनी पीठ थप-थपाते रहे थे। उन्होंने कहा कि हमने अपने देश से कोरोना वायरस को खत्म कर दिया है। मुख्यधारा की मीडिया मोदी को विश्व गुरु प्रचारित करने में व्यस्त थी। यह वही समय था, जब अनेक राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ कोरोना की दूसरी लहर के बारे में चेतावनी दे रही थीं। लेकिन झूठे अभिमान में चूर सरकार ने कोरोना को खत्म बताकर देश को भयंकर संकट में डाल दिया। यह बात पिछले साल ही समझ आ गयी थी कि हमारे पास संकट की स्थिति से निबटने के लिए पर्याप्त अस्पताल, दवाइयाँ, चिकित्सा उपकरण, चिकित्साकर्मी और ऑक्सीजन नहीं हैं। इसके बावजूद सरकार ने इन सबकी व्यवस्था के लिए कोई योजना नहीं बनायी और विशेषज्ञों की राय नहीं ली। हद तो तब हो गयी जब साल की शुरुआत में भारी मात्रा में ऑक्सीजन को दूसरे देशों में बेच दिया गया। सरकार ने मेडिकल ऑक्सीजन के उत्पादन और भण्डारण के लिए कोई काम नहीं किया। 90 फीसदी ऑक्सीजन की आपूर्ति उद्योगों को की गयी। यह असंवेदनशीलता की अन्तिम सीमा थी। आज ऑक्सीजन की कमी से होने वाली मौतों की जिम्मेदारी सरकार की नहीं तो और किसकी है? सरकार देश की जनता को मौत के मुँह में झोंककर मुट्ठीभर अडानियों और अम्बानियों का हित साधने में लगी रही।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने ऑक्सीजन माँगने वालों और उन्हें मदद देने वालों पर एफआईआर दर्ज करके अपना मुँह काला कर लिया। जौनपुर के एक एम्बुलेंस ड्राईवर ने जब लोगों को मरते देखा तो उसने अपनी पत्नी के जेवरात बेचकर 27 लोगों को ऑक्सीजन दिलाकर उनकी जान बचायी। इस महान और मानवतावादी काम के लिए कोई भी सरकार उसे पुरस्कार देती, लेकिन योगी सरकार ने उस पर एफआईआर दर्ज कर जेल में डाल दिया, लेकिन चारों ओर से जब थू-थू हुई तो उससे घबराकर सरकार को उसे छोड़ना पड़ा। जनता की जान बचाना तो दूर उनकी मदद करने वालों को भी बर्दाश्त नहीं किया जा रहा है।

आखिरकार, दिल्ली हाई कोर्ट ने जब सरकार को लताड़ा और अन्तरराष्ट्रीय मीडिया में हो रही किरकिरी के चलते सरकार ने नींद से जागने का प्रयास किया, तब भी हालात जस के तस बने रहे क्योंकि जितना नुकसान कर दिया गया था, उसे रातोंरात सुधारा नहीं जा सकता था। जैसे-- नवउदारवादी व्यवस्था ने सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा का पूरा ढाँचा तोड़ दिया था, जिसे रातोंरात फिर से खड़ा करना असम्भव है। पहले हर सरकारी अस्पताल के पीछे ऑक्सीजन का प्लांट होता था, जिससे अस्पताल में ऑक्सीजन की सप्लाई होती थी, लेकिन इस व्यवस्था को खत्म कर दिया गया। अब उस प्लांट के केवल खण्डहर बचे हुए हैं। निजी अस्पताल अपना प्लांट लगाने के बजाय सिलेण्डर पर ही निर्भर रहते हैं। इन सबके चलते बाहर से ऑक्सीजन सिलेण्डर की आपूर्ति की भारी जरूरत पड़ने लगी। जब औद्योगिक ऑक्सीजन की सप्लाई की व्यवस्था की गयी, तो उसे ढोने वाले वाहन की कमी पड़ गयी, जिसे तुरन्त बनाना असम्भव था। यानी पूरी व्यवस्था ही चरमरा गयी।

इण्डियन एक्सप्रेस की एक खबर के अनुसार, पिछले साल कोरोना महामारी के समय दिल्ली में 4 स्थायी अस्पताल बनाये गये थे जो जुलाई तक तैयार हो गये थे। छत्तरपुर में 10 हजार बेड का एक अस्पताल बनाया गया था जिसमें एक हजार बेड ऑक्सीजन वाले थे। लेकिन फरवरी 2021 में ये सारे अस्पताल बन्द कर दिये गये। अगर उन अस्पतालों को बन्द नहीं किया जाता तो दिल्ली की ऐसी बुरी गत न होती। उत्तर प्रदेश जो संक्रमण के मामले में महाराष्ट्र के बाद आज दूसरे नम्बर पर है, यहाँ पिछले साल 503 कोविड अस्पताल और डेढ़ लाख बेड तैयार करने का दावा किया गया था, लेकिन यह जानकर हैरानी होगी कि अब तक केवल 83 अस्पताल और 17 हजार बेड ही बन पाये हैं। यानी 15 फीसदी काम भी पूरा नहीं किया गया, जिससे पूरे प्रदेश में हाहाकार मचा हुआ है। इसी तरह पुणे में भी पिछले साल 800 बेड वाला एक अस्पताल बनाया गया था लेकिन जनवरी में वह भी बन्द कर दिया गया। पिछले साल कर्नाटक कोरोना मामलों में दूसरे स्थान पर था, लेकिन इस साल केवल 18 अतिरिक्त बेड ही बढ़ाये गये मतलब किसी भी बुरी परिस्थिति में आम जनता का मारना तय है। बेंगलुरु में केवल 117 आईसीयू बेड हैं। राँची के सबसे बड़े अस्पताल "राजेन्द्र इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइन्स" में एक भी सिटी स्कैन मशीन नहीं है। जबकि यह बात जगजाहिर है कि कोरोना संक्रमण का पता लगाने के लिए सिटी स्कैन की बेहद जरूरत पड़ती है। लेकिन उसके बाद भी पूरे एक साल में कोई इन्तजाम नहीं किया गया। बिहार के 38 जिलों में से केवल 10 में ही 5 से ज्यादा वेंटीलेटर हैं। बिहार में 5000 डॉक्टरों के पद रिक्त हैं और कोरोना महामारी के समय भी ये पद नहीं भरे गये हैं। न तो केन्द्र और न ही किसी राज्य सरकार ने पिछले एक साल में कोई इन्तजाम किया।

सरकारों ने कोरोना महामारी को अनदेखा ही नहीं किया बल्कि अपने स्वार्थ के लिए गाँव-गाँव तक फैलाने का काम भी किया। 5 राज्यों में चुनाव प्रचार में किसी भी तरह के महामारी नियम-कानून का पालन नहीं किया गया। समाचार एजेंसी रायटर्स के अनुसार, भारत सरकार की बनायी गयी वैज्ञानिकों की एक संस्था ने मार्च के शुरुआत में ही प्रधानमंत्री को नये वायरस के बारे में चेतावनी दी थी। इसे गम्भीरता से लेकर कोई कदम उठाने की जगह प्रधानमंत्री सत्ता के लालच में चुनावी रैलियाँ करते रहे। हिन्दू

वोटों के तुष्टीकरण के लिए एक साल पहले ही कुम्भ मेला भी आयोजित करवा दिया, जिससे लाखों लोगों में संक्रमण फैला। उत्तर प्रदेश में पंचायत चुनाव में ड्यूटी करते वक्त हजारों शिक्षक और शिक्षा मित्र कोरोना संक्रमित हो गये। जिनमें से सात सौ से अधिक की मृत्यु तक हो गयी और लाखों बीमार हो गये। इन्हीं में एक 8 माह की गर्भवती भी थी जिसे जबरन चुनाव में ड्यूटी करने को विवश किया गया और बाद में कोरोना से उसकी और अजन्मे बच्चे की मौत हो गयी। इन मौतों का जिम्मेदार कौन है? हमें सोचना चाहिए कि आज के हालात में क्या चुनाव इनसानी जिन्दगी से भी ज्यादा जरूरी है?

मद्रास हाई कोर्ट ने सरकार के रवैये पर कटाक्ष करते हुए चुनाव आयोग पर हत्याओं का मुकदमा तक चलाने की बात कही। लेकिन चुनाव आयोग पर इसका कोई असर नहीं हुआ। आज वह कोई स्वतंत्र संस्था नहीं रह गयी है, बल्कि मौजूदा केन्द्र सरकार के हाथों की कटपुठली बन गयी है। चुनाव प्रक्रिया में बदइन्तजामी और कोरोना प्रोटोकाल की अनदेखी के लिए कार्रवाई करके सजा देने के बजाय, मोदी सरकार ने मुख्य चुनाव आयुक्त सुनील अरोड़ा को गोवा का राज्यपाल नियुक्त करके सम्मानित किया। इस तरह करोड़ों मासूम देशवासियों को मौत के मुँह में धकेल कर भी चुनाव करवाने का ईनाम सुनील अरोड़ा को मिल गया।

आपदा के इस भयावह समय को भी कुछ लोग अवसर में बदलने से बाज नहीं आ रहे हैं। चौतरफा संकट के दौर में भी लाशों के चारों ओर मुनाफे के गिद्ध इकट्ठे हो रहे हैं। ये मुर्दाखोर टीकाकरण के नाम पर जनता को लूट रहे हैं। भारत में कोवैक्सीन और कोविशील्ड नाम से दो तरह के टीके को भारत सरकार ने मंजूरी दी है। कोवैक्सीन को 'भारत बायोटेक' और कोविशील्ड को 'सीरम इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया' नामक निजी कम्पनी बना रही हैं। 'भारत बायोटेक' के चेयरमेन डॉ. कृष्णा ऐल्ला ने कहा था कि कोवैक्सीन की लागत 4 रुपये से भी कम है। लेकिन आज मोटा मुनाफा कमाते हुए यह वैक्सीन केन्द्र सरकार को 150 रुपये में, राज्य सरकार को 600 रुपये और निजी अस्पतालों को 1200 रुपये में बेची गयी। सरकार ने दावा किया था कि सबको फ्री में वैक्सीन लगायी जाएगी, लेकिन आज पूनावाला सरकारी खर्च से शोध करके तैयार किये गये वैक्सीन से मोटी कमाई कर रहा है। हाई कोर्ट ने इस लूट पर हस्तक्षेप करते हुए पूछा कि आखिर वैक्सीन में इतना ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए सरकार ने मंजूरी क्यों दी? सरकार ने पूरे देश से टीकाकरण की उपलब्धता के बारे में भी झूठ बोला। आज केन्द्र सरकार के पास पूरे देश के लिए टीके उपलब्ध नहीं हैं। दूसरी ओर दिल्ली सरकार बार-बार केन्द्र सरकार से अपील कर रही है कि वह इन दोनों कम्पनियों से टीके का फॉर्मूला लेकर विशाल पैमाने पर या तो खुद ही टीका बनाये या देश की सभी निजी कम्पनियों को इसे बनाने की इजाजत दे। नहीं तो मौजूदा दर से देश के टीकाकरण में 2 से 3 साल लग जायेगा, लेकिन निरंकुश सरकार किसी बात पर भी ध्यान नहीं दे रही है।

पिछले साल सरकार ने कोरोना महामारी से निबटने के लिए 'पीएम केयर्स फण्ड' बनाया था। एक रिपोर्ट के अनुसार शुरुआती 3 महीनों में ही इसमें 10 हजार करोड़ रुपये से ज्यादा जमा हो चुके थे। एक साल बाद भी महामारी से बचाव के लिए सरकार ने इस फण्ड का कोई इस्तेमाल नहीं किया तो आखिर इतने पैसों का हुआ क्या? दरअसल सरकार ने यह फण्ड भी पूँजीपतियों को मालामाल करने में उड़ा दिये। पिछले साल सरकार ने तीन निजी कम्पनियों को वेंटीलेटर बनाने का ठेका दिया था, जिसके लिए करोड़ों रुपये एडवांस दिये गये। चौकाने वाली बात यह है कि किसी भी कम्पनी के पास वेंटीलेटर बनाने का कोई अनुभव नहीं था। जैसा की स्वाभाविक था तीनों कम्पनियों के वेंटीलेटर बार-बार क्लिनिकल ट्रायल में फेल पाये गये। साफ जाहिर होता है कि कम्पनियों ने मोटा मुनाफा कमाया और जनता के हिस्से में मौत आयी। ऐसा काम करनेवाले को ही मौत का सौदागर कहते हैं।

आज हम अपने सगे-सम्बन्धियों को सामने मरते हुए देखने के लिए अभिशप्त हैं। इस संकट की घड़ी में अधिकतर निजी अस्पतालों ने अपने दरवाजे आम जनता के लिए बन्द कर दिये हैं, जो निजी अस्पताल खुले हुए भी हैं उनमें लूट के हर रोज नये कीर्तिमान बन रहे हैं, लाखों रुपये वसूले जा रहे हैं। यह साफ हो चला है कि इनका वास्ता केवल मुनाफे से है न कि जनता के दुख-दर्द से। जिस निजी मॉडल को सर्वोत्तम कहकर पूरे देश में लागू किया गया, आज उसका चेहरा बेनकाब हो गया है। आज इस संकट के समय में सरकारी अस्पताल ही लोगों की थोड़ी बहुत उम्मीद बने हुए हैं। जिन नवरत्नों को मोदी सत्ता में आते ही बेचने के लिए आमादा हैं आज उन्हीं में ऑक्सीजन का उत्पादन हो रहा है। डबल्यूएचओ के अनुसार प्रत्येक 1000 लोगों पर एक डॉक्टर होना चाहिए, लेकिन हमारे देश में यह संख्या बहुत पीछे है। स्वास्थ्य ढाँचे को मजबूत करने की जगह सरकार उसका पूरी तरह निजीकरण करने पर जोर दे रही है, जिसके दुष्परिणाम इस संकट में साफ नजर आ रहे हैं। दरअसल, नवउदारवादी व्यवस्था के तहत निजी क्षेत्र को बढ़ावा दिया जा रहा है और सार्वजनिक क्षेत्र को बर्बाद किया जा रहा है। दुनिया को चलाने का नवउदारवादी मॉडल मुट्ठी भर धनपशुओं को ध्यान में रखकर बनाया गया है जिसमें करोड़ों लोगों की जिन्दगी कीड़े-मकोड़ों से भी गयी गुजरी है। इस मॉडल के तहत सरकार लड़कर हासिल की गयी जनता की सारी रियायतों को एक-एक कर खत्म कर रही है। अब सरकार खुलकर पूँजीपतियों के साथ है। जनता का भला तभी होगा, जब मौजूदा आदमखोर व्यवस्था की जगह एक बेहतर व्यवस्था का निर्माण हो, अब हमारे सामने एकमात्र विकल्प बचा है कि जल्दी से एक नयी बेहतर व्यवस्था का निर्माण करने के लिए आगे बढ़ें।

कोरोना विशेष

कोरोना महामारी : सच्चाई बनाम मिथक

-- अमित इकबाल

मौजूदा महामारी के चलते बहुत से पूँजीवादी मिथकों की सच्चाई आज हम सबके सामने उजागर हुई है। यह वही झूठ का गुब्बारा है जिसे पूँजीवादी व्यवस्था रोज हवा देकर फुलाती है। इसका मकसद होता है जनता की दुर्दशा को बनाये रखना और इसमें सरकारों के निकम्मेपन और वर्गीय स्वार्थ को पूरा करते रहना। इन्हें न सिर्फ कॉलेज-विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है, बल्कि मीडिया के जरिये बार-बार दोहराते हुए लोगों के जेहन में सच्चाई के रूप में स्थापित भी किया जाता है। यहाँ जिन मिथकों के बारे में हम बात करने वाले हैं आर्थिक प्रकृति के बावजूद वे सब समाज में सांस्कृतिक और राजनीतिक मिथक के रूप में प्रचलित हैं। अब हम एक-एक मिथक को महामारी के दौरान सामने आये तथ्यों की रोशनी में परखेंगे।

पहले हम मौजूदा अर्थव्यवस्था को संचालित करनेवाले दर्शन-- नवउदारवाद के बारे में बात करेंगे। नवउदारवादी दर्शन के प्रणेता और प्रस्तोता अर्थशास्त्री तर्क देते हैं कि मुक्त व्यापार और मुक्त प्रतियोगिता से ही सबके लिए रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और चिकित्सा यानी सभी मूलभूत जरूरतों का इन्तजाम हो जायेगा। बाजार ही सबको रोजगार उपलब्ध करा देगा। इन सभी जरूरतों को पूरा करने की सरकार की कोई जिम्मेदारी नहीं है। लेकिन जब बेलगाम बाजार के बुरे नतीजे सामने आये तो कहा गया कि कुछ बाहरी कारकों, जैसे-- युद्ध, महामारी आदि के चलते प्रतियोगिता सही ढंग से चल नहीं पायी, जिससे बुरे नतीजे आये। लेकिन सवाल यह है कि क्या युद्ध और महामारी बाहरी कारक हैं, जिनके बारे में अर्थशास्त्री बिलकुल ही अन्जान थे, जो मुक्त बाजार की तारीफ के पुल बाँधते समय इन्हें भूल गये थे?

अगर हम युद्ध को ही लें तो किसी एक देश द्वारा दूसरे देश पर युद्ध थोपना भी आर्थिक स्वार्थ और राजनीति से प्रेरित होता है। किसी देश का शासक इतना अहमक नहीं होता कि अपनी मस्ती के लिए युद्ध को अन्जाम दे। देश के अन्दर एक ऐसा वर्ग हमेशा मौजूद रहता है, जो युद्ध की आकांक्षा रखता है और उसमें अपना आर्थिक हित देखता है। जैसे-- हथियार बनाने वाली कम्पनियाँ और उसे बेचनेवाले व्यापारी। अक्सर एक ताकतवर देश दूसरे कमजोर देश को युद्ध के जरिये धमकाता है या गुलाम बनाकर उसके संसाधनों को लूटता है। प्रशिया के सैन्य सिद्धान्तकार कार्ल फिलिप क्लॉजविट्ज ने एक समय में ठीक ही कहा था कि "युद्ध सामान्य तौर पर राजनीतिक कार्रवाई का ही जारी रूप है, लेकिन दूसरे साधनों से।"

अगर कोई देश युद्ध की तैयारी करता है, जैसे-- हथियार खरीदने के लिए अपने बजट का इस्तेमाल करता है और स्वास्थ्य सुविधाओं में कटौती करता है, तो जाहिर सी बात है कि महामारी फैलने पर उसकी पूरी स्वास्थ्य व्यवस्था ही नाकाम हो जायेगी क्योंकि न तो उसके पास पर्याप्त संख्या में अस्पताल होंगे और न ही प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मी। इसलिए केवल युद्ध के दौरान ही जनता नहीं मरती, बल्कि युद्ध की तैयारी में जब देश के संसाधन झोंक दिये जाते हैं तो वह भी जनता के लिए जानलेवा ही होता है।

कई विद्वान बताते हैं कि मौजूदा कोरोना महामारी भी पर्यावरण के दूषित होने के चलते ही इतने विकराल रूप में सामने आयी है। यह उसी नवउदारवादी मॉडल की देन है जो प्रकृति को निचोड़कर तबाह कर देता है। इसलिए चाहे महामारी हो या युद्ध सभी शासक वर्ग के हित साधने के काम ही आती है। कई जन बुद्धिजीवी और वैज्ञानिक बता चुके हैं कि मौजूदा महामारी नवउदारवाद की ही देन है क्योंकि मुनाफा निचोड़ने के लिए जान-बूझकर स्वास्थ्य सुविधाओं को कमजोर किया गया है।

बेलगाम बाजार और एकाधिकारी कम्पनियों के वर्चस्व के चलते अधिकांश मालों की कीमतें माँग-आपूर्ति के नियम से तय नहीं होती हैं बल्कि आपस में साँठ-गाँठ करके तय की जाती है। निजी दवा कम्पनी एस्ट्राजेनेका और ऑक्सफोर्ड विश्विद्यालय की साझी शोध के तहत आया कोविड-19 का टीका कोविशील्ड का उदाहरण इसे पुष्ट करता है। इसे इजाद करने के बाद इन संस्थाओं ने कई देशों की गिनी-चुनी कम्पनियों को उत्पादन करने और दवा बेचने का लाइसेंस बेचा है। भारत में अदार पूनावाला की सीरम इंस्टिट्यूट इसकी इकलौती उत्पादक कम्पनी है। कई देशों में इसकी कीमत 2.15 से 5.25 डॉलर तक है, जबकि भारत में इसकी कीमत 8 डॉलर (600 रुपये) रखी गयी है। एक ही दवा बनाने की लागत अमरीका की तुलना में भारत में कम ही होगी

क्योंकि यहाँ मजदूरी की दर बहुत कम है। इसके बावजूद भारत में इसके महँगे होने का मतलब है कि इसकी कीमत, लागत खर्च और माँग-आपूर्ति के नियम से तय नहीं हो रही है, बल्कि उत्पादक कम्पनियों की मनमर्जी से तय हो रही है।

यह भी एक मिथक गढ़ा गया है कि उपलब्ध संसाधनों के कुशल बँटवारे के लिए बाजार में प्रतियोगिता का होना जरूरी है। आइये, इसकी सच्चाई परखते हैं। आज महामारी की चपेट में रोज 4 लाख से भी ज्यादा लोग आ रहे हैं और सरकारी आँकड़ों के अनुसार देशभर में करीब 4 हजार लोग रोज जान से हाथ धो रहे हैं। क्या यह सब सिर्फ महामारी के चलते है? मीडिया में प्रकाशित खबरों के अनुसार इसके लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार है अस्पताल की कमी, ऑक्सीजन का भारी अभाव, दवाइयों की कमी आदि। बुनियादी स्वास्थ्य सुविधा देश की आबादी की तुलना में बहुत कम है, जिसके चलते लोग इलाज के अभाव में मर रहे हैं। अस्पताल, दवा, वेंटीलेटर, ऑक्सीजन आदि की व्यवस्था की जिम्मेदारी मुक्त बाजार की प्रतियोगी कम्पनियों की है। फिर वे कुशल बँटवारा क्यों नहीं कर पा रही हैं? नवउदारवादी व्यवस्था पर यह सबसे बड़ा सवाल है। दरअसल नवउदारवादी व्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं को खत्म किया गया, जिसके चलते इस महामारी में न जाने कितने लोग अपनों से बिछड़ते जा रहे हैं।

एक मिथक यह भी है कि सरकार का काम है निजी कम्पनियों के लिए कारोबार का माहौल बनाना, कारोबार करना नहीं। इसके चलते हमारे देश में ही नहीं, दुनिया के लगभग सभी देशों में जन सुविधा मुहैय्या कराने से सरकारें हाथ पीछे खींच चुकी हैं यानी कमजोर तबके के लिए सस्ता राशन, सस्ती स्वास्थ्य सेवा, निशुल्क शिक्षा आज गायब हो चुकी है। निजी कम्पनियों के फायदे के लिए रेल, बस, कॉलेज-विश्वविद्यालय और सार्वजनिक कम्पनियों को बेच दिया गया। मजदूरों के हित में बने श्रम कानूनों को खत्म कर दिया गया। इनसे देश की बहुत बड़ी आबादी बदहाल-कंगाल हो गयी और महँगी स्वास्थ्य सुविधा का खर्चा उठा पाने में अक्षम हो गयी तथा महामारी फैलने पर काल के गाल में समाती चली जा रही है।

पहले लगभग हर सरकारी अस्पताल के पास अपना ऑक्सीजन प्लांट लगाना जरूरी होता था, जिससे कभी ऑक्सीजन की किल्लत न हो। लेकिन इस व्यवस्था को भी ध्वस्त कर दिया गया। निजी अस्पताल अपना ऑक्सीजन प्लांट नहीं लगाते, बल्कि बाहर से ऑक्सीजन सिलेण्डर की आपूर्ति पर निर्भर रहते हैं। इसने समस्या को और विकराल बना दिया। इसीलिए आज हम देख रहे हैं कि भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स जैसी कम्पनी तथा आईआईटी जैसे कितने ही सरकारी शोध संस्थान बाकी काम छोड़कर ऑक्सीजन उत्पादन में लग गये क्योंकि निजी क्षेत्र उसकी आपूर्ति करने में नाकाम साबित हो गया।

मिथक है कि देश के विकास के लिए जरूरी है कि पूँजीपति मुनाफा कमाते रहें। अब इस मिथक की पड़ताल करते हैं। पिछले साल भारत के पूँजीपतियों ने 12,970 अरब रुपये का मुनाफा कमाया है। इससे सभी भारतीय नागरिकों को 94,045 रुपये बाँटा जा सकता है। लेकिन महामारी में कोई सुविधा लोगों तक नहीं पहुँची। बल्कि जनता भुखमरी और बदहाली की शिकार रही और अस्पताल, दवा, ऑक्सीजन के अभाव में मरती रही।

यह भी पूरी तरह से बकवास ही है कि केन्द्रीय स्तर पर पूरे देश के लिए योजना बनाना गैर-जरूरी तथा गैर-लोकतान्त्रिक प्रक्रिया है। लेकिन नवउदारवाद को बढ़ावा देने के लिए ऐसी बकवास नीतियों को प्रश्रय दिया गया। पूँजीवाद की नजर में योजनाबद्ध विकास एक गैर-जरूरी चीज है। हमने देखा कि योजना आयोग को भंग करके उसकी जगह नीति आयोग (नेशनल इंस्टीट्यूशन फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया) बनाया गया। इसका उद्देश्य है कि नवउदारवाद के पक्ष में सरकारों को सलाह देना, लेकिन उन सलाहों को लागू करने के चलते हुए नुकसान की जिम्मेदारी यह संस्था नहीं उठाती। इसी का नतीजा है कि दवा और ऑक्सीजन के उत्पादन तथा वितरण की कोई योजना नहीं है, जबकि सरकार के पास इस महामारी से लड़ने की तैयारी के लिए पूरा एक साल था। लेकिन इसकी मुकम्मल योजना नहीं बनायी गयी, जबकि दूसरे देशों ने योजनाबद्ध काम करके ज्यादा लोगों की जान बचायी।

एक मिथक है कि अपना भला तो जग भला। ब्रिटेन की पूर्व-प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर की मशहूर उक्ति है 'समाज जैसी कोई चीज है ही नहीं। बस बहुत सारे लोग हैं।' यह आज के मुख्यधारा के पूँजीवादी अर्थशास्त्र का एक सूत्र है। यानी लोग एक-दूसरे की मदद स्वार्थ के चलते करते हैं। यह बात इतनी बार इतने अलग-अलग तरीक से प्रचारित की गयी है कि लोगों के दिमाग में घर कर लेती है और वे इसे ही सही मानने लगते हैं, भले ही सच्चाई इसकी उलटी है। महामारी ने इस मिथक को बेनकाब कर दिया है। पिछले साल प्रवासी मजदूरों की मदद में और इस साल अस्पताल, दवाई, प्लाज्मा, ऑक्सीजन के लिए लाचार लोगों की मदद में सबसे आगे आ रहे हैं, परिचित-अपरिचित बहुत से लोग या ऐसे लोगों का समूह जिनका कोई निजी हित नहीं है। किसी ने अपनी बीबी का गहना बेचकर एम्बुलेंस खरीद ली, जिससे लोगों की मदद कर सके।

सरकार, अदालत आदि का काम है निष्पक्ष रूप से जनता की भलाई करना। यह भी एक मिथक है। वास्तव में राजसत्ता तथा सरकार को निष्पक्ष और वर्ग से ऊपर बताया जाता है। पिछले साल करोड़ों प्रवासी मजदूर के पलायन की घटना ही इसे

झुठला देती है क्योंकि सरकार ने उनकी मदद नहीं की और अदालतों ने भी कोई संज्ञान नहीं लिया। राजसत्ता दरअसल शासक वर्ग के हित साधने का ही साधन है, सभी लोगों की भलाई करने का निष्पक्ष हिमायती नहीं।

यह भी दुष्प्रचार ही है कि भारत जैसे गरीब देश के पास फ्री में स्वाथ्य सेवा, महज टीका मुफ्त में देने के लिए पर्याप्त पैसे नहीं है। हाल ही में वित्तमंत्री ने ट्वीट करके देशवासियों को खबर दी है कि महामारी के बीच ही अप्रैल, 2021 में अब तक सबसे ज्यादा जीएसटी वसूला गया-- एक लाख इकतालिस हजार करोड़ रुपये। पिछले साल भारत का कुल स्वास्थ्य बजट महज 94 हजार करोड़ रुपये था। नये संसद भवन बनाने का बजट और पिछले साल लॉकडाउन में राहत का बजट बराबर था-- बीस हजार करोड़ रुपये। ऐसी खबर है कि राहत बजट का बड़ा हिस्सा पहले से चली आ रही योजनाओं पर खर्च किया गया। पिछले साल अक्टूबर में राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के इस्तेमाल के लिए दो नये हवाई जहाज खरीदे गये-- जिसकी कीमत 8,400 करोड़ रुपये है। सरकार पैसे की कमी का बहाना बनाकर गरीबों का मनरेगा का पैसा काटने में हिचकी नहीं। अब आप ही सोचिये कि पैसे की कमी का रोना कितना सच है?

इन मिथकों को लोगों ने क्यों स्वीकार कर लिया है? इन मिथकों का प्रचार-प्रसार टीवी, सिनेमा, आखबार तथा अन्य मीडिया, स्कूल-कॉलेज-विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम आदि के जरिये किया जाता है। अर्थशास्त्र के किसी भी छात्र से आप इन्ही मुद्दों पर बात कीजिए। वह कहेगा कि यह सब सही है। मैनेजमेंट पढ़ने-पढ़ाने वाले भी आपसे कहेंगे कि ये सारे मिथक सच हैं। उतना ही सच जितना न्यूटन के गति का सूत्र। लेकिन महामारी के दौरान सामने आने वाले तथ्यों से पता चलता है ये सारे शासक वर्ग के द्वारा फैलाये गये मनगढ़ंत किस्से हैं, जिनमें सच का अंश भी नहीं है।

साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्षरत योद्धा रैमजे क्लार्क को श्रद्धांजलि

अमरीका के पूर्व अटॉर्नी जनरल और प्रसिद्ध अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार कार्यकर्ता रैमजे क्लार्क, जो दुनिया भर में अमरीकी सैन्य आक्रमण के खिलाफ खड़े थे, 9 अप्रैल को न्यूयॉर्क शहर में अपने घर पर शान्तिपूर्वक अनन्त में खो गये। 93 वर्ष के रैमजे अपने करीबी परिवार से घिरे हुए थे।

रैमजे क्लार्क नस्लवाद विरोध और नागरिक अधिकार के एक सशक्त प्रवक्ता थे।

खाड़ी युद्ध के बारे में रैमजे की पुस्तक, *"द फायर दिस टाइम"* इराक के असैनिक बुनियादी ढाँचे के विनाश, बम से 2,50,000 लोगों की मौत का विवरण देती है।

रैमजे क्लार्क के लिए क्यूबा का बहुत महत्व था और उन्होंने कई बार इस द्वीप की यात्रा की। उन्होंने क्यूबा की सामाजिक उपलब्धियों की सराहना की और 1993 में क्यूबा जाते समय मैक्सिको को पार करते हुए "फ्रेंडशिपमेंट कारवाँ" शान्ति के पादरी को अपना सक्रिय समर्थन दिया।

सामाजिक न्याय के लिए ऐसा कोई संघर्ष या लक्ष्य नहीं था जिसके लिए रैमजे ने समर्थन न किया हो।

वे एक मानतावादी थे जिसे दुनिया भर में प्यार मिला।

रैमजे को दुनिया भर में उन लाखों लोगों ने जाना और पसन्द किया, जिनका उन्होंने बचाव किया।

प्रसिद्ध फिल्म निर्माता जोये स्टिलमैन द्वारा निर्मित पुरस्कार विजेता वृत्तचित्र *"सिटीजन क्लार्क : ए लाइफ ऑफ प्रिंसिपल"* में उनके जीवन के एक विशेष इतिहास को बताया गया है। जोये कहते हैं, "जब मैंने उनके जीवन का विवरण जाना, तो मुझे पता चला कि मुझे उनकी कहानी लोगों को सुनानी होगी। मेरे पास एक विकल्प था, या तो मैं खुद एक घर खरीदूँ या रैमजे के बारे में एक फिल्म में अपना पैसा लगाऊँ। मुझे खुशी है कि मैंने उनके जीवन का दस्तावेज बनाया। मैं इस काम को फिर से एक साँस में कर दिखाऊँगा।"

रैमजे क्लार्क एक ऐसे दुर्लभ व्यक्ति थे, जो सच्चे मानवाधिकारों की रक्षा और सच्ची मान्यताओं की रक्षा करने का साहस रखते थे। वे दुनिया भर में बड़ी शिद्दत से याद किये जायेंगे।

-- ग्लोरिया ला रीवा

जोश मलीहाबादी : अंधेरे में उजाला, उजाले में अंधेरा

-- विजय गुप्त

शब्बीर हसन खाँ के जोश मलीहाबादी बनने की कहानी एक भरे-पूरे, आसमान छूते पहाड़ के टूटने और बिखरने की कहानी है। जिन्दगी के आखिरी दिनों के असह्य दुःख, उपेक्षा और जानलेवा एकान्त के बीच जब जोश अतीत के सुख भरे पलों को याद करते हैं तो मानो आह भरते हैं,

अपने कभी के रंगमहल में जो हम गये
आँसू टपक पड़े दर-ओ-दीवार देखकर।

और जरा 'बिलखती यादें' नज्म के आखिरी दो बन्द देखिए, आप भी तार-तार हो उठेंगे--

मकबरों से आ रही है झुटपुटे की छाँव में
एक-एक करके रफीकों[1] के बिछड़ जाने की याद
'जोश' अब्रे-तीरह[2] में गुम है मेरा माहे-मुनीर[3]
कुश्ता[4] शम्मों के धुएँ में जैसे परवाने की याद

(1. साथियों के 2. काले बादलों में 3. प्रकाशमान चाँद 4. बुझी हुई)

धुआँ-धुआँ होती यादों को जोश साहब ने हवाओं में गुम होने नहीं दिया, बल्कि उन्हें खुशबू में बदलकर अपनी तहरीर की फुलवारी में चारों तरफ बिखेर दिया। बिखेरने की इस प्रक्रिया में जोश स्वयं भी बहुत बिखर गये। फूल और सुगन्ध तो दुनिया को मिले, लेकिन काँटे खंजर की तरह उनके दिल में उतर गये। अपनी आपबीती 'यादों की बारात' में उन्होंने लिखा भी है कि, "..... माजी (अतीत) से अपने को डसवा चुका तो कलम को खून में डूबो-डूबोकर सबकुछ कलमबन्द कर लिया और आपको सुनाने बैठ गया।"(1) अपनी बेहतरीन नज्म 'सूनी जन्नत' में वह सिरजनहार का हाल-अहवाल भी दिखलाते हैं--

चुभ रही है दिल में मिश्ले-नेश्तर[1] कमबख्त साँस
ये मकाँ है, या कोई चुभती हुई सीने की फाँस।

(1. नश्तर की तरह)

अपने ही जिस्मो-जाँ का किस्सा सुनाना जलती हुई भट्टी से गुजरना होता है। अपने ही आँसुओं में भीगना और अपने ही खून में नहाना होता है।

कविता तो दिल के खून में डूब कर ही सुर्खरू होती है और हर्फ दर्द के सान पर चढ़कर ही मानीखेज और सच्चे होते हैं। गालिब की तरह जोश मलीहाबादी भी अपने एक-एक हर्फ पर अटूट विश्वास रखते हैं और पूरे मन-प्राण से उन हर्फों में जान फूँक देते हैं। उनके शब्द-चुनाव और प्रयोग पर आप उँगली नहीं रख सकते। कविता की माला में वह शब्दों के फूल पिरोते हैं। वह बहुत सावधान और पारखी शब्द-शिल्पी हैं। उनकी साँस-साँस साहित्य और कला में रची-बसी हुई है। गद्य उनकी देह है और पद्य उनकी आत्मा। कबीर ने लिखा है कि 'मोको कहाँ ढूँढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास।' जोश भी अपने ढूँढने वालों से कहते हैं कि--

ऐ शख्श! अगर 'जोश' को तू ढूँढना चाहे
वो पिछले पहर हल्का-ए-इर्फा[1] में मिलेगा
और सुबह को वो नाजिरे-नज्जारा-ए-कुदरत[2]
तरफे-चमनो-सहने-बयाँबा[3] में मिलेगा
और दिन को वो सरगश्ता[4]-ए-इसरारो-मआनी[5]
शहरे-हुनरो[6]-कुए-अदीबाँ[7] में मिलेगा

(1. अध्यात्मवादियों में 2. प्राकृतिक सौन्दर्योपासक 3. उद्यानों और वनों की ओर 4. ढूँढने वाला 5. भाषा की गुत्थियाँ सुलझाने वाले 6. कलाविदों के शहर में 7. साहित्यिकों की गली में)

खुदा तो बन्दे के पास है और जोश कुदरत के करिश्मों में, वन-उपवन में, कला मर्मज्ञों में, लिखने वालों के गली-कूचों में और भाषा को सजाने-सँवारने और उसकी पेचीदगियों को सुलझाने वालों के पास हैं। भाषा की शुद्धता और सटीकता जोश की इबादत है। वह गलत शब्द-प्रयोग बर्दाश्त ही नहीं करते थे। इस मामले में उनके कई किस्से बहुत मशहूर हैं। "जवाहर लाल नेहरू को एक किताब दी तो उन्होंने कहा, 'मैं मशकूर हूँ।' जोश ने उन्हें फौरन टोका, 'आपको कहना चाहिए था, शाकिर हूँ'।" किसी से चूक हुई नहीं कि वह अपना नफा-नुकसान छोड़कर बड़े-बड़े तोपचन्द से भी भिड़ जाया करते थे। जोश के पोते फर्रुख जमाल लिखते हैं कि "एक बार पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल अयूब खाँ ने उन्हें खुश करने के लिए कहा कि आप बहुत बड़े आलम हैं। जोश ने फौरन जवाब दिया सही लफ्ज आलिम है न कि आलम।

इस पर अयूब नाराज हो गये और उन्होंने आदेश दिया कि जोश को दी गयी सीमेंट एजेंसी उनसे वापस ले ली जाये और ऐसा ही हुआ।"(2) दुःख और अपमान की लपट उनकी लम्बी नज्म 'एतिराफे-अज्ज' (हीनता स्वीकृति) में महसूस की जा सकती है,

बस यही सतही सी बातें, बस यही ओछे से रंग
बेखबर था मैं कि दुनिया राज-अन्दर-राज है
वो भी गहरी खामोशी है जिसका नाम आवाज है
ये सुहाना बोसताँ[1] सर्वो-गुलो-शमशाद[2] का
एक पल भर का खिलंदरापन है आबो-बाद[3] का
इब्तिदा-ओ-इन्तहा[4] का इल्म नजरों से निहाँ[5]
टिमटिमाता सा दिया, दो जुल्मतों[6] के दर्मियाँ

(1. फुलवारी 2. सुन्दर वृक्षों और फूलों का 3. बादल तथा वायु का 4. आदि तथा अन्त 5. गुप्त 6. दो लोकों के अन्धकार के।)

जोश की कविता अपने दुःख के आइने में संसार को भी समेट लेती है। अपनी पीड़ा जग की पीड़ा बन जाती है। कवि का सुख-दुःख, विरोध, क्रोध और प्रतिकार अपने लाभ-लोभ और निजता की सीमा लाँघ कर सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की ओर बढ़ जाता है। कविता की यही सामाजिकता जोश मलीहाबादी को सार्वभौमिक बना देती है। वह अपना ही नहीं, सबका कवि हो जाता है। उसके व्यक्तित्व का सार्थक रुपान्तरण हो जाता है। यह रुपान्तरण आसान नहीं है। जोश लिखते हैं कि, "व्यक्तित्व तो बनता है एक जुग बीत जाने और सालहा-साल खूने-जिगर थूकने के बाद।"[(3)]

गद्य हो या पद्य वह दोनों विधाओं में जी-जान लगा देते हैं। हर शब्द, हर वाक्य पर वह इतनी मेहनत करते हैं कि हैरानी होती है। 'स्टेट्समैन' के रिपोर्टर और बाद में सम्पादक बने आर व्ही स्मिथ ने लिखा है कि, "सुबह चार बजे उठकर लिखना शुरू कर देते थे और शाम 6.30 बजे तक लिखते रहते थे।"[(4)] जोश मलीहाबादी की आत्मकथा 'यादों की बारात' कितनी मेहनत और मुश्किलों से लिखी गयी, यह उनकी ही जबानी सुनिए, "मैंने अपनी जिन्दगी के हालात लिखने के सिलसिले में पूरे छह बरस तक ज्यादातर लगातार और कभी-कभी रुक-रुककर मेहनत की है। डेढ़ बरस की मेहनत के बाद पहला मुसव्वदा (पाण्डुलिपि) तैयार किया, उसे रद्दी की टोकरी में डाल दिया। फिर डेढ़ बरस में दूसरा मुसव्वदा मुकम्मिल किया, उस पर भी लकीर खींच दी। फिर डेढ़-पौने दो बरस लगाकर नौ सौ पृष्ठों का तीसरा मुसव्वदा तहरीर किया और तीन हजार रुपये में उसकी किताबत भी मुकम्मिल करा ली। मगर जब उस पर एक गहरी नजर डाली तो पता चला कि इस मुसव्वदे को भी मैंने ऐसे घबराये हुए आदमी की तरह लिखा है, जो सुबह बेदार होकर रात के ख्वाब को इस खौफ से जल्दी-जल्दी उल्टा-सीधा लिख मारता है कि कहीं वह जेहन की गिरफ्त से निकल न जाये। और खुदा-खुदा करके यह चौथा मुसव्वदा छप रहा है।"[(5)]

जोश अपने हर मुसव्वदे पर एक बढ़ई की मानिन्द काम करते हैं। उसे काटते हैं, छीलते हैं, खराद पर कसते हैं, रंग-रोगन करते हैं, चमकाते हैं। ये सारे काम वे तब तक करते हैं, जब तक भाषा और कला की कसौटी पर रचना सौ फीसदी टंच न हो जाये। रचना रचनाकार के पसीने और रक्त के साथ अन्तर्रात्मा के प्रकाश से प्रकाशित होती है न कि अल्लाह के नूर से। अपनी एक रूबाई में जोश अल्लाह से भी गुमान करते नजर आते हैं--

अपने ही से कस्बे-नूर[1] करता हूँ मैं
कब ख्वाहिशे-बर्के-तूर[2] करता हूँ मैं
बन्दे मेरे नाजे-शायरी से न बिगड़
अल्लाह से भी गरूर करता हूँ मैं

(1. ज्योति प्राप्त 2. भाव यह है कि मैं ईश्वर से प्रकाश पाने के बजाय स्वयं अपने आपको प्रकाशमान कर रहा हूँ (पर्वत 'तूर' पर हजरत मूसा ने बिजली के रूप में ईश्वर के दर्शन किये थे।)

भाषा और रचना उनके लिए ईश्वर से भी बड़ी है। वह अपनी जबान और फन से कितनी मोहब्बत करते हैं, इस बातचीत से जाहिर है-- आर व्ही स्मिथ ने उनसे पूछा कि " उर्दू शायरी के बारे में आपकी क्या राय है? जोश बोले, "पाकिस्तान में तो वो मर रही है, लेकिन कम से कम भारत में उससे दिखावटी इश्क किया जा रहा है।"[(6)]

इसी दिखावटी इश्क का दुष्परिणाम है कि आज भारत में उर्दू अपनी पहचान कायम रहने के लिए लड़ रही है। हिन्दी-उर्दू का जिक्र आते ही, गंगा-जमुनी संस्कृति की बात छिड़ते ही साम्प्रदायिक हिन्दू और मुसलमान आमने-सामने आ जाते हैं। दोनों के बीच तलवारें खिंच जाती हैं। जातीय मेल-मिलाप, सद्भाव और भाईचारे के अनूठे और अनुकरणीय इतिहास को भुला दिया जाता है।

नज्म 'हुब्बे वतन और मुसलमान' में जोश लिखते भी हैं कि--

बाज आया मैं तो ऐसे मजहबी ताऊन[1] से
भाइयों का हाथ तर हो भाइयों के खून से

(1. प्लेग)

यह मजहबी प्लेग और साम्प्रदायिक राजनीति का निर्मम 'पावर गेम' ही है जिसने लोकतंत्र का बार-बार खून किया है और इनसानियत को शर्मसार किया है। एक रूबाई में जोश इनसानी पतन की कहानी कहते हैं--

खंजर है कोई तो तेगे-उरियाँ[1] कोई
सरसर[2] है कोई तो बादे-तूफाँ[3] कोई
इनसान कहाँ है? किस कुर्रे[4] में गुम है
याँ तो कोई 'हिन्दू' है 'मुसलमाँ' कोई

(1. नंगी तलवार 2. शीतल वायु 3. तूफानी हवा 4. मण्डल में)

हिन्दू-मुस्लिम दंगाइयों के वहशी कारनामों को जोश साहब ने आजादी के पहले बँटवारे के समय देखा था और आजादी के बाद हुए उत्पातों में भी देखा था। झल्ला कर उन्होंने अपनी आत्मकथा 'यादों की बारात' में लिखा था कि, "हम सब छुटभैये हैं। आजादी के बाद

भी हम कुत्तों की तरह लड़ते और एक-दूसरे को झिंझोड़ते रहेंगे।"[7]

आज का भारत भयानक जानवरों और रक्तपिपासु प्रेतों के चंगुल में छटपटा रहा है। कोरोना महामारी के दौर में डूबती साँसों के लिए न ऑक्सीजन है, न पानी, न दवा, न डॉक्टरी अमला। यहाँ तक कि हालचाल पूछने वाला कोई हमदर्द भी नहीं। और तो और चैन से मरने के लिए अस्पताल में बिस्तर भी नहीं, उखड़ती साँसों को बचाने के लिए ऑक्सीजन सिलेण्डर भी नहीं। न धीरज बँधाने वाला कोई, न मरने के बाद अन्तिम विदाई देने वाला कोई। और तमाशा देखिए कि देश का चौकीदार बनाम फकीर प्रधानमंत्री आपदा को अवसर में बदलने की जुगत में लगा हुआ है।

देश की आम जनता को भूख-प्यास, गरीबी, बेरोजगारी और बीमारी से मरने का सुनहरा अवसर मिला है और चन्द अमीर घरानों, बड़े व्यापारियों एवं कारपोरेटों और उनका छाता बने राजनीतिज्ञों को बेहिसाब धन बटोरने का अवसर मिला है। एक तरफ खुशियों का समन्दर है तो दूसरी तरफ दुखों का तूफान। इस तूफान में देश की नइया डूब रही है और देश का खेवनहार चुनावी रैलियाँ कर रहा है। भारी भीड़ देखकर खुशी से पागल हो रहा है। भाषण दे रहा है। अपनी ही छवि पर लहालोट हो रहा है। विरोधियों को पानी पी-पीकर कोस रहा है और जनता से लगातार झूठ बोल रहा है। भूख-प्यास, बेरोजगारी, हारी-बीमारी और गरीबी से जूझते-मरते लोगों से कह रहा है कि भारत संसार की सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति बनने जा रहा है। भारत की दुनिया भर में तारीफ हो रही है। जबकि सच्चाई यह है कि हम न भूख पर काबू पा सके हैं, ना ही लोगों को रोटी-कपड़ा और मकान दे सके हैं। आज तो हमारी स्वास्थ्य सेवाओं की भी पोल खुल चुकी है। डॉक्टरों और स्वास्थ्य कर्मचारियों का एक बड़ा हिस्सा भी पाँच सितारा, सात सितारा और सितारावहीन अस्पतालों की गुलामगिरी में लगा हुआ है और लोगों की जिन्दगी भर की जमा-पूँजी को लूट रहा है। पैसा नहीं तो दवा और इलाज भी नहीं। चारों ओर हहाकार मचा हुआ है।

जोश साहब ने ऐसे ही सिरफिरे तमाशाबाज सत्तानशीनों से कहा था कि--

आपके हिन्दुस्ताँ के जिस्म पर बोटी नहीं
तन पे इक धज्जी नहीं है, पेट को रोटी नहीं

बोटी, धज्जी और रोटी जीवन की निशानियाँ हैं। आज जीवन पर मृत्यु भारी पड़ रही है। मृत्यु की गन्ध से बोझिल शोकपूर्ण वातावरण में बस प्रेतों का अट्टहास है और निरीह जनता का रुदन है। खेवइए का ताण्डव नाच है और हवा में लहराती हुई रंग-बिरंगी झण्डियाँ हैं। जोश साहब ने अपनी कालजयी रचना 'दीने आदमीयत' में धर्म और राजनीति की घृणित मिलीभगत से तड़पती और पिसती हुई जनता के हाल-अहवाल पर जलता हुआ सच लिखा है कि--

कम्रे-इनसानी[1] पे जुल्मों-जहल[2] बरसाती हुई
झण्डियाँ कितनी नजर आती हैं लहराती हुई
(1. इनसानियत के महलों पर 2. अत्याचार और मूढ़ता)

जोश मलीहाबादी ने तंज करते हुए लिखा है कि--

शैतान एक रात में इनसान बन गये
जितने नमकहराम थे कप्तान बन गये

इनसान का भेस धारे नमकहराम शैतानों की आजादी के पहले भी चाँदी थी और आजादी के बाद भी चाँदी है। नमकहराम कप्तान और गुर्गों की साँठ-गाँठ और बदकारियों को जोश साहब अपनी रचना 'मातमे-आजादी' में खोलकर रख देते हैं। एक बन्द देखिए और उसकी रोशनी में आज के हिन्दुस्तान की भयानकता समझिए--

सिक्कों की अंजुमन के खरीदार आ गये
सेठों के खादिमाने वफादार आ गये
खद्दर पहन-पहन कर बद-अवतार आ गये
दर पर सफेदपोश सियहकार आ गये
दुश्मन गये तो दोस्त बने दुश्मने-वतन
खिलअत की तह खुली तो बरामद हुआ कफन

आज का हिन्दुस्तान सफेदपोश कफनचोरों और चरित्रहीनों का हिन्दुस्तान है। भूख, गरीबी, बेरोजगारी और मौत के सही आँकड़े छुपाये जाते हैं और चमकती हुई अर्थव्यवस्था के झूठे आँकड़े दिखाये जाते है और फाइव ट्रिलियन इकानॉमी का बेसुरा राग गाया-बजाया जाता है। आज श्मशान और कब्रिस्तान में लाशों की कतारें लगी हुई हैं। देह की अन्तिम शरणस्थली में भी सौदागर डेरा जमाये हुए हैं। रिश्वत के बिना मइयत को भी चैन नहीं।

दाह-संस्कार और मिट्टी देने की रस्में भी व्यापार के चकरघिन्नी में घूम रही हैं। साँस-साँस का सौदा हो रहा है। लाश को कन्धा देने का रेट पाँच हजार रुपये है। अस्पताल से लाश घर तक ले जाने का रेट दस हजार रुपये है। अभी एक दिल दहला देने वाली तस्वीर सोशल मीडिया पर देखने को मिली है। कोरोना से मृत एक औरत को गाँव वालों ने न कन्धा दिया और ना ही श्मशान में जलाने दिया। मजबूर बूढ़े पति को उसे साइकिल पर लादकर ले जाना पड़ा। बाद में पुलिस की मदद से दाह-संस्कार हो सका। अब तो पतिततारिणी गंगा में सैकड़ों लाशें बह रही हैं। संसार का गुरु बनने का अहंकार पालने वाले देश का यह हाल! पूरा देश जैसे क्रूर और नीच महाजन का खाता-बही हो गया है। कला, साहित्य संगीत और शराफत की कोई कद्र नहीं। दिल को खून-खून करके जोश 'गलत-बख्शी' शीर्षक नज्म में लिखते हैं कि--

इलाही अगर है यही रोजगार
कि सीने रहें अहले-दिल के फिगार[1]
रनायत[2] को हासिल हों सरदारियाँ

शराफत को कफस बरदारियाँ[3]
सरे-बज्म जुहल[4] आयें, अहले-नजर
बशक्ले-गुलामाने-जर्रीं कमर[5]
हुनर हो, और इस दर्जा बेआबरू
तुफू बर तू ए चर्खे गरदाँ तुफू[6]

(1. चलनी 2. कमीनों 3. जूते सीधे करें 4. भूखे भट्टाचार्य 5. सुयोग्य व्यक्ति कमर में सुनहरी पेटियाँ बाँधे गुलामों की तरह खड़े हों 6. ऐ आसमान तुझ पर लानत है, लानत है।)

जोश मलीहाबादी सौन्दर्य-बोध और सामाजिक-बोध के महान कवि हैं। उनका रोमेंटिक व्यक्तित्व उन्हें संकीर्ण और स्वार्थी नहीं बनाता। वह हुस्न और इश्क में रमते हैं। मोहब्बत के सुरीले नगमें गाते हैं। कुदरत की खूबसूरती पर रीझते हैं। इनसानी आजादी का भरपूर समर्थन करते हैं, पर व्यक्तिवादी नहीं होते। उनकी नजर समाज पर बनी रहती है। वह वैयक्तिकता के साथ सामाजिकता का घनघोर समर्थन करते हैं। उनकी शायरी में हम आदमी के सुख-दुःख और समस्याओं के साथ देश-दुनिया की भी समस्याओं से दो-चार होते हैं। उन्होंने लिखा भी है कि--

मेरे शेरों में फकत एक तायराना[1] रंग है
कुछ सियासी रंग हैं, कुछ आशिकाना रंग है
कुछ मनाजिर[2] कुछ मबाहिस[3] कुछ मसाइल[4] कुछ ख्याल
इक उचटता-सा जमाल[5] इक सर-ब-जानू[6] सा ख्याल

(1. ऊपरी 2. दृश्य 3. तर्क 4. समस्याएँ 5. सौन्दर्य 6. घुटनों पर रखा हुआ (तुच्छ)।)

जोश मलीहाबादी के गद्य और पद्य को पढ़ते और गुनते हुए यह बात याद आती है कि 'बुद्धिमानों का समय काव्य-शास्त्र विनोद में व्यतीत होता है, और मूर्खों का समय व्यसन, निद्रा या कलह में व्यतीत होता है।' जोश साहब को मूर्खों, बद्तमीजों और असभ्य लोगों का साथ जरा भी पसन्द नहीं था। उन्हें तो शब्द और सुर-साधकों के दिन-रात का सानिध्य पसन्द था। साहित्य और कलाविदों का अपमान करने वाले जाहिलों की इमदाद और बख्शीश को भी वो ठुकरा देते थे। हैदराबाद के निजाम और जोश का झगड़ा तो जग प्रसिद्ध है। उन्हीं की जबानी सुनिए, "मैने 'गलत-बख्शी' के नाम से निजाम के खिलाफ एक नज्म कही थी।... दरअस्ल, यही नज्म मेरे यहाँ से निकाले जाने का सबब बन गयी। ... मुझ कमबख्त घर फूँक तमाशा देखने वाले की यह आदत है, चाहे इसे हुनर समझा जाये या ऐब, कि मैं अवाम के कदमों पर सर झुका देने को इन्तहाई शराफत और सत्ताधारियों के तख्त के रू-ब-रू गर्दन जरा भी नीचा करने को कमीनगी समझता हूँ और मीर तकी मीर की मानिन्द--

सर किसूसे फर्द नहीं आता
हैफ बन्दे हुए खुदा न हुए"[8]

अवाम के कदमों पर सर झुकाने और सत्ताधारियों के सामने गर्दन ऊँची रखने का हुनर बिरले लोगों में ही होता है। जोश मलीहाबादी में यह काबिले तारीफ हुनर था। उनकी कलम हमेशा जनता के पक्ष में उठी, उसके संघर्षों, बलिदानों और त्याग पर फूल बन कर बरसी, जबकि सरमायादारों और साम्राज्यवादियों पर बिजली बन कर टूटी। अपने इस हुनर के लिए उन्होंने बहुत तकलीफें और जिल्लतें भी झेलीं, लेकिन जन-शत्रुओं के सामने अपना और देश का सर झुकने नहीं दिया। अपनी कला और स्वाभिमान की खतिर उन्होंने जनरल अयूब खाँ से रार मोल ले ली और पाकिस्तान में जलीलो-खार हुए। अयूब खाँ ने अपनी ओर से दी गयी सम्पत्ति उनसे छीन ली। अंग्रेज गवर्नर मार्श मुशीरे ने उनके मुसद्दस 'हुसैन और इनकलाब' से प्रभावित होकर उनसे दरख्वास्त की कि वो हर हफ्ते हिटलर और मुसोलिनी के खिलाफ आल इण्डिया रेडियो से एक नज्म ब्रॉडकॉस्ट करें जिसके एवज में आठ सौ रुपये का मासिक ऑनरेरियम यू पी सरकार उन्हें देगी। जोश साहब ने मिस्टर मुशीरे के ऑफर को ठुकरा दिया और कहा कि आप हिन्दुस्तान की आजादी और कांग्रेस के खिलाफ हैं, "अगर मैं ऐसा करूँगा तो इसका जो ग्राण्ड टोटल निकलेगा वह आपकी हुकूमत के मनमुताबिक ही होगा।"[9]

ब्रिटिश राज और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से उन्हें इतनी नफरत थी कि उन्होंने दतिया के काजी सर अजीजुद्दीन का, 'प्रो-ब्रिटिश' होने की शर्त पर अखबार 'सल्तनत' निकालने और सुख-चैन से जिन्दगी बिताने का प्रस्ताव ठुकरा दिया। उनके बीच हुई बातचीत का यह टुकड़ा सुनिए और आज की मोदी सत्ता की चापलूसी में कालीन की तरह बिछे और कालीन को पाँव-पोश में बदलते लेखकों और कलाकारों की हकीकत जानिए, और उनमें फर्क कीजिए, "जोश साहब, ब्रिटिश एम्पायर एक नेमत है, और एक बहुत बड़ी नेमत। अगर हुकूमत खुदा-ना-खास्ता बाकी न रही तो मेरी यह बात कान खोलकर सुन लीजिए कि हिन्दू हमें कच्चा चबा डालेगा। वह आपका जीना दूभर कर देगा। गाय आपकी खेतियाँ चर लेंगी। आप गाय पर हाथ उठाएँगे, तो कम से कम, आपका हाथ तोड़ डाला जाएगा और यह भी मुमकिन है कि आप कत्ल कर डाले जायें। हिन्दू आपके खून से होली खेलेगा। आपके एम.ए. लड़कों पर हिन्दू मैट्रिक को तरजीह दी जाएगी। फरमाइए क्या आप इस पर तैयार हैं?"

"काजी साहब, आप मेरे बुजुर्ग हैं और यह भी मानता हूँ कि आप मुझे फलता-फूलता देखना चाहते हैं। मैं आपकी इस हमदर्दी का शुक्रिया अदा नहीं कर सकता। लेकिन इसे क्या करूँ कि मुझे अंग्रेजी हुकूमत से नफरत है।"

मेरी बात काटकर उन्होंने कहा कि "आप अपने दोस्त जवाहरलाल के बहकावे में आ गये। देखिए यह आपकी रोजी और तमाम मुसलमानों की भलाई का सवाल है। ...अगर आप ब्रिटिश हुकूमत की मुखालिफत करेंगे तो मुझे अफसोस है कि रियासत

आपका हाथ नहीं बँटा सकेगी।"

"काजी साहब, मैं आपका बेहद शुक्रगुजार हूँ। आपने तो दिल से चाहा था कि मेरी जिन्दगी सुधर जाये, लेकिन मेरे मिजाज ने सब खेल बिगाड़ कर रख दिया। खता आपकी नहीं मेरी है।"(10)

खता जोश साहब की नहीं थी। असली खतावार तो काजी सर अजीजुद्दीन और उन जैसे साम्प्रदायिक सोच और जहर से भरे हुए लोग थे। ऐसे तंग दिल-दिमाग के शैतान हिन्दू भी थे, मुसलमान भी। इन जहरीले लोगों को धर्मनिरपेक्ष और आधुनिक भारत के निर्माता जवाहर लाल नेहरू कभी पसन्द नहीं आये। आजादी के पहले भी धर्म को हथियार बनाकर हिन्दू-मुस्लिम एकता और भाईचारे को तोड़ने वाले आरएसएस और मुस्लिम लीग के कट्टर अनुयाइयों और उनकी शाखाओं-प्रशाखाओं ने देश को दंगों और नफरत की आग में झोंक दिया।

आजादी के बाद भी नेहरू की चरित्र-हत्या का खेल रुका नहीं बल्कि आरएसएस और भारतीय जनता पार्टी की अगुआई में पूरी रफ्तार से खेला जाने लगा। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी तो घृणा और चरित्र हनन के खेल में नम्बर वन हैं। यह उन्होंने गुजरात में भी किया। हाल ही में सम्पन्न 2021 के पश्चिम बंगाल विधान सभा चुनाव में तो उन्होंने कीर्तिमान ही रच दिया। 'दीदी ओ दीदी' की ध्वनि में कहीं 'नेहरू ओ नेहरू' भी सुनाई देता है। नेहरू को देश और इतिहास का खल पात्र बनाने के फेर में वह स्वयं लघु से लघुतर होते गये और नेहरू विराट से विराटतर। जोश मलीहाबादी नेहरू को 'शराफत के आसमान का सूरज' कहते हैं।

मानव जाति के प्रति अथाह प्रेम और मनुष्यता पर अडिग विश्वास ही जोश को प्रेम और विद्रोह का बड़ा कवि बनाता है। वह दुनिया की चमक-दमक, ऐश्वर्य और तरक्की का कारण मनुष्य की जिजीविषा और उसके अथक संघर्ष को मानते हैं और उसे मान देते हुए 'इनसानियत का कोरस' नज्म में कहते हैं कि--

बढ़े चलो, बढे चलो, रवाँ दवाँ बढ़े चलो
बहादुरों वो खम[1] हुईं बुलंदिया बढ़े चलो
पय-सलाम[2] झुक चला वो आस्माँ बढ़े चलो
फलक[3] के उठ खड़े हुए वो पासबाँ[4] बढ़े चलो
ये माह है[5] वो मेहर[6] है ये कहकशाँ[7] बढ़े चलो
लिए हुए जमीन को कशाँ-कशाँ[8] बढ़े चलो
रवाँ दवाँ बढ़े चलो, रवाँ दवाँ बढ़े चलो

(1. झुक गयीं 2. सलाम के लिए 3. आकाश 4. रक्षक 5.चाँद 6. सूरज 7. आकाश गंगा 8. खींचते हुए।)

रवाँ-दवाँ बढ़ने वाली बहादुर जनता के सामने बुलन्दियाँ झुक जाती हैं। आकाश सलाम करता है। चाँद, सितारे, धरती, आसमान, ग्रह-नक्षत्र सब उसके रक्षक बन जाते हैं। ऐसी जाँबाज जनता का जोश स्वागत करते हैं, उसके हुजूर में सिर नवाते हैं, लेकिन उस पर जुल्मो-जबर करने वालों को पल भर भी बरदाश्त नहीं करते और हुंकार भरते हैं कि--

क्या उनको खबर थी जेरो-जबर[1] रखते थे जो रूहे मिल्लत[2] को
उबलेंगे जमीं से मारे-सियह[3] बरसेंगी फलक से शमशीरें
...
क्या उनको खबर थी सीनों से जो खून चुराया करते थे
इक रोज इसी खामोशी से टपकेंगी दहकती तहरीरें

(1. दबा कर 2. जाति की आत्मा को 3. काले नाग।)

शमशीरें और तहरीरें मिलकर जर्रे-जर्रे को आग बना देती है और बन्दी आत्मा बेड़ियों से मुक्त हो जाती है--

चौंकिये जल्दी, हवा-ए-तुन्दो-गर्म आने को है
जर्रा-जर्रा आग में तब्दील हो जाने को है
और यह अन्दाजे बयाँ भी देखिए,
जिसके अन्दर आग है, दुनिया पे छा जाये वो आग
नारे-दौजख[1] को पसीना जिससे आ जाये वह आग

(1. नरक की आग।)

हंसराज रहबर बिल्कुल सही फरमाते हैं कि, "... जोश साहब में अभिव्यक्ति की अद्भुत शक्ति थी। वह अल्फाज में आग भर सकते थे और दिलों में आग लगा सकते थे।"(12) आग करुणा और आँसू के मिश्रण से ही प्रज्ज्वलित और रचनात्मक होती है। यह प्रज्ज्वलन ही कविता है, प्रेम है, विद्रोह है। जोश मलीहाबादी की कविता बहुरेखीय बहुरंगीय और बहुकोणीय जीवन का कोलाज है। कविता की सजलता और उष्णता पाठकों को बाँध लेती है और उन्हें भी भीतर से तरल और तेजस्वी बना देती है। जोश काव्य रसिक और स्वयं के बीच कोई परदा नहीं रखते। उनके बीच लगातार आवाजाही चलती रहती है। सदाएँ आती-जाती रहती हैं।

ये सदाएँ बराबर आती हैं
दिल का दरवाजा खटखटाती हैं

जोश साहब की रचना प्रक्रिया को उन्हीं के अल्फाजों से समझने की कोशिश करते हैं--

अंजुमन[1] में तखलिये[2] हैं, तखलियों में अंजुमन
हर शिकन[3] में इक खिचावट, हर खिचावट में शिकन
हर गुमाँ[4] में इक यकीं-सा हर यकीं में सौ गुमाँ
नाखुने-तदबीर[5] भी खुद एक गुत्थी बेअमाँ[6]
एक-एक गोशे[7] से पैदा वुसअते कौनो-मकाँ[8]
एक-एक खोशे[9] में पिन्हाँ[10] सद बहारे-जाविदाँ[11]
बर्क[12] की लहरों की वुसअत[13] अलहफीजो-अलअमाँ[14]
और मैं सिर्फ एक कौन्दे की लपक का राजदाँ[15]

(1. सभा 2. एकान्त 3. सल्वट 4. भ्रम 5. उपाय का नाखून 6. अनन्त 7. कोने से 8. ब्रह्माण्ड की-सी विशालता 9. बाल 10. निहित 11. सैकड़ों शाश्वत वसन्त ऋतुएँ 12. बिजली 13. विशालता 14. खुदा की पनाह 15. भेदी।

कविता एक बिन्दु से शुरू होती है जो ब्रह्माण्ड तक फैल

जाती है। वह पानी की बूँद है जो अपनी काया में समन्दर समेटे हुए है। वह सभाओं और गहन एकान्त में गूँजती है। शोरगुल में चुप्पी और चुप्पी में मुखरता उसका दायरा है। भ्रम और यकीन के बीच वह बिजली की कौंध है। कल्पना और यथार्थ के भँवर में वह तिरती हुई अकेली नाव है। वह लगातार खुद से, समाज से, 'सिस्टम' और सरकार से जूझता और ललकारता हुआ सवाल है। वह पहेली है जिसे सुलझाने की तदबीर उलझती-सुलझती रहती है। कविता का हर कोना अछोर ब्रह्माण्ड का विराट रहस्य है, जिसमें ऋतुओं के उतार-चढ़ाव, आँधी-तूफान, बिजली और जलजले हैं। कवि भेदिया है जो कविता के रहस्य लोक में जाता है और पूरी जिन्दगी दाँव पर लगा देने के बाद भी रीता का रीता रह जाता है। कुछ कौड़ियाँ, कुछ सीपी और कुछ राज ही हाथ आ पाते हैं। मीर साहब ने क्या खूब लिखा है कि,

यही जाना कि कुछ न जाना हाय
सो भी एक उम्र में हुआ मालूम

मिर्जा गालिब भी कहते हैं कि,

आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक
कौन जीता है तेरी जुल्फ के सर होने तक

एक उम्र के बाद ही जिन्दगी और कविता का तिलिस्म खुलता है और कविता जिन्दगी हो जाती है। वह व्यक्तिगत सम्पत्ति से सार्वजनिक सम्पत्ति हो जाती है। साधना हर साँस के साथ, उम्र के हर पड़ाव में और असरदार, और अर्थवान हो जाती है। मजाज पर लिखते हुए जोश कहते हैं कि, " यह कोई मुझसे पूछे कि मजाज क्या था और क्या हो सकता था। मरते वक्त तक उसका फकत एक चौथाई दिमाग खुलने पाया था और उसका यह सारा कलाम उस एक चौथाई खुलावट का करिश्मा है। अगर वह अपने बुढ़ापे की तरफ आता तो अपने जमाने का सबसे बड़ा शायर होता।"[13]

प्रतिभा उम्र की मोहताज नहीं होती, लेकिन लम्बी साँसों का साथ मिल जाये तो वह ज्ञान-विज्ञान, कला-साहित्य के अनदेखे दरवाजे और खिड़कियाँ खोल देती है। रंग, गन्ध, स्वाद और स्पर्श की नित नवीन होती हुई अनुभूतियों से भर देती है। कविता का राग रगों में दौड़ने लगता है। जोश साहब के बिम्ब, प्रतीक, दृश्य और शब्दावली स्मृति में उमड़ते-घुमड़ते रहते हैं। नये रूपों और अर्थों में खुलते रहते हैं। जोश मलीहाबादी सरापा सच्चे कवि हैं। जनता के कवि हैं। सच को कभी उन्होंने चासनी में लपेट कर नहीं कहा। कुनैन पर चीनी का मुलम्मा कभी नहीं चढ़ाया। 'रिश्वत' नामक लम्बी नज्म में उनका कटीला, आँखें खोल देने वाला व्यंग्य देखिए और कल के आईने में आज के हत्यारे सत्ताधीशों, नीच पूँजीपतियों और स्याह कारोबारियों के खून सने चेहरों की शिनाख्त कीजिए, और, खुदाया मुट्ठियाँ भींचिए--

ये है मिलवाला, वो बनिया, औ'ये साहूकार है
ये है दूकाँदार, वो है वेद, ये अत्तार है
वो अगर ठग है, तो ये डाकू है, वो बटमार है
आज हर गर्दन में काली जीत का इक हार है
हैफ[1] मुल्को-कौम की खिदमत-गुजारी के लिए
रह गये हैं इक हमीं ईमानदारी के लिए
भूख के कानून में ईमानदारी जुर्म है
और बेईमानियों पर शर्मसारी[2] जुर्म है
डाकुओं के दौर में परहेजगारी जुर्म है
जब हुकूमत खाम[3] हो तो पुख्ताकारी[4] जुर्म है
लोग अटकाते हैं क्यों रोड़े हमारे काम में
जिसको देखो, खैर से नंगा है वो हम्माम में
देखिए जिसको दबाए है बगल में वो छुरा
फर्क क्या कि इसमें मुजरिम सख्त है या भुरभुरा
गम तो इसका है जमाना है कुछ ऐसा खुरदुरा
एक मुजरिम दूसरे मुजरिम को कहता है बुरा
हम को तो जो चाहें कह लें हम तो रिश्वतखोर हैं
नासहे-मुशफिक[5] भी तो, अल्लाह रक्खे, चोर हैं
तोंद वालों की तो हो आईनादारी[6], वाहवा
और हम भूखों के सर पर चाँदमारी वाहवा
उनकी खातिर सुबह होते ही नहारी[7] वाहवा
और हम चाटा करें ईमानदारी वाहवा
सेठ जी तो खूब मोटर में हवा खाते फिरें
और हम सब जूतियाँ गलियों में चटखाते फिरें

(1. अफसोस 2. लज्जा 3. अपरिपक्व 4. परिपक्व होना 5. धर्मोपदेशक 6. रक्षा 7. नाश्ता।)

क्रोध की सात्विकता और यथार्थ की भयावहता कविता साथ-साथ दिखलाती है। आत्मनिरीक्षण के लिए विवश करती है और हिन्दुस्तान की सूरत और सीरत बदलने को प्रेरित करती है। जोश साहब की रचनाओं से गुजरते हुए हम कविता और गद्य के सौन्दर्य को आत्मसात करते हैं। मानवीय नजरिये से जीवन को समझते हैं। इतिहास, समाजशास्त्र, धर्म, विज्ञान, मनोविज्ञान और मिथकीय किस्से-कहानियों से वाबस्ता होते हैं। भारत और इस्लामिक देशों के साथ यूरोप के प्रखर राजनीतिक-सामाजिक-साहित्यिक वाद-विवाद और विमर्शों का हिस्सा बनते हैं। स्वाधीनता संग्राम के जाँबाज और लड़ाकू किरदारों के रू-ब-रू होते हैं। हम प्रश्न पूछना सीखते हैं, सही को सही, और गलत को गलत कहने की हिम्मत पाते हैं। आजादी का अर्थ और मोल समझते हैं। संक्षेप में कहूँ तो हम ज्ञानवान, तार्किक, सावधान और सार्थक मनुष्य बनते हैं। आजादी के शिल्पकारों को वह बहुत प्यार और सम्मान देते हैं। 'सरोजनी नायडू' रेखाचित्र में जोश लिखते हैं कि, "लहजे में अरगनूं (ऑर्गन), बातों में जादू, मैदाने-जंग में झाँसी की रानी, गोकुलवन की गोया मधुर बीन, बुलबुले-हिन्दुस्तान। अगर यह दौर मर्दों में जवाहरलाल और औरतों में सरोजनी की-सी हस्तियाँ पैदा न करता तो पूरा हिन्दुस्तान अन्धा होकर रह जाता।"[(14)] अफसोस

कि जिन्दगी और मुल्क को बचाने और सँवारने वाली वो नायाब हस्तियाँ अब मूर्तियों में तब्दील की जा चुकी हैं। अगरबत्ती और लोहबान के धुएँ में उड़ायी जा चुकी हैं। इतिहास की किताबों में दबायी जा चुकी हैं। आँखें हैं पर देखने की कूवत छीन ली गयी है। आज का हिन्दुस्तान लफ्फाजियों और झूठ के नागपाश में अन्धा हो चुका है।

हर तरह के अन्धेपन की मुखालिफत जोश मलीहाबादी की खासियत है। उनकी शायरी धार्मिक, साम्प्रदायिक और साम्राजी नागपाश का 'एण्टीडॉट' है। उनकी काट का जोरदार और ताकतवर मंत्र है। वह जात-पात, धर्म और सम्प्रदाय में बँटे-छँटे, टुकड़े-टुकड़े इनसान को मुकम्मल और एकजुट करने की कोशिश करते हैं। उसकी फिरकावाराना सोच पर जबर्दस्त चोट करते हैं। 'दीने आदमियत' नज्म के कुछ शेर देखिए,

शैखो-पण्डित ने भी क्या अहमक बनाया है हमें
छोटे-छोटे तंग खानों में बिठाया है हमें
कुछ तमद्दुन[1] के खलफ[2] कुछ दीन[3] के फर्जन्द[4] हैं
कुलजमों[5] के रहने वाले बुलबुलों[6] में बन्द है

(1. संस्कृति के 2. सन्तान 3. मजहब के 4. पुत्र 5. समुद्रों के (मिश्र के समीप समुद्र का नाम) 6. पानी के बुलबुलों में।)

फिर रहा है आदमी भूला हुआ भटका हुआ
इक-न-इक लेबिल हर इक माथे पे है लटका हुआ
अपने हमजिन्सों[1] के कीने[2] से भला क्या फायदा
टुकड़े-टुकड़े होके जीने से भला क्या फायदा

(1. साथी मनुष्यों के 2. द्वेष से)

हिन्दी-उर्दू के नामचीन विद्वान प्रकाश पंडित ने जोश साहब का आकलन करते हुए उचित लिखा है कि, "...'जोश' की शायरी ने क्रान्ति के लिए न केवल मार्ग बनाया है, बल्कि हजारों-लाखों नौजवानों को क्रान्ति-संग्राम के लिए तैयार किया है। अपनी शायरी द्वारा उन्होंने भारत राष्ट्र को अंग्रेजी राज तथा साम्राज्य के विरुद्ध उभारा, प्रतिक्रियावादी संस्थाओं का भण्डाफोड़ किया। मूढ़ता, धर्मोन्माद, अन्धविश्वास और परम्परागत नैतिकता की जंजीरे काटीं। अतएव उनकी इस प्रकार की नज्में आज भी हमारा लहू गरमा देती हैं और उनके अध्ययन से अपने देश, अपनी जाति, अपनी सभ्यता, संस्कृति तथा अपने साहित्य से हमारा प्रेम दुगुना हो जाता है।"[(15)]

जोश के व्यक्तित्व में कबीर हैं, तो हाफिज और उमर खय्याम भी। मिल्टन, शेली, बायरन, वर्ड्सवर्थ हैं, तो गेटे, दाँते, शॉपेनहार, रूसो और नीत्शे भी हैं। वह दुनिया की महान प्रतिभाओं का विलक्षण मिश्रण हैं। उन्होंने अपने व्यक्तित्व निर्माताओं से विद्रोह और क्रान्ति का पाठ सीखा है। हर तरह के पाखण्ड और दिखावट को ध्वस्त करना जाना है। बगावत उनके खून में है,

बिगड़ी हुई अक्ल से हिमाकत बेहतर
धोके की मोहब्बत से अदावत[1] बेहतर
शैतानो-अबुजहल[2] की अजमत[3] की कसम
सौ बार गुलामी से बगावत बेहतर

(1. दुश्मनी 2. शैतान और महामूर्खों के 3. गौरव)

उन्होंने हमेशा जिन्दगी और मुल्क को हसीन से हसीनतर बनाने का ख्वाब देखा और ख्वाब को सच करने के लिए दिन-रात एक किया। जनता तक अपनी आवाज और सन्देश पहुँचाने के लिए उन्होंने मुशायरों, साक्षात्कारों, बहस-मुबाहिसों और रेडियो प्रसारण का इस्तेमाल किया। समाजवादी दर्शन और विचारों पर केन्द्रित पत्रिका का प्रकाशन भी किया। साहित्यिक-राजनीतिक पत्रिका निकालने की योजना हिन्दुस्तान की बुलबुल सरोजनी नायडू की थी और उन्होंने इसके प्रकाशन में जोश साहब की बहुत मदद की। दिल्ली की एक मुलाकात में उन्होंने जोश से कहा कि, "मैं आपके टेम्प्रामेंट (मिजाज) से वाकिफ हूँ, कुछ न कहिए। मेरे सोने के कमरे में जाइए। तकिये के नीचे एक बड़ा-सा लिफाफा रखा हुआ है, उसे खोले बगैर अपनी जेब में रख लीजिए। ... अब आपका काम यह होगा कि दिल्ली में एक नीम अदबी और नीम सियासी रिसाला निकालेंगे और किसी रियासत की तरफ मुड़कर भी नहीं देखेंगे।"[(16)]

इस तरह 'कलीम' (वार्ताकार) पत्रिका की शुरुआत हुई। 'कलीम' ने इतिहास रच दिया। प्रगतिशील शक्तियाँ एकजुट होकर जोश साहब की नुमाइंदगी में जनता की आवाज बन गयीं। हिन्दुस्तान की आजादी का एक नया राग चारों दिशाओं में गूँजने लगा। यह बरतानवी सरकार और उसके पिट्ठुओं को सख्त नागवार गुजरा। बाहरी और भीतरी दुश्मनों के घात-प्रतिघात ने एक शानदार पहल के रास्ते अनन्त अवरोध खड़े कर दिये। नतीजतन, रिसाला बन्द करना पड़ा। जोश मलीहाबादी के खिलाफ कुफ्र के फतवे जारी होने लगे, उन्हें कत्ल करने की धमकियाँ मिलने लगीं। आज भी सत्ता से सवाल पूछने और सरकार बहादुर को कठघरे में खड़ा करने वालों को यही धमकियाँ दी जाती हैं। उन पर अमल भी किया जाता है। कल भी हत्याएँ की जाती थीं, आज भी की जा रही हैं। न्याय के हक में आवाज उठाने वाले अनगिनत स्त्री-पुरुष आज भी भारतीय जेलों में बन्द हैं, दुःख और अकेलेपन से लड़ते हुए।

जोश साहब ने आत्मकथा में अपने दुःख और अकेलेपन को कुछ यूँ व्यक्त किया है, "कलीम की तरक्की ने मेरे बहुत से दुश्मन भी पैदा कर दिये थे। ऐसा क्यों न होता? फिरंगी हुकूमत से बगावत, सरमाएदारी का विरोध, समाजवाद का प्रचार और कांग्रेस की तरफदारी। नतीजा यह कि कांग्रेस के गुलामी-परस्त मुखालिफीन, मुस्लिम लीग के 'खिताबयाफ्ता' मुजाहिदीन और हुकूमत के टुकड़ों और वजीफों पर पलने वाले हुक्काम और उल्माए-कराम लंगर-लंगोटे बाँधकर अखाड़े में उतर आये। उधर पलटनें थीं और इधर मैं अकेला।"[(17)]

यह अकेलापन लगातार सघन होता गया। पाकिस्तान जाने के फैसले ने एकाकीपन को मानो स्थायी भाव में बदल दिया। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें हिन्दुस्तान में रोकने की बहुत कोशिश की। उन्होंने जोश से कहा कि, "अपने बच्चों को पाकिस्तानी बना दें, लेकिन आप यहीं रहें...।"[18] हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच झूलते हुए जोश अन्ततः बच्चों के आर्थिक और सांस्कृतिक भविष्य की खातिर पाकिस्तान चले गये। उर्दू से मोहब्बत और उसकी तरक्की भी एक वजह थी। पाकिस्तान में वैसा स्वागत नहीं हुआ, जैसा उन्होंने सोचा था। उन्हें हमेशा वहाँ शक की निगाहों से देखा गया। हिन्दुस्तान का भी विश्वास उन पर से उठ गया। न वह हिन्दुस्तानी रहे और न ही पाकिस्तानी बन सके। वह जैसे देशविहीन हो गये। सरोजनी नायडू की भविष्यवाणी मानो शब्दशः सच हो गयी; "अगर मुल्क तकसीम हो गया तो आपका बहुत बुरा हश्र होगा। हिन्दुस्तानी हिन्दू आपको मुसलमान समझकर काबिले-नफरत समझेंगे और पाकिस्तानी मुसलमान आपको काफिर समझकर काबिले-कत्ल खयाल करेंगे।"[19] उन्होंने पाकिस्तान में अपने स्वागत-सत्कार पर लिखा है कि, "मेरे पाकिस्तानी बनते ही एक कयामत का शोर बरपा हो गया। पूरे पाकिस्तान में और शहर कराची में तो इस कदर वलवला उठा, गोया कयामत का सूर (बिगुल) फूँक दिया गया है। तमाम छोटे-बड़े उर्दू-अंग्रेजी अखबारों के लश्कर ताल ठोंककर मैदान में आ गये। तमाम अदीब, शायर और कार्टूनसाजों ने अपनी-अपनी कलमों की तलवारें म्यान से निकालकर मेरे खिलाफ लेख, कविता और कार्टूनों की भरमार कर दी।"[20]

हिन्दुस्तान में जिस जोश को चाहनेवालों ने सिर-आँखों पर बिठाया था, पाकिस्तान में उसी 'शायरे-इन्कलाब' को हंसी और उपहास का पात्र बना दिया गया। मंच की सारी बत्तियाँ एक-एक कर बुझती गयीं। तमाशाई पत्थर हो गये। तालियाँ तंज और चीख में बदल गयीं। गद्दार, जासूस, विदेशी एजेण्ट के तोहमतों के साथ जोश तन्हाई, गुमनामी और बदनामी के गर्त में डूबते चले गये। कराची के एक अखबार में उनका बयान छपा कि, "मैंने तन्हाई की जिन्दगी बसर करने का फैसला कर लिया है ताकि किसी को इल्म न हो सके कि मैं जिन्दा हूँ या मुर्दा, या मैं शायर भी था।"[21] उनकी मर्मान्तक पीड़ा इन रूबाइयों में आप महसूस कर सकते हैं,

इक उम्र से जहर पी रहा हूँ ऐ दोस्त
सीने के शिगाफ[1] सी रहा हूँ ऐ दोस्त
गोया सरे-कोहसार[2] तन्हा पौदा
यूँ अपने वतन में जी रहा हूँ ऐ दोस्त

* * *

सर घूम रहा है नाव खेते-खेते
अपने को फरेबे-ऐश देते-देते
उफ जहदे-हयात[3] थक गया हूँ माबूद[4]
दम टूट चुका है साँस लेते-लेते
(1. छिद्र 2. पर्वत के शिखर पर 3. जीवन संघर्ष 4. ईश्वर)

आखिरकार, 22 फरवरी 1983, को जोश मलीहाबादी की साँस टूट ही गयी। पद्मभूषण से सम्मानित उर्दू अदब का एक अनोखा तारा उजाला बिखेर कर आकाशगंगा के अंधेरों में कहीं खो गया। अंधेरे में उजाला हो गया, उजाले में अंधेरा हो गया।

कल उनकी नस्ल का ऐ 'जोश' मैं बनूगा इमाम[1]
खबर करो मेरे मसलक[2] के नुक्ता-चीनों[3] को
(1. नेता 2. मत 3. आलोचकों को)

(इस आलेख के लिए सामग्री संचयन में वरिष्ठ अधिवक्ता एवं उर्दू साहित्य के मर्मज्ञ जनाब अब्दुल रशीद सिद्दीकी साहब का हार्दिक आभार।)

सन्दर्भ :-

1. यादों की बारात, जोश मलीहाबादी, अनुवाद : हंसराज रहबर, संस्करण 2019, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृ. 9)।
2. लिंक https:www.facebook.com
3. यादों की बारात, पृ. 72।
4. लिंक https:www.facebook.com
5. यादों की बारात, पृ. 7।
6. लिंक https:www.facebook.com
7. यादों की बारात, पृ. 64।
8. यादों की बारात, पृ. 83, 84।
9. यादों की बारात, पृ. 105।
10. यादों की बारात, पृ. 93।
11. यादों की बारात, पण्डित जवाहर लाल नेहरू, पृ. 127।
12. जोश मलीहाबादी, सम्पादक : प्रकाश पंडित, सह सम्पादक : सुरेश सलिल, संस्करण 2017, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृ. 21।
13. यादों की बारात, मजाज, पृ. 139, 140।
14. यादों की बारात, सरोजनी नायडू, पृ. 134।
15. जोश मलीहाबादी, प्रकाश पण्डित, सह सम्पादक : सुरेश सलिल, पृ. 14।
16. यादों की बारात, रिसाला कलीम, पृ. 96।
17. यादों की बारात, रिसाला कलीम, पृ. 98, 99।
18. यादों की बारात, हिजरत, पृ. 115।
19. जोश मलीहाबादी, प्रकाश पण्डित, सह सम्पादक : सुरेश सलिल, पृ. 15।
20. यादों की बारात, पाकिस्तानी शहरियत, पृ. 116।
21. जोश मलीहाबादी, प्रकाश पण्डित, सह सम्पादक : सुरेश सलिल, पृ. 15।

विश्व साहित्य में महामारी का चित्रण

-- शैलेन्द्र चौहान

पिछले एक वर्ष से अधिक समय से कोविड-19 महामारी ने जीवन, समाज, साहित्य दर्शन और व्यापार सभी पर असर डाला है। बहुत सी चीजें, परिस्थितियाँ और मुद्दे पूरी तरह से बदल चुके हैं। व्यापारी अपने धंधे और मुनाफे के लिए परेशान है। कर्मचारी नौकरी के लिए, मजदूर दिहाड़ी के लिए, बीमार दवा के लिए और मृतक अंत्येष्टि के लिए। स्वास्थ्य व्यवस्था बेहाल है, प्रशासन बेबस। एक आध्यात्मिक आदमी का नजरिया, दर्शन और उसकी आस्था भी बहुत हद तक प्रभावित हुई है, हालाँकि उन्माद बढ़ा है और कर्मकाण्ड भी कम नहीं हुआ। महामारी के संकट ने दूसरी चीजों की तरह ही साहित्य को भी प्रभावित किया है। लेखक अपनी रचना प्रकाशन और साहित्य की अभिव्यक्ति के लिए सक्रिय हैं। वर्ष पर्यन्त सोशल मीडिया में सतत साहित्यिक संवाद बना रहा है हालाँकि यह कितना गम्भीर और प्रभावकारी है और कितना उथला यह नहीं कहा जा सकता लेकिन अभिव्यक्त तो हुआ ही है। यूँ तो वैश्विक महामारियाँ अपने समय और भविष्य को हमेशा प्रभावित करती आयी हैं। राजनीति और भूगोल के साथ समाज और साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। दुनिया जब किसी विपदा में घिरी है तो सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में भी उनका असर हुआ है। शिव प्रसाद जोशी ने इस पर गहन विमर्श किया है। वह कहते हैं-- "महामारियों के कथानक पर केन्द्रित अतीत की साहित्यिक रचनाएँ आज के संकटों की भी शिनाख्त करती हैं। ये हमें मनुष्य जिजीविषा की याद दिलाने के साथ-साथ नैतिक मूल्यों के ह्रास और मनुष्य के अहंकार, अन्याय और नश्वरता से भी आगाह करती हैं। इतिहास गवाह है कि अपने-अपने समय में चाहे कला हो या साहित्य, संगीत, सिनेमा-- तमाम रचनाओं ने महामारियों की भयावहताओं को चित्रित करने के अलावा अपने समय की विसंगतियों, गड़बड़ियों और सामाजिक द्वन्द्वों को भी रेखांकित किया है। ये रचनाएँ सांत्वना, धैर्य और साहस का स्रोत भी बनी हैं, दुखों और सरोकारों को साझा करने वाला एक जरिया और अपने समय का मानवीय दस्तावेज भी।"

समकालीन विश्व साहित्य में महामारी पर विशद् कृति 'प्लेग' को माना जाता है। कहा जाता है कि अल्जीरियाई मूल के विश्व प्रसिद्ध फ्रांसीसी उपन्यासकार अल्बैर कामू अपने उपन्यास 'प्लेग' के जरिये नात्सीवाद और फासीवाद के उभार और उनकी भयानकताओं के बारे में बता रहे थे। इसमें दिखाया गया है कि कैसे स्वार्थों और महत्त्वाकांक्षाओं और विलासिताओं से भरी पूँजीवादी आग्रहों और दुष्चक्रों वाली दुनिया में किसी महामारी का हमला कितना व्यापक और जानलेवा हो सकता है, कि कैसे वह खुशफहमियों और कथित निर्भयताओं के विशाल पर्दे वाली मध्यवर्गीय अभिलाषाओं को तहस-नहस करता हुआ एक अदृश्य दैत्य की तरह अंधेरों और उजालों पर अपना कब्जा जमा सकता है।

प्लेग उपन्यास का एक अंश है-- "हर किसी को पता है कि महामारियों के पास दुनिया में लौट आने का रास्ता होता है, फिर भी न जाने क्यों हम उस चीज पर यकीन ही नहीं कर पाते हैं जो नीले आसमान से हमारे सिरों पर आ गिरती है...जब युद्ध भड़कता है, लोग कहते हैं-- "ये बहुत बड़ी मूर्खता है। ज्यादा दिन नहीं चल पाएगा।" लेकिन युद्ध कितना ही मूर्खतापूर्ण क्यों न हो, ये बात उसे चलते रहने से नहीं रोक पाती है। मूर्खता के पास अपना रास्ता बना लेने का अभ्यास होता है। जैसा कि हमें देख लेना चाहिए अगरचे हम लोग हमेशा अपने में ही इतना लिपटे हुए न रहें।"

'प्लेग' के जरिये कामू समाज की हृदयहीनता को भी समझना चाहते थे। वे दिखाना चाहते थे कि समाज में पारस्परिकता की भावना से विछिन्न लोग किस हद तक असहिष्णु बन सकते हैं। लेकिन वे आखिरकार मनुष्य के जीने की आकांक्षा का संसार दिखाते हैं। इसी तरह कोलम्बियाई कथाकार गाब्रिएल गार्सीया मार्केज का मार्मिक उपन्यास 'लव इन द टाइम ऑफ कॉलेरा', प्रेम और यातना के मिलेजुले संघर्ष की एक करुण दास्तान है जहाँ महामारी से खत्म होते जीवन के समानान्तर प्रेम के लिए जीवन को बचाये रखने की जद्दोजहद एक विराट जिद की तरह तनी हुई है।

प्लेग, चेचक, इन्फ्लुएंजा, हैजा, तपेदिक आदि बीमारियों ने घर परिवार ही नहीं, शहर के शहर उजाड़े हैं और पीढ़ियों को एक गहरे भय और संत्रास में धकेला है। चेचक को दुनिया से मिटे चार दशक से अधिक हो चुके हैं।

तब विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस बात का जश्न भी मनाया था। लेकिन 20वीं सदी के शुरुआती वर्षों में यह एक भीषण महामारी के रूप में करोड़ो लोगों को अपना ग्रास बना चुकी थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर की काव्य रचना 'पुरातन भृत्य' (पुराना नौकर) में एक ऐसे व्यक्ति की दास्तान पिरोई गयी है जो अपने मालिक की देखभाल करते हुए चेचक की चपेट में आ जाता है। 1903 में टैगोर ने अपनी तपेदिक से जूझती 12 साल की बेटी को स्वास्थ्य लाभ के लिए उत्तराखण्ड के नैनीताल जिले के पास रामगढ़ की हवादार पहाड़ी पर कुछ महीनों के लिए रखा था लेकिन कुछ ही महीनों में उसने दम तोड़ दिया था। चार साल बाद बेटा भी नहीं रहा। टेगौर ने रामगढ़ प्रवास के दौरान 'शिशु' नाम से अलग अलग उपशीर्षकों वाली एक बहुत लम्बी कविता शृंखला लिखी थी। 1913 में छपी इन कविताओं के संग्रह का नाम 'अर्धचन्द्र' कर दिया गया था। टैगोर की इस रचना से एक पंक्ति देखिये-- अन्तहीन पृथ्वियों के समुद्रतटों पर मिल रहे हैं बच्चे। मार्गविहीन आकाश में भटकते हैं तूफान, पथविहीन जलधाराओं में टूट जाते हैं जहाज, मृत्यु है निर्बंध और खेलते हैं बच्चे। अन्तहीन पृथ्वियों के समुद्रतटों पर बच्चों की चलती है एक महान बैठक।

इसी तरह निराला ने अपनी आत्मकथा 'कुल्लीभाट' में 1918 के दिल दहला देने वाले फ्लू से हुई मौतों का जिक्र किया है, जिसमें उनकी पत्नी, एक साल की बेटी और परिवार के कई सदस्यों और रिश्तेदारों की जानें चली गयी थीं। निराला ने लिखा था कि दाह संस्कार के लिए लकड़ियाँ कम पड़ जाती थीं और जहाँ तक नजर जाती थी गंगा के पानी में इनसानी लाशें ही लाशें दिखाई देती थीं। उस बीमारी ने हिमालय के पहाड़ों से लेकर बंगाल के मैदानों तक सबको अपनी चपेट में ले लिया था। बेटी की याद में रचित 'सरोज स्मृति' तो हिन्दी साहित्य की एक मार्मिक धरोहर है।

टाइम्स ऑफ इंडिया अखबार में अविजित घोष ने प्रगतिशील लेखक आन्दोलन के संस्थापकों में एक, पाकिस्तानी लेखक, कवि अहमद अली के उपन्यास 'ट्वाइलाइट इन डेल्ही' का उल्लेख किया है। उपन्यास में बताया गया है कि महामारी के मृतकों को दफनाने के लिए कैसे कब्र खोदनेवालों की किल्लत हो जाती है और दाम आसमान छूने लगते हैं, इतने बड़े पैमाने पर वह काम हो रहा था कि दिल्ली मुर्दों का शहर बन गया था। प्रगतिशील लेखक संगठन के पुरोधाओं में एक, राजिन्दर सिंह बेदी की कहानी 'क्वारंटीन' में महामारी से ज्यादा उसके बचाव के लिए निर्धारित उपायों और पृथक किये गये क्षेत्रों के खौफ का वर्णन है। यानी एक विडम्बनापूर्ण और हास्यास्पद सी स्थिति ये आती है कि महामारी से ज्यादा मौतें क्वारंटीन में दर्ज होने लगती हैं।

बंगाल दुर्भिक्ष पर अमृतलाल नागर के उपन्यास भूख से उद्धरण है-- "हिन्दुस्तान पर महायुद्ध की परछाईं पड़ने लगी। हर शख्स के दिल से ब्रिटिश सरकार का विश्वास उठ गया। यथाशक्ति लोगों ने चावल जमा करना शुरू किया। रईसों ने बरसों के लिए खाने का इन्तजाम कर लिया। मध्यवर्गीय नौकरीपेशा गृहस्थों ने अपनी शक्ति के अनुसार दो-तीन महीने से लेकर छः महीने तक की खुराक जमा कर ली। खेतिहर मजदूर भीख माँगने पर मजबूर हुआ। भूख ने मेहनत-मजदूरी करनेवाले ईमानदार इनसानों को खूँखार लुटेरा बना दिया। भूख ने सतियों को वेश्या बनने पर मजबूर किया। मौत का डर बढ़ने लगा। और एक दिन चिर आशंकित, चिर प्रत्याशित मृत्यु, भूख को दूर करने के समस्त साधनों के रहते हुए भी, भूखे मानव को अपना आहार बनाने लगी. .."

फणीश्वरनाथ रेणु के प्रसिद्ध उपन्यास 'मैला आँचल' में मलेरिया और कालाजार की विभीषिका के बीच ग्रामीण जीवन की व्यथा का उल्लेख मिलता है। प्रेमचन्द की कहानी 'ईदगाह' में हैजे का जिक्र है। ओडिया साहित्य के जनक कहे जाने वाले फकीर मोहन सेनापति की 'रेबती' कहानी में भी हैजे के प्रकोप का वर्णन है। जानेमाने कन्नड़ कथाकार यूआर अनन्तमूर्ति की नायाब रचना 'संस्कार' में एक प्रमुख किरदार की मौत प्लेग से होती है। ज्ञानपीठ अवार्ड से सम्मानित मलयाली साहित्य के दिग्गज तकषी शिवशंकर पिल्लै का उपन्यास, 'थोत्तियुडे माकन' (मैला साफ करने वाले का बेटा) में दिखाया गया है कि किस तरह पूरा शहर एक संक्रामक बीमारी की चपेट में आ जाता है।

उधर विश्व साहित्य पर नजर डालें तो कामू से पहले भी लेखकों ने अपने अपने समयों में बीमारियों और संक्रामक रोगों का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। ब्रिटेन के मशहूर अखबार द गार्जियन ने एक सूची निकाली है। जैसे डेनियल डेफो का 'अ जर्नल ऑफ द प्लेग इयर' (1722)। मैरी शैली का लिखा 'द लास्ट मैन' (1826), और एडगर एलन पो की 1842 में लिखी कहानी 'द मास्क ऑफ द रेड डेथ।' 1947 में कामू का 'प्लेग', 1969 में माइकल क्रिशटन का 'द एण्ड्रोमेड स्ट्रेन,' 1978 में स्टीफन किंग का 'द स्टैण्ड' और 1994 में रिचर्ड प्रेस्टन का 'द हॉट जोन' आया। नोबेल पुरस्कार विजेता और प्रसिद्ध पुर्तगाली उपन्यासकार खोसे सारामायो ने 1995 में 'ब्लाइण्डनेस' नामक उपन्यास लिखा था जिसमें अंधेपन की महामारी टूट पड़ने का वर्णन है। 2007 में जिम क्रेस ने 'द पेस्टहाउस' लिखा जिसमें लेखक ने अमरीका के प्लेग से संक्रमित अंधेरे भविष्य की कल्पना की है। 2013 में डैन ब्राउन का 'इन्फर्नो' और मार्ग्रेट एटवुड का 'मैडएडम' और 2014,

शेष पेज 27 पर...

कोविड संकट : जनता पर चौतरफा कहर

-- सीमा श्रीवास्तव

कोविड-19 की दूसरी लहर भारत की जनता पर कहर बनकर टूटी है। इस वक्त देश में चारों ओर जो नजारे दिखायी दे रहे हैं, वे दिल दहलाने वाले हैं। ऑक्सीजन की कमी से जान गँवाते मरीज, अस्पतालों के बाहर स्ट्रेचर पर, एम्बुलेंस में, निजी गाड़ियों में या सड़कों पर ही बिना इलाज के दम तोड़ते लोग। अपनो को बचाने की हर मुमकिन कोशिश में अस्पताल दर अस्पताल भटकते असहाय, हताश, रोते कलपते लोगों के दृश्य आम हो गये हैं। शमशानों में एक साथ जलती दर्जनों चिताएँ पत्थर दिल इनसान की चेतना को भी झकझोर सकती हैं। ये भयावह दृश्य दुनिया भर के टीवी चैनलों की स्क्रीनों पर लोग देख रहे हैं। भारतीयों की दुर्दशा पर आहें भर रहे हैं और भारत में अपने परिचितों व दोस्तों की जान के लिए दुआ माँग रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने दुनिया भर में घूम-घूमकर अपने शासन काल के दौरान भारत में हुए कथित विकास का ढिंढोरा पीटा था। लेकिन अब दुनिया भर के लोग भारत की दम तोड़ती स्वास्थ्य व्यवस्था का हाल देख रहे हैं।

आखिर इन भयावह हालात के लिए जिम्मेदार कौन है? पिछले एक साल से भी ज्यादा समय से वैज्ञानिक चेता रहे थे कि कोरोना की दूसरी लहर आएगी, जो बहुत घातक होगी। लेकिन केन्द्र की मोदी सरकार ने इन सब चेतावनियों को अनसुना कर दिया, क्योंकि जनता की सेहत और उसकी जिन्दगी इनकी प्राथमिकताओं में शामिल ही नहीं है। जब सरकार को कोरोना से बचाव की तैयारी करनी थी, तब वह चुनावों की तैयारियों में व्यस्त थी और जीतने के लिए साम-दाम-दण्ड-भेद हर तरीका अपना रही थी। अन्यथा तमाम तरह के संसाधनों से भरपूर इस विशाल देश में क्या कोरोना की दूसरी लहर से निपटने की तैयारियाँ नहीं की जा सकती थीं? क्या यह देश इतनी ऑक्सीजन का उत्पादन नहीं कर सकता था कि इसके एक भी नागरिक की मौत ऑक्सीजन की कमी से नहीं होती? अब हम देख रहे हैं कि ऑक्सीजन उत्पादन कोई रॉकेट साइंस नहीं है, बल्कि पहले से ही मौजूद कई तरह की प्रचलित तकनीकों के जरिये ऑक्सीजन का उत्पादन किया जा सकता है। लेकिन केन्द्र सरकार और ज्यादातर राज्य सरकारों ने इस तरफ ध्यान देना गैर जरूरी समझा।

शासकों की क्रूरता क्या होती है, इसकी मिसाल उत्तर प्रदेश की योगी आदित्यनाथ सरकार ने दी। स्वास्थ्य की चरमराती और दम तोड़ती व्यवस्था को छिपाने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने यह फरमान जारी कर दिया कि यदि ऑक्सीजन या ऐसी ही कमियों को दिखाती कोई पोस्ट सोशल मीडिया पर डाली गयी या अस्पतालों ने इन कमियों को जाहिर किया गया तो सम्बन्धित व्यक्ति के खिलाफ रासुका के तहत कार्रवाई की जाएगी। शायद इसी को कहते हैं कि "जबरा मारे और रोने न दे"। अब इस फरमान के तहत कार्रवाइयाँ भी की जा रही है। लखनऊ के 'सन' नाम के एक अस्पताल के खिलाफ पुलिस ने मुकदमा दर्ज किया है। इस अस्पताल की नाफरमानी यह थी कि उसने 3 मई को अस्पताल में नोटिस लगा दिया था कि लोग अपने मरीजों को कहीं और ले जायें, क्योंकि ऑक्सीजन की कमी के कारण अस्पताल इलाज करने में सक्षम नहीं है। बस, इसी बात पर यूपी पुलिस ने अस्पताल के खिलाफ मुकदमा दर्ज कर लिया। यह मामला फिलहाल यूपी हाईकोर्ट में चल रहा है।

उधर क्रूर शासक इस भीषण संकट के दौर में अपनी कमियों को छुपाने की भरसक कोशिश कर रहा है। इधर कोरोना वायरस की यह महामारी हर तरफ अपने पाँव पसार रही है और बहुत तेजी से हर वर्ग के लोगों को अपनी चपेट में ले रही है। बात करें आईआईटी रूड़की की, 25 मार्च से 30 अप्रैल तक यहाँ करीब 250 छात्र-छात्राएँ कोरोना वायरस की चपेट में आ चुके थे। वायरस के तेजी से बढ़ते मामलों के कारण यहाँ के 5 हॉस्टलों को सील कर दिया गया था, जिसमें दो गर्ल्स हॉस्टल भी थे। हालाँकि बाद में आईआईटी प्रशासन ने बाकी बचे स्टूडेंट्स को घर भेजने का फैसला लिया। वैसे उस वक्त कुल संख्या के एक चौथाई से भी कम स्टूडेंट्स संस्थान में मौजूद थे। इसी बीच एक बेहद दुखद घटना हुई, एमटेक अन्तिम वर्ष के एक छात्र की मौत हो गयी। स्वास्थ्य सम्बन्धी उसे कुछ परेशानी हुई थी,

हालाँकि उसकी कोरोना जाँच रिपोर्ट निगेटिव आयी थी। लेकिन लक्षण कोरोना के ही थे, इसलिए उसे हॉस्टल में ही आइसोलेट कर दिया गया और इसी दौरान उसकी मौत हो गयी। आईआईटी रूड़की के फैकल्टी मेम्बर्स, मेस कर्मचारियों, परिजनों और आईआईटी के कुछ घरों के साथ बने आउट हाउस में रहने वाले लोगों को भी कोरोना ने अपनी चपेट में ले लिया। 8 मई तक आईआईटी में 150 से ज्यादा फैकल्टी मेम्बर्स, कर्मचारी और इनके परिजन कोरोना संक्रमित हो चुके थे।

इनमें से संस्थान के आउट हाउस में रहने वाले और ई रिक्शा चलाने वाले कोरोना संक्रमित एक व्यक्ति की हालत काफी सीरियस थी। इस मरीज को ऋषिकेश एम्स में भर्ती कराया गया था, जिसका इलाज आईसीयू में चल रहा था। जानकार लोग बताते हैं कि इसी दौरान ऑक्सीजन की कमी के चलते इस व्यक्ति की जान चली गयी। मेहनत मजदूरी करने वाले इस व्यक्ति के परिवार को जो क्षति पहुँची है, उसका अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है। इसी दौरान एक अन्य फैकल्टी मेम्बर के माता-पिता की जान कोरोना ने ले ली, जबकि उनका पूरा परिवार कोरोना संक्रमित है। एक अन्य फैकल्टी मेम्बर की माँ की जान भी कोरोना के कारण चली गयी। आईआईटी में हर रोज क्वारंटीन किये गये कोरोना संक्रमित लोगों की लिस्ट जारी होती है, जिसमें अक्सर परिवार के सभी सदस्यों के भी कोरोना की चपेट में आ जाने की जानकारी होती है। आईआईटी रूड़की का जिक्र इसलिए किया है ताकि इस बात का सहजता से अनुमान लगाया जा सके कि इस अति सुरक्षित परिसर में भी किस तेजी से कोरोना वायरस अपने पाँव पसार रहा है, जबकि यहाँ रहने वाले ज्यादातर लोग साधन सम्पन्न हैं और कोरोना प्रोटोकॉल का पालन करते हैं। मास्क लगाते हैं, सेनेटाइजर का इस्तेमाल करते हैं, एक दूसरे से बहुत कम मिलते हैं, बाजार में भी लोगों से दूरी बरतते हैं और इम्युनिटी बढ़ाने के लिए हर सम्भव उपाय करते हैं। बावजूद इसके कोरोना ने सामाजिक हैसियत, पद, सुविधाओं, उम्र आदि किसी भी बात का भेद किये बगैर यहाँ हर तबके को अपना शिकार बनाया है।

कुछ ऐसा ही हाल रूड़की शहर का है। हर तबके के लोग कोरोना के शिकार हो रहे हैं और पूरे देश की तरह ये छोटा सा शहर भी चरमराती और दम तोड़ती स्वास्थ्य व्यवस्था से जूझ रहा है। एम्बुलेंस के सायरन की आवाजें आम दिनों के मुकाबले बहुत ज्यादा सुनाई देने लगी हैं। देश के अन्य शहरों, कस्बों और इलाकों की तरह यह शहर भी ऑक्सीजन की कमी से जूझ रहा है। शहर में एकमात्र निजी अस्पताल 'विनय विशाल' में कोविड मरीजों का इलाज किया जा रहा है। 4 मई को इस अस्पताल में भी 5 लोगों को ऑक्सीजन की कमी से जान गँवानी पड़ी। यहाँ कोरोना मरीजों के लिए 85 बेड उपलब्ध हैं। ऑक्सीजन की कमी से हुई मौतों के बाद अस्पताल प्रशासन ने कोविड मरीजों का इलाज करने से हाथ खड़े कर दिये। हालाँकि लोगों ने अस्पताल प्रशासन की प्रशंसा करते हुए उससे कोविड मरीजों का इलाज जारी रखने को कहा। लोगों का कहना है कि यदि यह अस्पताल भी इलाज नहीं करेगा तो वे कहाँ जाएँगे।

देश के अन्य हिस्सों से भी ऐसी ही खबरें आ रही हैं कि ऑक्सीजन की कमी के कारण अस्पतालों ने कोविड मरीजों को भर्ती करने से मना कर दिया या अस्पताल पहले से ही भर्ती कोविड मरीजों को कहीं और ले जाने की बात कह रहे हैं। सिलेण्डर लिए तीमारदार हर उस जगह दौड़ रहे हैं जहाँ से ऑक्सीजन मिलने की थोड़ी सी भी उम्मीद होती है। 7 मई को प्रकाशित लोकल अखबार रूड़की में ऑक्सीजन की किल्लत से होने वाली दिक्कतों के समाचारों से भरे पड़े थे। खासकर 'हिन्दुस्तान' अखबार में हरिद्वार जिले के हर हिस्से से ऐसी खबरें आयी, जब ऑक्सीजन के खाली सिलेण्डर लिए लोग हर ऐसी जगहों पर लाइनों में लगे नजर आये, जहाँ से ऑक्सीजन मिल सकती थी। तीमारदार सीधे ऑक्सीजन प्लांटों में पहुँच रहे हैं। कई तीमारदारों ने बताया कि कोरोना संक्रमित उनके परिजनों को अस्पताल में बेड नहीं मिला, इसलिए घर में ही इलाज किया जा रहा है। कई अन्य लोगों का कहना था कि निजी अस्पताल में ऑक्सीजन उपलब्ध नहीं है, इसलिए अस्पताल ने ऑक्सीजन का इन्तजाम करने को कहा। एक नौजवान ने बताया कि उसके पिता का ऑक्सीजन लेवल कम हो रहा है, बेड न मिलने पर घर पर ही इलाज चल रहा है। ऑक्सीजन मिल जाये तो पिता की जान बचे। हरिद्वार जिले में मंगलौर और बहादराबाद में ऑक्सीजन प्लांट हैं जहाँ सुबह चार बजे से ही ऑक्सीजन लेने वालों की लाइन लग जाती है। आसपास के राज्यों से भी लोग यहाँ पहुँच रहे हैं। यहाँ से अस्पतालों तथा आसपास के राज्यों को भी ऑक्सीजन सप्लाई की जाती है। रूड़की का जिक्र इसलिए कर रही हूँ क्योंकि मैं रूड़की में रहती हूँ, लेकिन खबरों से जाहिर है कि कमोबेश हर जगह ऐसे ही हालात हैं।

कोरोना के इस कदर फैलाव के लिए अक्सर आम जनता को ही कसूरवार ठहराया जा रहा है। लोग मास्क नहीं पहन रहे हैं, सोशल डिस्टेंसिंग का पालन नहीं कर रहे हैं। अक्सर इस तरह की खबरें अखबारों में प्रकाशित हो रही हैं, चैनलों में दिखायी जाती हैं, जिसमें भीड़ भरे बाजारों का जिक्र करते हुए

लोगों की लापरवाहियों को उजागर किया जाता है। इसमें सच्चाई भी हो सकती है। लेकिन क्या लॉकडाउन या कर्फ्यू लगाने में सरकारें व्यावहारिक पहलुओं का ध्यान रख रही हैं। मसलन उत्तराखण्ड में लगाये गये लॉकडाउन में जरूरी सामानों की दुकानें खुलने का समय दोपहर 12 बजे तक तय किया गया है। मुश्किल से लोगों को 2 घण्टे ही खरीददारी को मिल रहे हैं। यदि जरूरी सामान लेने के लिए शहर की 5 फीसदी आबादी भी सामान लेने के लिए निकलती है तो बाजारों में भीड़ लगना स्वाभाविक है। ऐसे में सोशल डिस्टेंसिंग के पालन की उम्मीद करना भी बेमानी है। पुलिस भी ठीक 12 बजे दुकानें बन्द कराने पर आमादा रहती हैं, ऐसे में बाजारों में अफरातरफी फैल जाती है। अब तो उत्तराखण्ड सरकार ने बेहद सख्त लॉकडाउन लागू कर दिया है, जिसने लोगों की मुश्किलों को और ज्यादा बढ़ा दिया है। दरअसल सरकारें ये दिखाने के लिए कि वे कोरोना से बचाव के लिए बहुत कुछ कर रही हैं, अव्यावहारिक फैसलें लागू कर रही हैं, जिसका खामियाजा अन्ततः जनता को ही भुगतना पड़ रहा है। जबकि सरकारें अपनी उन जिम्मेदारियों को निभाने में नाकाम रही हैं, जहाँ उन्हें मरीजों के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं का बेहतर इन्तजाम करना था।

कोरोना से बचाव के लिए सरकारों द्वारा लॉकडाउन लगाना सबसे आसान कदम हैं। कोरोना की पहली लहर में केन्द्र सरकार द्वारा लगाये गये कई महीनों के बेहद सख्त लॉकडाउन ने अर्थव्यवस्था की कमर तोड़कर रख दी। ये लॉकडाउन किस तरह ब्लण्डर साबित हुआ, ये दोहराने की जरूरत नहीं है। पूरी दुनिया ने देखा कि इस लॉकडाउन के दौरान किस तरह इनसानी हुकूक और उसकी गरिमा को ताक पर रख दिया गया था। करोड़ों लोगों को अपनी रोजी-रोटी से हाथ धोना पड़ा था। अब भी लॉकडाउन की मार जनता पर ही पड़ रही है। दिहाड़ी मजदूरों, रिक्शाचालकों और रोजमर्रा काम करके अपनी जिन्दगी चलाने वालों के सामने रोजी-रोटी का संकट पैदा हो गया है। भारी संख्या में लोग भुखमरी की कगार पर पहुँचने लगे हैं, जिन्हें राहत पहुँचाने के लिए सरकारों के पास कोई ठोस योजना नहीं है। ये बदहाल लोग, लोगों द्वारा अपने स्तर से की जाने वाली मदद पर ही निर्भर हैं। वह भी कितने लोगों तक पहुँच पाती है, कहना मुश्किल है।

कोरोना महामारी के इस संकट की चौतरफा मार आम जनता पर पड़ रही है। हर रोज हजारों लोग इसके कारण जान गंवा रहे हैं। लॉकडाउन के कारण भारी बेरोजगारी और भयावह आर्थिक संकट का सामना इस देश की जनता कर रही है। कथित तौर पर कोरोना प्रोटोकॉल का पालन न करने पर भारी भरकम जुर्माने भी उसे भरने पड़ रहे हैं। कई बार तो पुलिस अमानवीयता की हद तक जाकर कोरोना प्रोटोकॉल का पालन लोगों से करा रही है। आज जिस स्थिति में देश पहुँच गया है, क्या इससे बचा जा सकता था? जबाव यही है स्थिति को काफी हद तक काबू किया जा सकता था। चेतावनियों को मद्देनजर रखते हुए अगर सरकार ने पहले से ही तैयारी की होती, स्वास्थ्य सुविधा के व्यापक इन्तजाम किये होते तो ऐसे मंजर न देखने पड़ते। यूरोप और अमरीका के उदाहरण बता रहे हैं कि वैक्सीनेशन का काम कोरोना के फैलाव को रोकने में कामयाब रहा। भारत में भी वैक्सीनेशन कार्यक्रम को तेजी के साथ पूरे देश में चलाया जाता तो कोरोना के फैलाव को रोकने में मदद मिलती। विशेषज्ञ कोरोना की तीसरी लहर आने की भी चेतावनी दे रहे हैं। इससे कैसे निपटा जायेगा, ये केन्द्र और राज्य सरकारों की दूरदर्शिता और स्वास्थ्य के बेहतर इन्तजामों पर निर्भर करेगा। देश के नागरिकों को भी इसके लिए सरकारों पर दबाव बनाना होगा।

पेज 24 का शेष.....

2015 और 2017 में लोकप्रिय ब्रिटिश लेखिका लुइस वेल्श के 'प्लेग टाइम्स' टाइटल के तहत तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। आज के कोरोना समय में जब अधिकांश लेखक बिरादरी ऑनलाइन है तो दुनिया ही नहीं भारत में भी विभिन्न भाषाओं में कवि कथाकार सोशल मीडिया के जरिये खुद को अभिव्यक्त कर रहे हैं। डायरी, निबन्ध, नोट, लघुकथा, व्याख्यान और कविता लिखी जा रही है, कहीं चुपचाप तो कहीं सोशल नेटवर्किंग वाली मुखरता के साथ। भारत में खासकर हिन्दी क्षेत्र में विभिन्न लेखक संगठन, व्यक्ति और प्रकाशन संस्थान फेसबुक लाइव जैसे उपायों के जरिये लेखकों से उनकी रचनाओं और अनुभवों को साझा कर रहे हैं। हालाँकि इस काम में प्रकाशित हो जाने की हड़बड़ी और होड़ जैसी भी देखी जा रही है और अपने-अपने आग्रहों और पसन्दों के आरोप-प्रत्यारोप लग रहे हैं और वास्तविक दुर्दशाओं से किनाराकशी के आरोप भी हैं। दरअसल शब्द, शब्द नहीं एक संसार है जिसमें अथाह कल्पना बसी है, अथाह संवेदना छिपी है। कहीं शब्द को जीवन कहा गया है शायद शब्द में जीवन ढूँढा जा सकता है। शब्द के रूप अनेक देखे हैं खासकर इस महामारी में एक शब्द ने जीवन को प्रभावित किया है। कई ऐसे शब्द हैं जो सफलता दिलाते हैं, कई ऐसे शब्द हैं जो उजाला दिखाते हैं, कई शब्द अंधकार में ले जाते हैं कई ऐसे शब्द भी हैं जो स्वाद परख हैं, हो ना हो इस महामारी ने शब्द की बहुआयामी सत्ता से अवगत कराया है।

कोरोना ने सबको रुलाया

(शरण आलम-ए-इनसानियत में ही मयस्सर है इनसाँ को चैन-ओ-सुकून)

देश-भर में कोरोना महामारी को लेकर खौफ का माहौल है। आवाम कोरोना की बढ़ती महामारी को देखकर आलम-ए-हिरमाँ (निराशा की स्थिति) में है। हर रोज लगभग तीन लाख से अधिक नये मामले सामने आ रहे हैं। कोरोना वायरस की वैक्सीन बनाने में 42 करोड़ रुपये रिसर्च पर खर्च करने के बाद भी सरकार कोरोना वायरस के सामने पस्त हिम्मत दिख रही है। वैक्सीन लगने के बाद भी लोगों के संक्रमित होने के मामले सामने आ रहे हैं। पिछले वर्ष की कोरोना लहर के खिलाफ तथाकथित राष्ट्रवादी सरकार ताली-थाली, मोमबत्ती, टार्च जैसे आडम्बर रचकर खुद को सच्ची जन हितैषी सरकार साबित करने की जुगत में लगी रही, लेकिन परिणाम ही रहे ढाक के तीन पात। टॉर्च से कोरोना भगाने की घटना से सरकार की कूपमण्डूकता जगजाहिर हो रही है। इस वर्ष की भीषण महामारी को देखकर लगता है कि सरकार ने पिछले वर्ष कोरोना वायरस को लेकर कोई खास चिकित्सीय इन्तजामात नहीं किये। खैर कोविड अस्पतालों के शिलान्यास की खबरें आये दिन पूँजीपरस्त मीडिया का मुद्दा बनी रहीं। लेकिन वे अस्पताल जन समर्थन हासिल करने से आगे केवल एक शिगूफा बनकर रह गये। जमीनी हकीकत के रूप में उन अस्पतालों का दरवाजा आवाम की पहुँच से बहुत दूर है।

भारत के अधिकतर राज्यों बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, दिल्ली, उत्तर प्रदेश हर जगह सरकार नाकाम होती दिख रही है। तथाकथित गुजरात मॉडल में लाशों के अन्तिम सस्कार के कारण शमशान घाट की चिमनियों के पिघलने की खबरें दिल को दहला देती हैं। अन्तिम संस्कार कराने के लिए मृतक के परिजनों को टोकन दिये जा रहे हैं। आलम-ए-इसांनियत की यह स्थिति आखिर क्यों हो गयी? तकनीक के इतने विकसित दौर में जहाँ परिवहन, चिकित्सा आदि की व्यवस्था आवाम को घर बैठे सम्भव हो, वहाँ लोग एम्बुलेंस के लिए घण्टों इन्तजार करने के बाद भी निराश बैठने को मजबूर हैं। जिन बीमार लोगों को आईसीयू की जरूरत है, उन्हें जनरल वार्ड में रखा जाये। जिन्हें जनरल वार्ड की जरूरत हो वे सडकों पर इन्तजार करते-करते मौत के मुँह में समाँ जाये। आखिर मानवता इतनी बेबस क्यों? हुकमराँ यह सब तमाशबीन बनकर देखता रहे। आवाम ऑक्सीजन के अभाव में दम तोड़ दें। ऐसा छदम अन्ध राष्ट्रवादी कहता है कि खुशियाँ मनाओ, दीपक जलाओ देश तरक्की कर रहा है। देश मजबूत हाथों में है। अगर देश सचमुच तरक्की कर रहा है तो आवाम के हिस्से मौत और बर्बादी क्यों है? यह सवाल हर रोज दिल को कुरेदता है। आखिर यह किसकी तरक्की और किसकी बर्बादी है?

यहाँ अस्पतालों का उद्देश्य लोगों को स्वस्थ्य रखने की जगह मुनाफा कमाना हो गया है। सुविधाओं और जाँच के नाम पर मोटी रकम वसूल ली जाती है। यह व्यापार दिनों दिन फलता-फूलता जा रहा है। इसका सीधा सा मतलब है जिसकी जेब में रुपये हैं वही सुविधा का हकदार है, यह अप्रत्यक्ष रूप से देश की बड़ी मेहनतकश आवाम के हिस्से से चिकित्सकीय सुविधाओं को छीनकर उन्हें मरने के लिए मजबूर छोड़ देना है। जिस अस्पताल में घुसने से पहले 5500 रुपये पीपीई किट के नाम पर जमा होते हों, 1000-2000 रुपये तक डॉक्टर से केवल परामर्श शुल्क हो, छोटी सी बीमारी की दवाईयों और जाँच की कीमत आसमान छूती हों, उस अस्पताल में 300 रुपये रोज पर गुजारा करने वाले मजदूर खुद और अपने परिवार का इलाज भला कैसे करा सकेंगे? सरकार इन्हें मनमानी करने की खुली छूट दे रही है, ताकि लोगों की लाशों पर सरेआम व्यापार कर ये मुनाफाखोर, दैत्यकार अपनी तिजोरी भरते रहें और निजीकरण का रथ सरपट दौड़ता हुआ मानवता को रौंद डाले। इस निजीकरण का उद्देश्य केवल मुनाफा है। इनसानी जिन्दगी से इसे कोई सरोकार नहीं। यह केवल मुनाफे की व्यवस्था है। नवउदारवाद की आँधी ने समूची स्वास्थ्य व्यवस्था को अपनी गिरफ्त में ले लिया है।

सरकारी अस्पतालों की हालत खस्ता हो गयी है। सरकार हर साल चिकित्सीय बजट से रुपये घटा देती है जिसके कारण सरकारी अस्पतालों में दवाईयाँ, बैड, आईसीयू वार्ड, जनरल वार्ड, एम्बुलेंस, चिकित्सीय उपकरण, मेडिकल स्टॉफ, वरिष्ठ डॉक्टर, बिल्डिंग, फर्नीचर आदि सुविधाओं में दिन प्रतिदिन कटौती की जा रही है। लोगों में सरकारी अस्पतालों से सुविधा मिलने की उम्मीद खत्म हो चुकी है। सरकार की मंशा ही आवाम के चन्दे से खड़े मेडिकल सस्थानों को बर्बाद करना है, क्योंकि जितनी सरकारी सुविधा कम होगी उतना ही ज्यादा निजी अस्पतालों का व्यापार बढ़ेगा और उनकी दौलत में उतनी ज्यादा दिनोंदिन बढ़ोतरी होगी।

यह मुनाफापरस्त व्यवस्था इनसानियत के हक-हकूक में फैसले नहीं ले सकती। दवाईयों, ऑक्सीजन, उपकरण, इलाज के

अभाव में मरते 80 फीसदी मेहनतकश आवाम की इसे कोई परवाह नहीं है। इसे परवाह है तो केवल मुनाफाखोरों की इसलिए यह व्यवस्था आपदा को भी अवसर में बदलकर अपना हित साध लेती है।

समूची मानवजाति आज मुनाफे की जकड़ में है। मानवजाति को आजाद कराने का यह काम इतिहास ने मेहनतकश आवाम के भरोसा छोड़ा है। इसलिए हम मेहनतकशों की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी यह बनती है कि हम जाति धर्म के झगड़ों से ऊपर उठकर जन सगंठन कायम करें और एकजुटता के साथ इस आदमखोर व्यवस्था को उखाड़कर आलम-ए-इनसानियत की स्थापना करें। तभी समूची मानवजाति को चैन-ओ-सुकून की जिन्दगी मयस्सर होगी।

वो जहर देता तो सबकी निगाह में आ जाता
सो ये किया कि मुझे वक्त पे दवाएँ न दी।

--अख्तर नजम

अन्तरराष्ट्रीय मीडिया में भारत के कोरोना संकट की रिपोर्ट

जनवरी में दावोस में विश्व आर्थिक मंच से प्रधानमंत्री ने कोरोना मुक्त भारत की विजयगाथा सुनायी। लेकिन फरवरी से ही कोरोना संक्रमितों की सख्या तेजी से बढ़नी शुरू हो चुकी थी। इस वक्त सरकार चुनाव रैलियों में व्यस्त थी। भारतीय गोदी मीडिया ने सरकार की इस लापरवाही को नजरअन्दाज करते हुए सारा दोष जनता के ऊपर मढ़ दिया और प्रधानमंत्री की छवि बनाने में संलग्न हो गयी, लेकिन अप्रैल के अन्त तक कोरोना ने प्रधानमंत्री की छवि को तार-तार करके रख दिया।

हालत यह है कि लोग ऑक्सीजन के लिए लाइन लगा कर खड़े हैं, लेकिन ऑक्सीजन नहीं मिल रही है। अस्पतालों में बेड और अन्य जरूरी उपकरण नहीं हैं। यहाँ तक कि एन्टीबायोटिक और विटामिन की दवाइओं और टेस्ट किट की भी आपूर्ति नहीं हो पा रही है। अपनों के अन्तिम संस्कार के लिए भी लोगों को घण्टों लाइन में लगना पड़ रहा है।

भारत की अधिकांश मीडिया इस मुद्दे पर भले ही चुप हो लेकिन दुनिया के बड़े अखबारों में भारत की दुर्दशा की तस्वीर छप रही है। द टाइम्स लंदन ने लिखा है-- रोजाना तीन लाख से ज्यादा कोरोना के मामले सामने आ रहे हैं। सरकार ने हालात की गम्भीरता को नजरअन्दाज कर दिया, जिसके चलते इतनी बड़ी समस्या खड़ी हो गयी।

द टाइम ने लिखा-- पिछले वर्ष की गलतियों से कोई सबक नहीं लिया गया, बल्कि नयी गलतियों का पुलिन्दा खोल दिया गया। आज भारत के लोग बेहद गम्भीर संकट का सामना कर रहे हैं। देश औंधे मुँह गिर चुका है।

द वॉल स्ट्रीट जर्नल ने लिखा-- भारत का खतरनाक वायरस सीमा पार कर के तबाही मचा सकता है। सरकार की नाकामी से हालात बिगड़े हैं। दिल्ली ने अपनी पीठ थपथपाकर वायरस को मात देने की बात कही, यह सरासर गलत रवैया था।

हिन्दू नाराज न हो इस लिए कुम्भ मेले का आयोजन किया गया। चुनाव में ताबततोड़ रैलियाँ की गयीं, जिसके चलते हालात काबू से बहार हो गये। पिछले वर्ष 21 दिनों में कोरोना पर काबू पाने की बात कही गयी थी। दुनिया का सबसे बड़ा लॉकडाउन भारत में लगाया गया। लेकिन इन सब के बावजूद आज भारत की जनता गहरे संकट में पड़ चुकी है। प्रधानमंत्री की छवि पर असर पड़ता साफ नजर आ रहा है। अब वैश्विक स्तर पर बन चुकी इस गलत छवि को चमकाने के लिए आईटी सेल और पीआर एजेंसियों को काफी मेहनत करनी पड़ रही है।

-- मोहित कुमार

कश्मीर : यहाँ लाशों की तस्वीर लेना मना है

7 अप्रैल को जम्मू कश्मीर पुलिस ने एक निर्देश जारी कर पत्रकारों पर सेना की मुठभेड़ वाली जगह के नजदीक आने और उसका प्रसारण करने पर रोक लगा दी।

कश्मीर के आईजीपी विजय कुमार ने कहा है कि ऐसा इसलिए किया गया ताकि हिंसा को फैलने से रोका जा सके क्योंकि ऐसी रिपोर्टिंग से देश विरोधी भावना भड़कती है और सैन्य बलों की गोपनीयता भंग होती है।

एडिटर्स गिल्ड ऑफ इण्डिया (ईजीआई) ने 17 अप्रैल को एक प्रेस विज्ञप्ति जारी कर इस निर्देश की कड़ी निन्दा की और इसे लोकतंत्र विरोधी कदम बताते हुए तुरन्त वापस लेने की माँग की है। गिल्ड ने कहा है कि शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर लिया गया पुलिस का यह फैसला अप्रत्यक्ष रूप से सुरक्षा बलों की गलत कार्रवाइयाँ छुपाने का एक तरीका है। संघर्ष वाले क्षेत्रों से लाइव रिपोर्टिंग करना, जिसमें सुरक्षाबलों और आतंकियों के बीच एनकाउंटर भी शामिल है, किसी भी जिम्मेदार मीडिया का एक बेहद महत्त्वपूर्ण कार्य है। उन्होंने यह भी कहा कि सुरक्षा बलों की योजना की गोपनीयता बनाये रखने के लिए केवल कुछ दिशानिर्देश जारी किये जा सकते हैं। वैश्विक स्तर पर जिम्मेदार सरकारों ने ऐसे नियम बनाये हैं लेकिन पत्रकारों की रिपोर्टिंग पर रोक लगाना उचित नहीं है।

कश्मीर के मीडिया निकायों ने भी इस आदेश पर तीखी प्रतिक्रिया की है। कश्मीरी पत्रकार इस आदेश के खिलाफ एकजुट होकर इसे वापस लेने की माँग कर रहे हैं। घाटी में 12 मीडिया निकायों ने एक संयुक्त बयान जारी कर कहा कि पत्रकारों ने विषम परिस्थितियों में काम करके साहसी और इमानदार पत्रकारिता को आगे बढ़ाया है। यह निर्देश ऑन द स्पॉट रिपोर्टिंग को रोकने की एक चालाकी भरी रणनीति है जो पुलिस की आधिकारिक नीति का हिस्सा नहीं हो सकती। पत्रकार निकायों ने दावा किया है कि यह अधिकारियों द्वारा कश्मीर में प्रेस की स्वतंत्रता को खत्म करने के लिए उठाया गया कदम है।

पत्रकार निकायों का यह दावा बेबुनियाद नहीं है। सीधे प्रसारण से सुरक्षाबलों को यह परेशानी हो सकती है कि मुठभेड़ के दौरान वे कानून के दायरे के बाहर जाकर जो कृत्य करते हैं वे सबके सामने आ जायेंगे या मुठभेड़ के नाम पर जो हत्याएँ होती हैं उनके बारे में लोगों को पता चल जायेगा। पिछले दिनों सुरक्षाबलों द्वारा आतंकवादी कहकर तीन नागरिकों की हत्या करने और उनके शव को 100 किलोमीटर दूर ले जाकर गड्ढे में दबा देने के मामले ने खूब तूल पकड़ा था और सुरक्षाबलों की भारी बदनामी हुई थी तथा उनके खिलाफ हत्या का मामला दर्ज हुआ था। ऐसी परेशानियों से बचने के लिए ही शायद पुलिस और सैन्य बलों को इस कानूनी आड़ की जरूरत थी।

कश्मीर के पुलिस प्रमुख का यह तर्क कि इस दिशानिर्देश से हिंसा को बढ़ने से रोकने में मदद मिलेगी, सरासर गलत है। इससे केवल सुरक्षाबलों को बेलगाम हिंसा करने की छूट मिलेगी। जिस देश का सर्वोच्च न्यायालय सुरक्षाबलों को सुसंगठित वर्दीधारी गिरोह कह चुका हो, कश्मीर जैसे क्षेत्र में उनके ऊपर मीडिया की निगरानी को भी नियंत्रित कर देने का परिणाम नागरिकों के लिए कितना भयावह हो सकता है इसका हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। कश्मीर के बारे में कुछ बहुत प्रचलित तथ्य हैं जिनसे मोटा-मोटी ही सही लेकिन सुरक्षाबलों की कुछ कारगुजारिओं का अन्दाजा लग जाता है। कश्मीर में तकरीबन दस हजार ऐसी अर्ध-विधवाएँ हैं जिनके पति सालों से गुम हैं, सरकार न उनके मरने की गारन्टी कर सकती है न जिन्दा होने की। सरकारी दफ्तरों, पुलिस थानों और सैन्य बलों की छावनियों के चक्कर काटते-काटते हजारों अर्ध-विधवाओं की जवानी बुढ़ापे में तब्दील हो चुकी है। इसी के साथ-साथ कश्मीर में हजारों बेनामी कब्र हैं, इनके अन्दर दफ्न लोगों के बारे में भी किसी को कोई जानकारी नहीं। लम्बे समय से मानवाधिकार आयोग सैंकड़ों मुठभेड़ों की जाँच की माँग कर रहा है लेकिन सत्ता के कानों पर जूँ नहीं रेंगती।

यहाँ हमारा मकसद कश्मीर के हालात पर चर्चा करना या कश्मीरियों के अन्तहीन दुखों का बयान करना नहीं है। हम लोकतान्त्रिक अधिकारों की भी बात नहीं कर रहे हैं, कश्मीरियों ने तो उसका सपना भी देखना कब का छोड़ दिया, अब तो बात तानाशाही से भी आगे बढ़ चुकी है, अप्रैल 2020 के बाद से तो पुलिस ने मुठभेड़ में मरने वालों की लाशें भी उनके परिजनों को सौंपना बन्द कर दिया है। मामला इस हद तक नीचे गिर चुका है कि पत्रकारों यानी लोकतंत्र के चौथे खम्भे से पुलिस ने यह हक भी छीन लिया है कि वह कुछ मुठभेड़ों के और उनमें मरनेवालों के फोटो ही खींच ले।

उम्मीद जगाने वाली बात भी यही है कि इतनी विराट सत्ता से संघर्ष में सैंकड़ों बार हार जाने, सैंकड़ों बार टूट कर बिखर जाने के बाद भी इनसाफ पसन्द पत्रकार और कश्मीर की जुझारू जनता ने अब तक भी घुटने नहीं टेके हैं, वे अब भी लड़ रहे हैं और आखिरी साँस तक लड़ेंगे।

-- विकास 'अदम'

मुस्लिम होने का डर

शहजाद का परिवार लोनी में रहता है। वहाँ उसका अपना मकान है, पर उसे काम के लिए देहरादून आना पड़ता है। वह देहरादून और आस-पास के बाजारों में लोवर-टी शर्ट थोक में बेचने का काम करता है। यहाँ उसके बँधे ग्राहक हैं जो उससे माल मँगाते हैं। शहजाद ने देहरादून में एक दुकान किराये पर ली है, जहाँ वह दिल्ली से माल लाकर रखता है और बाजारों में सप्लाई करता है।

पिछले साल लॉकडाउन के दौरान सभी स्कूल कॉलेज और दफ्तर बन्द हो गये थे, दुकानें भी बन्द थी, जिससे शहजाद के सामने लोवर-टी शर्ट सप्लाई का काम बन्द हो गया था। शहजाद लॉकडउन में अपने घर चला गया था, पर बढ़ती माँग के चलते उसके पास देहरादून से बार-बार फोन आ रहे थे। शहजाद को अपना घर चलाने की फिक्र भी थी। इसलिए लोगों के अनुरोध पर वह माल लेकर देहरादून आ गया। यहीं से उसकी परेशानियाँ बढ़ती गयीं। उस समय तबलीगी जमात के नाम पर मुस्लिमों के खिलाफ बेइन्तहा नफरत फैलायी जा रही थी। जहाँ तक माल की बात है तो यहाँ लोगों के लिए शहजाद का धर्म आड़े नहीं आया, माल की माँग थी, इसलिए उस पर होने वाले मुनाफे ने धर्म को पीछे छोड़ दिया।

पर शहजाद के पास घर वापस जाने के लिए कोई साधन नहीं था तो शहजाद ने उन्हीं लोगों (जिन्होंने उसे फोन करके बुलाया था) से उनके यहाँ रुकने के लिए मदद माँगी, लेकिन सभी ने मना कर दिया। यहाँ तक कि जिस आदमी के साथ उसकी गहरी दोस्ती थी, जिसके घर से उसके लिए रोज दोपहर का खाना आता था, उसने भी यह कहकर मना कर दिया कि तुम मुसलमान हो, इसलिए घर नहीं बुला सकता। बिकाऊ मीडिया और सरकार में बैठे जहरीली सोच वाले मंत्रियों ने लोगों के मन में तबलीगी जमात को लेकर जो जहर भर दिया था, अपने दोस्त के मना करने पर शहजाद उस जहर के बुरे असर को समझ गया।

वह थक-हार कर अपनी दुकान की तरफ गया, लेकिन एक गार्ड ने उसे मार्केट में अन्दर जाने से रोक दिया और गार्ड के सुपरवाइजर ने शहजाद से कहा, अगर तुम यहाँ से हटोगे नहीं तो मैं पुलिस को बता दूँगा। यह सुनते ही शहजाद घबरा गया, लेकिन बाद में गार्ड ने कुछ पैसे लेकर एक-दो घण्टे के लिए दुकान में रुकने दिया और समय पूरा होते ही उसे वहाँ से भगा दिया। शहजाद पूरा दिन शहर की सड़कों पर भूखा-प्यासा भटकता रहा। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि अनजान शहर में वह कहाँ आसरा ढूँढने जाये। उसे यह भी डर था कि मुस्लिम होने के कारण पुलिस उसे तबलीगी जमात का घोषित करके जेल में डाल देगी।

शहर की गलियों की खाक छानने और कई दिनों तक भूख-प्यास से बेहाल होने पर आखिर में उसे अपने घर जाने का एक रास्ता मिल ही गया। किसी ने उसे बताया कि रात में बस अड्डे से सहारनपुर के लिए बस जाती है। इसी उम्मीद में शहजाद पैदल ही बस अड्डे पहुँच गया और रात में उसे बस भी मिल गयी।

शहजाद को उस गुनाह की सजा मिली, जो उसने कभी किया भी नहीं था और कोई कभी जान ही नहीं पायेगा कि क्यों एक निर्दोष व्यक्ति को, जो लोवर-टी शर्ट बेचकर अपने परिवार का गुजारा करता है, उसे अपने ही देश ने नकार दिया। किसी शहरवासी ने उसे पनाह नहीं दी और प्रशासन की ओर से भी कोई मदद नहीं मिली। इस पूरे घटनाक्रम ने उसका इनसानियत पर से विश्वास खत्म करने का काम किया। वह अपने ही देश में अपने ही लोगों के बीच खुद को पराया महसूस कर रहा था।

दरअसल मुस्लिमों, दलितों और महिलाओं के प्रति यह नफरत लोगों के मन में अपने आप नहीं पनपी, बल्कि इसे सत्ता द्वारा प्रायोजित किया जा रहा है। जब सरकार. जनता के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ ले तो अपनी नाकामियों को छिपाने के लिए वह जनता को हिन्दू-मुसलमान के नाम पर लड़ाकर अपना वोट बैंक बढ़ाती हैं और अपना राजनीतिक स्वार्थ पूरा करती हैं। हमें इससे सावधान रहना होगा और आपसी भाईचारा कायम करके अपनी समस्याओं से निपटना होगा।

-- कुलदीप रियाज

पेज 32 का शेष.....

के लिए उत्तराखण्ड सरकार जिम्मेदार है, उतनी ही जिम्मेदार केन्द्र सरकार भी है, जो इस पूरे आयोजन के दौरान उत्तराखण्ड सरकार की सहयोगी बनी रही। साथ ही बंगाल में हजारों लोगों की रैलियों का आयोजन करने में खुद प्रधानमंत्री दूसरी पाटियों से भी आगे निकल गये।

लेख लिखे जाने तक देश भर में कोरोना संक्रमण के 2 लाख से ज्यादा मामले रोजाना दर्ज होते रहे। जब कुम्भ मेले में शामिल लोग अपने-अपने घरों की और लोटे, तो कोरोना वायरस भी इनके घरों में पहुँच गया और लाखों लोग संक्रमित हुए। आज लोग लचर स्वास्थ्य व्यवस्था के चलते मौत की लड़ाई लड़ रहे हैं। ऐसे में आने वाले दिनों में स्थिति को और बुरा होने से कैसे रोका जायेगा, जब सरकार महामारी को रोकने में नहीं बढ़वा देने में लगी हुई है।

-- सत्येन्द्र

कोरोना और कुम्भ मेला

हाल ही में मध्यप्रदेश के विदिशा में हरिद्वार कुम्भ से लौटे 83 लोगों में से 60 कोरोना संक्रमित पाये गये। जबकि इनमें से 5 गम्भीर से रूप से संक्रमित हो गये। इनके अतिरिक्त 22 लोगों की अभी कोई जानकारी नहीं मिली है जो कुम्भ में शामिल हुए थे। देशभर से कुम्भ में शामिल हुए लोगों ने कुम्भ समाप्त होने पर अपने घरों की और लौटना शुरू कर दिया। विदिशा की यह घटना स्वास्थ्य विशेषज्ञों द्वारा पूर्व में कुम्भ को लेकर जतायी जा रही चिन्ताओं में से एक है।

पहले स्वास्थ से जुड़े विशेषज्ञों ने कोरोना के तेजी से फैलते संक्रमण को देखते हुए सरकार से कुम्भ को रद्द किये जाने की अपील की थी, लेकिन उत्तराखण्ड सरकार ने कुम्भ को रद्द किये जाने के बजाय कहा कि "कोविड-19 के नाम पर किसी को भी मेले में आने से नहीं रोका जायेगा। ईश्वर में आस्था वायरस को खत्म कर देगी। मुझे इसका पूरा भरोसा है।" इसके साथ ही उन्होंने कोविड से जुड़े सभी दिशा-निर्देशों का पालन किये जाने की झूठी हामी भी भरी थी।

उत्तराखण्ड सरकार ने स्वास्थ्य विशेषज्ञों की सलाहों और चिन्ताओं को दरकिनार कर अप्रैल माह में कुम्भ मेले का आयोजन किया। सरकारी आँकड़ों के अनुसार मेले में 91 लाख लोगों आये। यह वह समय था जब देशभर में रोजाना 2 लाख से ज्यादा कोरोना संक्रमितों की संख्या दर्ज हो रही थी और 2 हजार से ज्यादा लोग इस बीमारी से मारे जा चुके थे। आज हालत और भी भयावह हो चुकी है।

कुम्भ मेले के दौरान बढ़ने वाले संक्रमण को इसी से समझा जा सकता है कि मेले से पूर्व उतराखण्ड में प्रतिदिन दर्ज संक्रमितों की संख्या 500 थी, जो कुम्भ खत्म होते-होते 28 अप्रैल को 6054 हो गयी।

कोविड दिशानिर्देशों के अनुसार 10 वर्ष से कम उम्र के बच्चे और 65 वर्ष से अधिक के बुजुर्ग मेले में शामिल नहीं हुए। इसके साथ ही मेले में शामिल होने वाले लोगों को मास्क लगाना और सामाजिक दूरी का पालन करना जरूरी था, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

उत्तराखण्ड सरकार ने दावा किया था कि वह कुम्भ मेले में कोरोना नियमों का पालन न करने वालों पर सैकड़ों कैमेरों से निगाह रखेगी, लेकिन कुम्भ मेले के दौरान सरकार के उन सभी बड़े-बड़े दावों की धज्जियाँ उड़ गयी। जब देशभर में लोग कोरोना नियमों का पालन न करने के चलते भारी भरकम जुर्माना भर रहे थे, उस समय कुम्भ मेले में हजारों लोग बिना मास्क और सोशल डिस्टेंसिंग के शामिल हुए। मेला निरीक्षक संजय गुंज्याल ने भी हार मानकर कहा कि कोविड नियमों का पालन करवाना यहाँ मुश्किल था।

पहले शाही स्नान के बाद विभिन अखाड़ों के 68 शीर्ष साधु संक्रमित हुए। जिनमें निर्वानी अखाड़े के महामण्डलेश्वर का कोरोना से निधन हो गया। कुम्भ मेले के दौरान लोगों की कोरोना जाँच से यह सामने आया कि 1 अप्रैल से 30 अप्रैल में कुम्भ के दोरान 15 हजार से ज्यादा लोग कोरोना से संक्रमित हुए। यह सब धर्म के नाम पर जारी ढोंग-पाखण्ड का पर्दाफाश करने के लिए काफी है, लेकिन उत्तराखण्ड सरकार इसके बाद भी नहीं चेती।

एक तरफ सरकार के फैसले से आज लाखों लोग कोरोना संक्रमण का सामना कर रहे हैं, वहीं मीडिया जिसे कुम्भ आयोजन और सरकारी व्यवस्था पर सवाल उठाना चाहिए था, उसने कुम्भ को लेकर अपनी आँखें बन्द कर मुँह पर पट्टी बाँध ली। यह वही मीडिया है, जिसे पिछले वर्ष कोरोना संक्रमण के दौरान तबलीगी जमात में शामिल लोगों को सुपर स्प्रेडर, कोरोना जिहादी, कोरोना आतंकवाद, कोरोना बम जैसे नामों से बदनाम किया था। मीडिया ने उनके खिलाफ नफरत का माहौल बनाया और केन्द्र सरकार के कई बड़े नेताओं ने उनके खिलाफ भड़काऊ बयान दिये। इससे गलियों में सब्जी बेचने वालों, जरूरत का अन्य सामान बेचने वाले मुस्लिमों को पीटा जाने लगा था।

देशभर में तबलीगी जमात से जुड़े लोगों पर एफआईआर दर्ज की गयी और मुकदमे कायम हुए। मुकदमे की सुनवाई के दौरान बाम्बे हाईकोर्ट की औरंगाबाद बेंच ने तबलीगी जमात से जुड़े लोगों पर की गयी एफआईआर रद्द की और कहा की "दिल्ली में मरकज में आये लोगों के खिलाफ मीडिया में गलत प्रोपागेण्डा चलाया गया। भारत में फैले कोरोना संक्रमण के लिए इन लोगों को ही जिम्मेदार बनाने की कोशिश की गयी। तबलीगी जमात को बलि का बकरा बनाया गया।"

मौजूदा तेज संक्रमण की तुलना पिछले वर्ष तबलीगी जमात पर की गयी कार्रवाई से की गयी तो उत्तराखण्ड के मुख्यमंत्री का बयान था कि "वे (मरकज में आये लोग) एक बिल्डिंग में जमा थे, जबकि कुम्भ में आये लोग खुले में रह रहे हैं और यहाँ तो गंगा बह रही है। माँ गंगा के प्रभाव और आशीर्वाद से कोरोना दूर ही रहेगा। माँ गंगा इसे फैलने नहीं देंगी। तबलीगी जमात के जमावड़े से इसकी तुलना करने का सवाल ही पैदा नहीं होता।"

कोरोना के बढ़ते मामलों और संक्रमण से होने वाली मौतों

शेष पेज 31 पर...

लाशें ढोते भारत में सेन्ट्रल विस्टा!

सेन्ट्रल विस्टा पुनर्विकास परियोजना की घोषणा मोदी सरकार ने सितम्बर 2019 में की थी। इस परियोजना में नया संसद भवन, एकीकृत केन्द्रीय मंत्रालय, प्रधानमंत्री आवास, उपराष्ट्रपति आवास बनने हैं और राष्ट्रपति भवन से इण्डिया गेट तक के तीन कीलोमीटर लम्बें राजपथ की सटावट की जानी है। शान्ति भवन, शास्त्री भवन, निमार्ण भवन व नेशनल म्यूजियम जैसी 15 इमारतों को भी जमीदोंज करके नयी इमारतें बनायी जानी हैं। भारत जैसे गरीब देश में बन रही विलासिता की इस योजना का घोषणा के दिन से ही भारी विरोध हो रहा है।

यह परियोजना चार वर्षो में पूरी होनी है। इस पर 20 हजार करोड़ से अधिक की रकम खर्च होगी। अब तक 1300 करोड़ की रकम जारी की जा चुकी है। सबसे पहले संसद भवन और प्रधानमंत्री आवास बनेगा। इनका निर्माण 2022 तक पूरा होना है। इस दैत्यकार परियोजना को पूरा करने की जिम्मेदारी कई देशी-विदेशी कम्पनियों को दी जा चुकी है। यह परियोजना इतनी बडी है कि इसे बनाने के लिए हुए सलाह-मशवरे पर ही 971 करोड़ रुपये खर्च हो चुके हैं।

देश में लॉकडाउन की वजह से आज जनता के रोजी-रोटी के कामों पर भले ही पाबन्दी लगी हो लेकिन सेन्ट्रल विस्टा के निमार्ण का काम जारी है। ताकि "फकीर" प्रधानमंत्री का 1300 करोड़ की लागत से बनने वाला महल तय समय-सीमा पर तैयार हो सके। प्रधानमंत्री के महल पर खर्च होने वाली रकम कितनी बडी है इसका अन्दाजा इन तथ्यों से लगाया जा सकता है-- भारत में आम मजदूर की मजदूरी लगभग 300 रुपये रोजाना है और मान लिया जाये कि उसे साल में 365 दिन काम मिलें तो प्रधानमंत्री के महल में खर्च होने वाली रकम 1,20,370 मजदूरों की पूरे साल की मजदूरी के बराबर होगी या, कोई चाहे तो इस रकम से भारत के सबसे महँगे शहर बैगलूरू में 4000 से ज्यादा शानदार कोठियाँ बना सकता हैं।

अस्पतालों की कमी के कारण कोरोना महामारी में बहुत से लोगों की जान नहीं बचायी जा सकी। सेन्ट्रल विस्टा की पूरी परियोजना पर खर्च होने वाली रकम से 2000 मल्टी स्पेशलिटी हॉस्पिटल तैयार किये जा सकते हैं।

प्रधानमंत्री का कहना है कि यह परियोजना "आत्मनिर्भर भारत" का प्रतीक होगी। वह देश के प्रधानमंत्री हैं चाहते तो इसे "विश्व गुरू भारत", "महाशक्ति भारत" या किसी और भारत का प्रतीक भी बता सकते थे, उनकी मर्जी। दरअसल पहली कोरोना लहर के समय से ही उनके दिमाग में "आत्मनिर्भर" शब्द चढ़ा हुआ है। हालाँकि देशी-विदेशी कम्पनियों को ठेका देकर बनाया जाने वाला सेन्ट्रल विस्टा "आत्मनिर्भर भारत" का प्रतीक कैसे है, यह समझ से परे है। इस तरह की लफ्फाजी उनकी आदत में शामिल है।

नौकर अकसर मालिक की नकल करने लगते है। "गैर-जरूरी" सेन्ट्रल विस्टा को "बेहद जरूरी" साबित करने के लिए सरकारी नुमाइन्दों ने भी मालिक जैसी ही लफ्फाजी की है। उनमें से कुछ इस तरह हैं--

पहला, मौजूदा संसद भवन में बैठने की जगह और आधुनिक तकनीक की कमी है। जब कभी परिसीमन होगा तो राज्य सभा व लोकसभा में बैठने की जगह कम पड़ सकती है। खुद प्रधानमंत्री का दावा है कि नयी इमारत से सांसदों के काम करने की क्षमता बढेंगी और उनमें आधुनिक कार्य-संस्कृति पैदा होगी। इसलिए नया संसद भवन बनाना जरूरी है।

दूसरा, मंत्रालय अलग-अलग इमारतों में बने होने से इनके बीच तालमेल की समस्या है, एक साझा केन्द्रीय साचिवालय में ही सारे मंत्रालय बन जाने से मंत्रालयों में अपसी तालमेल बढ़ेगा।

तीसरा, अलग-अलग बने मंत्रालयों के किराये में सालाना 1000 करोड़ रुपये का खर्च आता है। इस योजना से यह खर्च भी कम होगा।

शायद मौजूदा सरकार पूरे देश को अपनी ही तरह अक्ल का दुश्मन समझती है। ये सभी दलीले इस हद तक बेतुकी है कि सुनने वाले को मानसिक आघात लग सकता है। आइये, जान का जोखिम लेकर इनकी थोड़ी तार्किक जाँच-पड़ताल करें।

हम नहीं कहते, लेफ्टिनेंट जरनल अनुज श्रीवास्तव ने सुप्रीम कोर्ट में दावा किया है कि "रेट्रीफिटिंग" की तकनीक से पुरानी इमारतों को नयी जरूरतों के हिसाब से ढाला जा सकता है। मौजूदा संसद भवन के बारे में सरकार द्वारा बतायी जा रही समस्याओं को इस तकनीक से बेहद कम खर्च में बहुत आसानी से दूर किया जा सकता है। लोकसभा और राज्य सभा दोनों के कुल सदस्यों की कुल संख्या 790 हैं। मौजूदा संसद भवन की इमारत 6 एकड़ में बनी है। बिल्कुल साधारण गणित के हिसाब से एक सांसद के हिस्सें में लगभग 30 वर्ग मीटर से ज्यादा जगह आती है। दिल्ली में इतनी जगह में दो-तीन परिवार रहते हैं। कमाल है मान्यवर सांसदों को इतनी जगह में भी तंगी महसूस हो रही हैं।

आज के तकनीकी दौर में हजारों टैरा-बाइट डाटा रोज एक देश से दूसरे देश में जाता है। दुनिया के अलग-अलग छोर पर बैठे लोग वीडियो कॉल से रूबरू बात कर सकते हैं। सैकडों-हजारों किलोमीटर दूर रखे कम्प्यूटर सिस्टम को एक साथ जोड़ा जा सकता है। ऐसे में कन्धे से कन्धा सटाकर बैठने से कौन सा

समन्वय बढ़ेगा। इसके बजाय तंत्र के केन्द्रीकरण से मानवीय गतिविधियों का केन्द्रीकरण होगा यानी भीड़-भाड़ बढ़ेगी। सभी मंत्रालयों का दिल्ली में होना भी जरूरी नहीं है। जनजाति मंत्रालय झारखण्ड में या वन मंत्रालय मध्य प्रदेश में और इसी तरह सभी मंत्रालय अलग-अलग प्रदेशों में बना देने से कौन सी समस्या आ जाएगी। उल्टा, इससे दिल्ली की भीड-भाड़ घटेगी और आम जनता की मंत्रालयों तक पहुच आसान हो जाएगी। इससे अलग-अलग राज्यों के विकास में भी वृद्धि होगी और एक ही शहर में बढ़ रहा जनसंख्या घनत्व भी कम होगा। सरकार कह रही है कि मंत्रालयों के एक जगह आ जाने से समन्वय बढेगा लेकिन संसद में जहाँ सदस्य एक साथ बैठते हैं हम अकसर ही जूतम-पैजार के दृश्य देखते है। इस हिसाब से सांसद और उनके मंत्रालय जितने दूर-दूर रहें उतना अच्छा।

1000 करोड की बचत के दावे के बारे में प्रसिद्ध वास्तुकार माधव रमन का कहना है कि यह 1000 करोड़ रुपये भारत सरकार के ही पास उनकी संचित निधी में जाते हैं तथा इस रकम का इस्तेमाल इन इमारतों के रख-रखाव में होता है। नयी इमारतें संख्या और आकार दोनों में पुरानी से कहीं ज्यादा बड़ी हैं तो निश्चित रूप से खर्च घटने के बजाय बढ़ेगा। सरकारी कारकूनों को या तो यह साधारण सी बात मालूम नहीं हैं या वे जनता को आला दर्जे का मूर्ख समझते हैं।

सेन्ट्रल विस्टा परियोजना सरकार के ही बनाये एफएआर (तल क्षेत्र अनुपात) के नियमों का भी उल्लंघन करती है। वरिष्ठ वास्तुकार नारायण मूर्ति ने बीबीसी को एक साक्षत्कार में बताया था कि एफएआर सभी नागरिकों पर लागू होता है। यह हमें बताता है कि हम किसी खाली जगह में कितना निर्माण कर सकते हैं। उससे अधिक करने पर दिल्ली के नगर निगम को उसे तोड़ने का अधिकार है। अगर सरकार ही निर्धारित सीमा से डेढ़ गुना ज्यादा निर्माण कर रही हो तो वह दूसरों को क्या सीख देगी। लगता है कि वास्तुकार नारायण मूर्ति जी पूराने जमाने के उसूली आदमी है जो इस सरकार से नियम मानने की आशा कर रहे है जिसने देश के संविधान को ही तार-तार करने का बीड़ा उठा रखा है।

मई माह में ही 60 पूर्व नौकरशाहों ने प्रधानमंत्री व शहरी विकास मंत्री हरदीप सिंह पुरी को चिट्टी लिखी। उन्होंने बताया कि राजधानी के केन्द्र में मौजूद यह इलाका शहर के फेफड़ों की तरह काम करता है। यहाँ की धनी हरियाली जैव-विविधता का भण्डार है। पुरानी इमारतों को ढहाने से बहुत बड़े स्तर पर धूल और मलवा पैदा होगा, साथ ही निर्माण कार्य के लिए बडे पैमाने पर खुदाई होगी। इन तमाम गतिविधियों के चलते चार साल तक रोजाना करीब 700 ट्रक मिट्टी और मलवा लेकर आवाजाही करेंगें, जिससे होने वाले पर्यावरणीय नुकसान की भरपाई करना मुश्किल है। मंत्री जी के कारिन्दों ने ही शायद उस चिट्टी को कूड़ेदान में फेंक दिया होगा।

दिल्ली दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों में से एक है। सेन्टर फॉर पॉलिसी रिसर्च की सीनियर फेलो मंजू मेनन ने कहा कि नये संसद भवन को पर्यावरणीय मंजूरी दिये जाने को कई महत्त्वपूर्ण आधारों पर चुनौती दी गयी है। इसके दूरगामी प्रभावों का कोई आकलन नहीं किया गया। स्मॉग टावर खड़े करने और पौधों को दूसरी जगह लगाने जैसे कदमों की नाकामी सारी दुनिया जानती है।

सरकार शायद 1985 में बने राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र योजना बोर्ड के प्रावधान को देखना भी भूल गयी जिसमें दिल्ली में कोई भी नयी सरकारी इमारत बनाने पर रोक लगायी गयी थी।

20 फीसदी की गहरी खाई में गिर रही विकास दर की गिरावट देखकर अर्थशास्त्रियों के होश फाख्ता हैं। पिछले एक साल में 23 करोड़ लोग कंगाल हो चुके हैं। इन बदनसीबों के झुण्ड सड़कों और कूड़ाघरों के इर्द-गिर्द नमुदार होने लगे हैं। प्रधानमंत्री मोदी जी जब "फकीर" थे तो उसके लाखों रुपये के सूट, करोड़ों रुपये की विदेश यात्राएँ और विज्ञापनों के खर्चें चर्चा में रहते थे। जब वह "फकीर" से "सन्यासी" बनने की ओर बढ़े तो उनके लिए 9 हजार करोड़ रुपये में खरीदें गये दो अत्याधुनिक हवाई जहाज सुर्खियों में आये। आजकल वह "सन्यासी" बने घूमते हैं तो 20 हजार करोड़ की लागत से तैयार हो रही उनकी सेन्ट्रल विस्टा पूरी दुनिया में सुर्खियाँ बटोर रही है। इनकी ऊँची शान का एहसास करने के लिए यह हरदम याद रखना जरूरी है कि यह उसी भारत के "प्रधान सेवक" हैं जो सबसे ज्यादा बाल मृत्यु वाले देशों में शामिल है और इनमें भी 68.2 फीसदी बच्चे पौष्टिक भोजन न मिलने के चलते मरते हैं, 13 करोड़ लोग भूखे सोते हैं। इनके राज में विश्व गुरू बनने की ओर तेजी से बढ़ रहा भारत वैश्विक भुखमरी सूचकांक-2020 में 107 देशों में 94वें स्थान पर है। यही भारत जिसे "सन्यासी" मोदी जी इसी साल जनवरी में "वैक्सीन गुरू" बना चुके हैं इसमें 11 हजार की आबादी पर सिर्फ एक डॉक्टर है। "सन्यासी" तो ऐसी चीजों से ऊपर उठ चुके हैं लेकिन विश्व स्वास्थ्य संगठन दुखी होकर कहता है कि भारत में मौजूदा संख्या से 11 गुणा ज्यादा डॉक्टरों की जरूरत है।

"सन्यासी" मोदी जी की सकारात्मकता की छत्रछाया में आज भारत की नदियाँ और मैदान लाशों से पटे पडे हैं। शमशानों और कब्रिस्तानों की चौखटों पर मुर्दों की लम्बी कतारें लगी हैं। ऑक्सीजन के लिए लोग सड़कों पर खाली सिलेण्डर लिए अपनों को साँसे देने की उम्मीद में दौड रहे हैं। अस्पताल में भर्ती होना तो दूर बुनियादी दवाएँ भी लोगों को नहीं मिल पा रही हैं। इस खौफनाक मंजर के लिए जिम्मेदार सरकार सेन्ट्रल विस्टा के लिए मरी जा रही है। "जब रोम जल रहा था नीरो बंसी बजा रहा था" हमारी आने वाली नस्लें इसकी जगह शायद यह कहा करेंगी-- "जब भारत लाशें ढो रहा था मोदी महल बनावा रहा था।"

-- मोहित वर्मा

अमरीकी घुसपैठ के आगे नतमस्तक राष्ट्रवादी सरकार

7 अप्रैल को अमरीका का सबसे बड़ा योद्धपोत-- जॉन पॉल जोन्स-- जबरन भारत की जल सीमा में घुस गया। जिस क्षेत्र में अमरीकी युद्धपोत घुसा वह समुद्री प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न भारत का विशिष्ठ आर्थिक क्षेत्र (ईईजेड) है। यह जगह अरब सागर में केरल और लक्षद्वीप के नजदीक है। अमरीका ने इस घुसपैठ को 'फ्रीडम ऑफ नेवीगेशन ऑपरेशन' यानी समुद्र में कोई भी कार्रवाई करने की अपनी आजादी बताया है।

ईईजेड किसी देश का वह जल क्षेत्र है (सामान्य तौर पर जमीन से लगा 200 नॉटिकल माइल समुद्री क्षेत्र) जिसके संसाधनों का प्रबंधन, दोहन और संरक्षण करने का उस देश को विशेष अधिकार प्राप्त होता है। किसी देश के ईईजेड में घुसपैठ अन्तरराष्ट्रीय कानून के मुताबिक अपराध है और साथ ही यह उस देश की स्वायत्तता पर हमला भी है। यानी व्यापार के लिए किसी दूसरे देश का जहाज भारत के ईईजेड में तो आ सकता है, लेकिन सैन्य जहाज के आने पर पाबन्दी होती है।

भारत ने 'यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन ऑन दी लॉ ऑफ सी (यूएनसीएलओएस) के आधार पर इस घुसपैठ पर आपत्ति जताई है। भारत के विदेश मंत्रालय ने कहा है, विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र में और महाद्वीपीय तटों में सैन्य अभ्यास या युद्धाभ्यास करने की इजाजत नहीं देता है, खासकर वह अभ्यास जिनमें तटीय राष्ट्रों की सहमति के बिना हथियारों या विस्फोटकों का प्रयोग होता हैं।' आपत्ति की भाषा पर गौर कीजिए, इससे हल्की प्रतिक्रिया नहीं दी जा सकती।

मंत्रालय आगे कहता है, "फारस की खाड़ी से मलक्का जलडमरूमध्य की तरफ जा रहे यूएसएस जॉन पॉल जोन्स पर लगातार निगरानी रखी जा रही थी। हमने राजनयिक चैनलों के माध्यम से हमारे आर्थिक क्षेत्र से गुजरने को लेकर अमरीकी सरकार को अपनी चिन्ताओं से अवगत कराया है।" स्पष्ट है कि अमरीकी जहाज भारत सरकार की नजरों के सामने घुसपैठ कर रहा था। ऐसी स्थिति में भारतीय नौसेना को या रक्षा मंत्रालय को तत्काल प्रतिक्रिया करनी चाहिए थी विदेश मंत्रालय को नहीं। जब कोई हथियारबन्द घुसपैठिया, आपकी नजरों के सामने आपके घर में घुसता है तो सबसे पहले उसे तुरन्त रोका जाता है, राजनयिक बातचीत बाद में होती रहती है।

अमरीका की ओर से रक्षा मंत्रालय ने प्रतिक्रिया दी है। उसने भारत की आपत्ति को खारिज करते हुए कहा है कि भारत की मंजूरी के बिना उसके विशिष्ठ आर्थिक क्षेत्र में घुसपैठ अन्तरराष्ट्रीय कानूनों का उल्लंघन नहीं हैं। अमरीकी प्रतिरक्षा मुख्यालय, पेंटागन के प्रवक्ता जॉन किर्बी ने कहा, "मैं आपको बता सकता हूँ कि नौ सेना के विध्वंसक पोत जॉन पॉल जोन्स ने मालदीव के पास समुद्री क्षेत्र में सामान्य परिचालन के तहत अहानिकारक तरीके से गुजरते हुए अपने नौवहन अधिकारों एवं स्वतंत्रता का उपयोग किया है और इस तरह उसने बिना पूर्व अनुमति के उसके (भारत के) विशिष्ठ आर्थिक क्षेत्र में परिचालन किया हैं। यह अन्तरराष्ट्रीय कानून के अनुरूप है।" यानी भारत के विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र में घुसपैठ को अमरीका अपना अधिकार मानता है और इसके लिए भारत की कोई अनुमति लेने की जरूरत नहीं है।

अमरीका का भारत के ईईजेड में घुसने का यह पहला मौका नहीं। उसका कहना है कि वह 2015,16,17 व 2019 में भी ऐसा कर चुका है। इस बार भी अमरीका ने ही घटना को सार्वजनिक किया है भारत ने नहीं। अमरीका ने माना हैं कि उसका जहाज भारत के ईईजेड में घुसा है। वह खूब अच्छी तरह जानता है कि अगर भारत से उसके समूद्र में घुसने की इजाजत माँगी तो भारत इनकार नहीं कर सकता था। उसने जानबूझकर अनुमति नहीं ली। इसके कुछ खास कारण है।

चीन की घेराबन्दी और दक्षिणी चीन सागर में उसके बढ़ते प्रभुत्व पर काबू पाने के लिए अमरीका हिन्द-प्रशान्त क्षेत्र में मुक्त नौपरिवहन के नाम पर अभियान छेड़े हुए है। अपने सारे पड़ोसी देशों से रिश्ते खराब करके भारत इस अभियान में अमरीका का पिछलग्गू बना हुआ है। भारत, अमरीका, जापान और आस्ट्रेलिया द्वारा बनाया गया समूह, क्वाड का मकसद ही अमरीका के इसी अभियान की सेवा करना है। अमरीका भारत के सामने स्पष्ट करना चाहता है कि हिन्द प्रशान्त क्षेत्र में मुक्त नौ परिवहन का अमरीकी सूत्रीकरण चीन की तरह भारत पर भी लागू होता है। अमरीका भारत को भी स्पष्ट संदेश देना और यह स्थापित करना चाहता था कि भारत के ईईजेड क्षेत्र में घुसना उसका अधिकार बन चुका है। इस घटना ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि क्वाड अमरीका, जापान और आस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय हितों की सेवा करता है। भारत की इसमें वही हालत है जो साहबों की बैठकों में कुर्सी लगाने वालों की होती है।

भारत के मूर्ख और बौने शासकों ने भारत को अभूतपूर्व संकट में फँसा दिया है। दुनिया की एक महाशक्ति लेह लद्दाख में सर की तरफ से भारत के पर्वतों पर कब्जा कर रही है और दूसरी ने उसका समुद्र कब्जाना शुरू कर दिया है।

-- विकास अदम

सरकार द्वारा लक्ष्यद्वीप की जनता की संस्कृति पर हमला और दमन

लक्ष्यद्वीप में प्रफुल्ल खोड़ा पटेल को नया प्रशासक बनाकर सरकार ने वहाँ की जनता पर कई जनविरोधी कानून थोप दिये हैं। स्थानीय पंचायत प्रतिनिधियों से उनके अधिकार और ताकत छीनकर अपने हाथ में ले लिया, जिनमें शिक्षा-स्वास्थ्य, खेती-पशुपालन और मछुआरों के मामले आते हैं। पंचायत चुनाव के नियम बदल दिये जिसके तहत अब वही व्यक्ति पंचायत चुनाव लड़ सकता है जिसके दो या दो से कम बच्चे हों। पशु संरक्षण का हवाला देकर स्कूली छात्रों के दोपहर के पौष्टिक आहार से बीफ-माँस-मछली हटा दिया गया जबकि गाय-भैंस के मीट पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। शराब पर लगा प्रतिबन्ध हटाकर, शराब बिक्री को वैध कर दिया गया। तटरक्षक बल अधिनियम का हवाला देकर मछुआरों को समुन्द्र तट से बेदखल किया जा रहा है और उनकी झोपड़ियों को तोड़ दिया जहाँ वे मछली पकड़ने का अपना जाल रखते थे। संगठित, असंगठित क्षेत्र के कर्मचारियों और कई सरकारी विभागों में ठेके पर काम करने वाले कर्मचारियों को नौकरी से निकाला जा रहा है। गुण्डा एक्ट लगाकर जनता की आवाज को दबाया जा रहा है, उन्हें जेल में बन्द किया जा रहा है और बाहर से आने वालो के लिए कोरोना महामारी से सम्बन्धित नियमों को ढीला कर दिया गया है।

लक्ष्यद्वीप अपनी शान्तिप्रियता के लिए प्रसिद्ध है, यह हमारे देश का सबसे कम अपराध दर वाला प्रदेश है। यही कारण है कि यहाँ की जेल वीरान पड़ी रहती थी। प्रजनन दर पूरे देश की तुलना में सबसे कम (1.4 प्रतिशत) है और महिलाओं में शिक्षा दर भी पूरे देश के किसी भी राज्य से अधिक (96.5 प्रतिशत) है। यह मुस्लिम बहुल प्रदेश है। केरल और पश्चिम बंगाल की तरह ही गाय-भैंस का मीट यहाँ के लोगों के भोजन में शामिल रहा है। यहाँ लोगों का जीवन निर्वाह मुख्य रूप से समुन्द्र से मछली पकड़ने, नारियल की खेती और पशुपालन से होता है। लेकिन नये प्रशासक और सरकार को यहाँ के लोगों का शान्तिप्रिय और खुशहाल जीवन रास नहीं आया और देश के बाकि हिस्सों की तरह यहाँ भी अपने फर्जी राष्ट्रवादी एजेण्डे को जनता पर थोप रहे हैं।

सरकार द्वारा बनाये गये जन विरोधी कानूनों के कारण लोगों की परेशानियाँ काफी बढ़ गयी हैं। स्थानीय लोगों का कहना है कि मीट पर पाबन्दी लगाना हमारी संस्कृति पर हमला है और यह हमारे अपने तरीके से जिन्दगी जीने का अधिकार छीन लेता है, इसके कारण मीट का कारोबार करने वाले लोगों का काम-धन्धा ठप हो गया है और छोटे दुकानदारों के सामने रोजी-रोटी का संकट खड़ा हो गया है। शराब पर लगे प्रतिबन्ध हटाने से स्थानीय लोग चिंतित है, कि इससे प्रदेश में अपराध बढ़ेंगे।

लक्ष्यद्वीप विकास प्राधिकरण बनने के बाद सरकार विकास के नाम पर किसी को भी उसकी जमीन से उजाड़ रही है और जंगल, जमीन, पहाड़ और समुन्द्री तटों को बड़े-बड़े कार्पोरेट, भूमाफियाओं और उद्योगपतियों को कौड़ी के दाम बेचने की तैयारी कर रही है। सरकार जिस विकास के मॉडल को यहाँ थोपना चाहती है उससे यहाँ की जैव-विविधता और पारिस्थितिकी नष्ट हो जायेगी। पंचायत चुनाव में अधितम दो बच्चों की सीमा और स्थानीय पंचायत प्रतिनिधियों के अधिकार छिन जाने से स्थानीय लोगों में सरकार के प्रति नफरत और गुस्से का माहौल है। लक्ष्यद्वीप की बहुसंख्यक आबादी मुस्लिम है और बहुसंख्या मछुआरों की है। सरकार द्वारा तटरक्षक बल अधिनियम का हवाला देकर उन मछुआरों को समुन्द्र तट से बेदखल किया जा रहा है जो कई पीढ़ियों से यही काम और तटों की रक्षा करते रहे हैं। उनकी झोपड़ियों को तोड़ा जा रहा है, जहाँ मछुआरे मछली पकड़ने का अपना जाल रखते हैं। उनके सामने रोजी का संकट खड़ा हो गया है। सरकार की क्रूरता का अन्त यहीं नहीं होता। विभिन्न सरकारी विभागों से अनियमित, अनुबन्ध कर्मचारी, पर्यटन विभाग और इससे सम्बद्ध शिक्षण संस्थान में कार्यरत कई कर्मचारियों और पशु कल्याण विभाग, कृषि विभाग के साथ-साथ कई ऐसे श्रमिकों की छँटनी कर दी गयी है जो विभिन्न सरकारी संस्थाओं में ठेका मजदूर थे और आँगनबाड़ी केन्द्रों पर ताला लगा दिया गया है।

प्रदेश की जनता जब प्रशासक और सरकार की नीयत को जान गयी तो इन जनविरोधी कानूनों के खिलाफ सड़कों पर उतर आयी और लोग जगह-जगह विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं। लेकिन जहाँ मुख्य धारा की बिकाऊ मीडया से यह खबर गायब है वहीं सोशल मीडिया पर प्रफुल्ल खोड़ा पटेल की क्रूरता और इन जनविरोधी कानूनों की जमकर निन्दा हो रही है। जो इन जनविरोधी कानूनों को वापस लेने के बजाय बौखलाया हुआ है। एक ऐसे प्रदेश में गुण्डा एक्ट लगाकर जनता की आवाज दबाना चाहता है जो शान्तिप्रिय प्रदेश है और यह हमारे देश का सबसे कम अपराध दर वाला प्रदेश है, जिस कारण यहाँ की जेल भी वीरान पड़ी रहती थी।

प्रदेश की जनता के साथ-साथ, जनता के प्रतिनिधि, कई संगठन, फिल्म निर्देशक, छात्र संगठन और राजनीतिक पार्टियों के नेता (जिनमें भाजपा के नेता भी शामिल है) राष्ट्रपति और

प्रधानमन्त्री को इस बारे में कई बार चिट्ठी लिख चुके हैं। उन्होंने माँग की है कि इन जनविरोधी कानूनों को रद्द किया जाये और प्रफुल्ल खोड़ा पटेल को तुरन्त हटाया जाये। लेकिन राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री कोई कार्रवाई करने को तैयार नहीं है। उनके द्वारा कोई कार्रवाई न करने के पीछे क्या कारण है इसे समझना कठिन नहीं।

केन्द्र की भाजपा सरकार अपने हिन्दू राष्ट्रवादी एजेण्डे को किसी भी कीमत पर पूरे देश पर थोपना चाहती है। इसका भारी नुकसान पूरे देश की जनता को उठाना पड़ रहा है। फिर चाहे गुजरात का नरसंहार हो या फरवरी 2020 देश की राजधानी दिल्ली में प्रायोजित कराये गये साम्प्रदायिक दंगे, जिनमें दोनों तरफ से लोगों को जान गँवानी पड़ी, घरों और दुकानों में आग लगा दी गयी। पूर्वोत्तर और कश्मीर भी भाजपा और आरएसएस के हिन्दू राष्ट्रवादी एजेण्डे का दंश झेल रहा है। जिस तरह कश्मीर में धारा 370 हटाकर और जबरन कर्फ्यू लगा कर पूरे राज्य को अघोषित जेल में तब्दील कर दिया है, वैसे ही मुस्लिम बहुल होने कारण सरकार लक्ष्यद्वीप को अलग-थलग करके, जनता का दमन कर रही हैं।

यह भी सम्भव है कि प्रदेश की जनता को इन जनविरोधी कानूनों में उलझाकर भाजपा सरकार कुछ छिपाने की कोशिश कर रही है। पिछले वर्षों के दौरान भाजपा सरकार द्वारा की गयी कार्रवाइयाँ, जैसे देश की जनता को साम्प्रदायिक दंगों में उलझाकर सरकारी निगमों को बेच देना या लव जेहाद का मुद्दा उठाकर शिक्षा, स्वास्थ्य और परिवहन जैसी सुविधाओं का निजीकरण कर देना। इसकी पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि हाल ही में फ्रीडम ऑफ नेविगेशन का हवाला देकर अमरीकी नौसेना ने भारत के एक्सक्लूसिव इकोनोमिक जोन यानी लक्ष्यद्धीप के समुन्द्री तट में प्रवेश किया। किसी भी देश के एक्सक्लूसिव इकोनोमिक जोन में प्रवेश करने के लिए उस देश से सहमति लेना जरूरी होता है, क्योंकि यह उस देश की आन्तरिक सुरक्षा का मामला होता है, लेकिन अमरीकी नौसेना को भारत से सहमति लेना नागवार गुजरा और भारत को अपनी बपौती मानकर अपने जहाज लक्ष्यद्धीप के समुन्द्री तट पर खड़े कर दिये। अमरीकी चौधराहट की गुलाम हमारे देश की सरकार और बिकाऊ मीडिया ने फजीहत से बचने के लिए अब तक इस खबर को लीक नहीं होने दिया, लेकिन अमरीकी नौसेना के एक कमाण्डर ने अपनी इस पूरी कार्रवाई को सार्वजनिक कर दिया।

लक्ष्यद्वीप की सामाजिक कार्यकर्ता और फिल्मकार आयशा सुल्ताना के खिलाफ आईपीसी की धारा 124 ए तहत इसलिए राजद्रोह का मुकदमा लगाया क्योंकि उन्होंनें प्रदेश की जनता का समर्थन करते हुए कहा कि केन्द्र सरकार प्रशासक प्रफुल्ल पटेल को प्रदेश की जनता के खिलाफ 'जैविक हथियार' के रूप में इस्तेमाल कर रही है। केन्द्र की भाजपा सरकार द्वारा लक्ष्यद्वीप की शान्तिप्रिय जनता पर थोपे गये प्रशासक की इन कार्रवाई के खिलाफ और आयशा सुल्ताना के समर्थन में प्रदेश की जनता प्रदर्शन कर रही है। यहाँ तक कि भाजपा स्थानीय इकाई के कई नेता और कार्यकर्ताओं ने इन जनविरोधी कार्रवाइयों की खिलाफत करते हुए पार्टी से नाता तोड़ लिया है।

केन्द्र सरकार ने पुराने नियमों को ताक पर रख कर प्रफुल्ल खोड़ा पटेल को लक्ष्यद्वीप का प्रशासक बनाया। वह प्रधानमन्त्री मोदी और गृहमन्त्री अमित शाह का बहुत करीबी है और उसका पिता राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ सदस्य था। वह गुजरात में 2007 से 2012 तक एमएलए रहा और 2010 में अमित शाह की गिरफतारी के बाद 2010 से 2012 तक गुजरात का गृहराज्य मन्त्री रहा। 2016 से 2020 तक वह दमन दिऊ और दादरा नगर हवेली का प्रशासक रहा। उस समय के सेवा में रहे पूर्व आईआरएस कनन गोपीनाथन ने प्रधानमन्त्री को लिखा कि "प्रिय प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी जी, आपने पहले दादरा नगर हवेली में प्रफुल्ल पटेल को प्रशासक बनाकर वहाँ के लोगों को प्रताड़ित किया। यहाँ तक कि इसके चलते एक सांसद की खुदकुशी भी हुई। अब लक्ष्यद्वीप उनकी सनक झेल रहा है। गुजरात बीजेपी के अन्दरूनी झगड़े और पार्टी के अन्दर बनाये रखने की मजबूरी का मतलब यह नहीं है कि नागरिकों को प्रताड़ित किया जाये।"

चिकित्सा के सामान की कालाबाजारी चरम पर

जब देश भर की जनता दवा और ऑक्सीजन सिलेंडर की किल्लत से जूझ रही थी, तो उस समय कालाबाजारी जमकर लूट मचा रहे थे। ऑक्सीजन सिलेंडर को 30 हजार रुपये से ऊपर बेचा गया। रेमडीशिविर इंजेक्शन, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली दवाइयाँ, सर्जिकल उपकरण और सैनीटाइजर की कालाबाजारी से जनता आजिज आ गयी। नकली सैनीटाइजर भी खूब धड़ल्ले से बिके। पुलिस-प्रशासन की नाक के नीचे चलने वाले इस खेल ने जनता की जिन्दगी तबाह कर दी। इसे रोकने में प्रशासन भी विफल रहा।

अभिव्यक्ति की आजादी का झूठा भ्रम खड़ा करने की कोशिश

"अभिव्यक्ति की आजादी" और "असहमति की आजादी" लोकतंत्र के सबसे बुनियादी मूल्य हैं। आधुनिक समाज में अपने विचारों को जाहिर करने का सबसे बड़ा, आसान और प्रभावी माध्यम पत्रकारिता और सोशल मीडिया है। भारत भले ही दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र हो लेकिन यहाँ पत्रकारिता सबसे खतरनाक पेशों में से एक है।

"रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स" नामक संस्था पूरी दुनिया के अलग-अलग देशों में प्रेस की स्वतंत्रता का आकलन करती है। इस संस्था ने इसी साल अप्रैल में विश्व प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक 2021 जारी किया है। पिछले साल की तरह इस साल भी भारत को 180 देशों में 142 वाँ स्थान मिला है। यानी प्रेस स्वतंत्रता के मामले में भारत दुनिया के सबसे फिसड्डी देशों में शामिल है।

पिछले साल यह सूचकांक जारी होने के बाद भारत सरकार ने "इण्डेक्स मोनिटर सेल" नामक एक समिति का गठन किया था। इस समिति का काम "रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स" के पैमानों की जाँच पड़ताल करके प्रेस स्वतंत्रता के मामले में भारत की रैंकिंग सुधारना था। मतलब, समिति की जिम्मेदारी कुछ ऐसे जुगाड़ करने की थी जिनसे, भारत में प्रेस की स्वतंत्रता चाहे जैसी हो लेकिन उसकी रैंकिंग अच्छी आये। पत्रकारिता के विषय में बनी इस समिति के सदस्यों में सिर्फ दो ही पत्रकार थे। बाकी नौ सदस्य भारत के अलग-अलग विभागों से उच्च अधिकारी थे। जो दो पत्रकार इसमें शामिल थे उनमें से एक थे न्यूज चैनल, इंडिया टीवी के रजत शर्मा जो सरकार की चाटुकारिता के लिए प्रसिद्ध हैं और दूसरे थे "द हिन्दू" के पूर्व सम्पादक और वरिष्ठ पत्रकार पी साईनाथ। पी साईनाथ वही पत्रकार हैं जिन्होंने भारत के दूरदराज के इलाकों में अपनी खोजी पत्रकारिता के जरिये यह बताया था कि देश में किसानों की तबाही की बुनियाद में सरकारी नीतियाँ है।

जब "इण्डेक्स मोनिटर सेल" अपनी मुख्य रिपोर्ट तैयार कर रहा था तभी पी साईनाथ ने उस रिपोर्ट के विरोध में एक असहमति पत्र भी लिखा था। लेकिन मंत्रालय को अपनी रिपोर्ट देते समय समिति ने इसे साथ में नहीं जोड़ा, हो सकता है नौकरशाहों ने पत्र को उठाकर रद्दी की टोकरी में फेंक दिया हो। इस पत्र में पी साईनाथ ने सरकार को उन कदमों की याद दिलाने की कोशिश की थी जो पत्रकारों के खिलाफ उठाये गये हैं और जो लोकतंत्र के नाम पर धब्बा हैं।

इसके अलावा अपने पत्र में उन्होंने ऐसे 52 कानूनों का भी जिक्र किया जो भारत की स्वतंत्र पत्रकारिता का गला घोंटते हैं। इनमें से कुछ कानून तो अंग्रेजी राज के हैं। महामारी रोग अधिनियम 1897 ऐसा ही एक कानून है। कहने को तो यह कानून महामारी के नियंत्रण के लिए बनाया गया था लेकिन सरकार के कुकर्मों पर पर्दा डालने के लिए उसका खूब दुरुपयोग हुआ। सन् 1918-19 में स्पेनिश फ्लू के दौरान बाल गंगाधर तिलक ने अपने अखबार "केसरी" में अंग्रेज सरकार की बदइन्तजामी की खबर छापी थी। अंग्रेज सरकार ने इस कानून की आड़ लेते हुए बाल गंगाधर तिलक को 18 महीने के लिए जेल में ठूँस दिया।

तमिलनाडु में भोजन, पीपीई किट आदि की कमी की खबर छापने पर "एण्ड्रू सैम राजा पांडियन" नाम के एक पत्रकार को गिरफ्तार कर लिया गया। आजाद भारत में यह पहला मौका था जब महामारी अधिनियम के तहत किसी पत्रकार को गिरफ्तार किया गया। इसी से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि भारत में प्रेस स्वतंत्रता की क्या हालत है।

पिछले साल की रैंकिंग जारी होते ही सरकार ने समिति बनाने के अलावा फ्रांस में भारत के राजदूत जावेद अशरफ को आदेश दिया कि वे रैंकिंग जारी करने वाली संस्था "रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स" के अधिकारियों से मिलकर नाराजगी जाहिर करें। राजदूत जैसे उच्च अधिकारी को ऐसे काम में लगाना यह दर्शाता है कि सरकार असल में इस रैंकिंग के प्रति कितनी गम्भीर है। बातचीत के दौरान जब कश्मीर में इण्टरनेट बैन कर दिये जाने का मुद्दा उठा तो राजदूत ने कहा कि वहाँ असली मुद्दा प्रेस स्वतंत्रता नहीं है बल्कि फेसबुक, व्हाट्सएप के जरिये फैलने वाली फेक न्यूज है जिससे भारतीय सुरक्षा को खतरा है। लेकिन फेक न्यूज की आड़ में जिस तरह मुख्य पत्रकारिता का गला घोंटा गया उस पर कोई बात नहीं हुई। जब उत्तर प्रदेश में खनन माफिया द्वारा पत्रकार की हत्या का मुद्दा उठा तो राजदूत महोदय उसे केवल कानून व्यवस्था बिगड़ने का मुद्दा बताकर कन्नी काट गये।

वैसे तो भारतीय लोकतंत्र की हर सरकार ने पत्रकारों का और अभिव्यक्ति की आजादी का गला घोंटा है लेकिन मोदी सरकार ने इस मामले में नये रिकॉर्ड कायम किये हैं। पिछले 7 साल से व्यवस्थित तरीके से जमीन पर और सोशल मीडिया पर स्वतंत्र आवाजों का गला घोंटा जा रहा है। अभिव्यक्ति की हर आवाज को दबाने के लिए लम्पटों के जमीनी संगठन से लेकर आईटी सेल तक एक पूरी फौज खड़ी कर दी गयी है। पत्रकारों की गिरफ्तारी और उनकी हत्याओं की घटनाओं में पिछले 7 साल में रिकार्ड बढ़ोतरी हुई है।

मन की बात कार्यक्रम को लेकर लौह-अनुशासित नजर आने वाले प्रधानमंत्री महोदय पत्रकारों से दूरी ही बनाये रखते हैं। मोदी ने

शेष पेज 56 पर...

समसामयिक विमर्श-1

भारत के मौजूदा कृषि संकट की अन्तरवस्तु

-- विक्रम प्रताप

दिल्ली और देश के बाकी हिस्सों में किसान आन्दोलन निरन्तर जारी है। यह आन्दोलन सरकार के लिए सिरदर्द बन गया है और सरकार की लोकप्रियता को लगातार कम करता जा रहा है। ऐसे माहौल में देश के कृषि संकट पर बहसें तेज हो गयी हैं। पहले से कहीं अधिक संख्या में लोग इसे समझने की कोशिश में लगे हुए हैं, जिसके चलते नयी बहसें और नये विवाद पैदा हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में मौजूदा कृषि संकट की अन्तरवस्तु को समझने के लिए इसके महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर गौर करना जरूरी है। कृषि संकट के दो हिस्से हैं-- पूरी कृषि व्यवस्था का संकटग्रस्त होना और ग्रामीण समुदाय की आजीविका और जीवनयापन का संकट। सरकार और बुर्जुआ बुद्धिजीवी कृषि व्यवस्था के संकट को समझने और हल करने की कोशिश करते हैं, लेकिन वे किसानों की जिन्दगी के संकट को समझने और हल करने का कोई प्रयत्न नहीं करते हैं। यह बात साफ है कि कृषि संकट और किसानी संकट दो अलग-अलग मुद्दे हैं, लेकिन ये एक-दूसरे से जुड़े हुए भी हैं। इसलिए हमें इन दोनों का अध्ययन समग्रता में करना चाहिए। यह लेख इसी दिशा में एक छोटा सा प्रयास है।

भारत की कृषि व्यवस्था के संकट को समझने के लिए पंजाब की खेती एक मॉडल की तरह है, जहाँ उन्नत कृषि ने किसानों की समस्याओं को भी उन्नत स्तर पर पहुँचा दिया है। "हरित क्रान्ति" में अगुआ पंजाब पूँजीवादी कृषि के मामले में भी अगुआ रहा है --- विशालकाय आधुनिक मशीनें, उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाशक, व्यवस्थित खेती, प्रकृति पर घटती निर्भरता आदि सभी मामलों में वह देश का अगुआ है। राजनीतिक, सामाजिक और तकनीकी ज्ञान के मामले में वहाँ काफी हद तक जाग्रत एक किसान समुदाय भी है। लेकिन इसके बावजूद फसल की तबाही और बीमारी से निपटने में पंजाब विफल रहा है। यहाँ कृषि विभाग की अकर्मण्यता, कम्पनियों, डीलरों और सरकारी अधिकारियों की मिलीभगत से फसलों की लूट भी अपने चरम पर है। नतीजा यह कि उन्नत कृषि ने किसानों की उन्नति नहीं की, बल्कि उन्नति के उसके दावे खोखले साबित हुए। किसानों की आत्महत्याओं का ग्राफ तेजी से ऊपर चढ़ता ही जा रहा है। ऐसा क्यों हुआ इस पर एक नजर डालते हैं।

नवउदारवादी मॉडल के तहत पिछड़े देशों की कृषि में साम्राज्यवादी पूँजी हस्तक्षेप करे, इससे पहले ही यहाँ की कृषि पूँजीवादी विकास का मार्ग अपना चुकी थी। यह हरित क्रान्ति का समय था। हालाँकि वह विकास भी साम्राज्यवादी दबाव से पूरी तरह से मुक्त नहीं था। हरित क्रान्ति को विश्व बैंक की सहायता इसका प्रमाण है। साथ ही, उद्योग की तरह पूँजीवादी कृषि भी प्रतियोगिता, पूँजी संचय और मुनाफे के अन्तरविरोध से संचालित होती है और उसमें भी लगातार मुनाफे को विस्तारित करने की अनिवार्यता बनी रहती है। व्यवस्था इस तरह से ढालनी पड़ती है कि न्यूनतम जोर-जबरदस्ती से पूँजीपति अतिरिक्त श्रम को हड़प सके। इस प्रक्रिया में गुजारे की खेती से बाजार के लिए खेती की अपरिहार्य यात्रा पूरी करनी पड़ी।

जब धीरे-धीरे पिछड़े देशों की कृषि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के अधीन आती चली गयी, तब साम्राज्यवादी पूँजी के लिए बाजार के विस्तार और नये बाजार की खोज के दबाव ने पिछड़े देशों की कृषि में पूँजी निवेश को और अधिक बढ़ावा दिया। कृषि में देशी-विदेशी पूँजी निवेश ने कई तरीके से पूँजीवाद को आगे बढ़ाया। खेती से उत्पादित फसलें उद्योगों के लिए कच्चे माल का स्रोत बन गयी हैं। दूसरी ओर, कृषि से जुड़ी ग्रामीण आबादी औद्योगिक मालों की उपभोक्ता है। इस तरह गाँव तक राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय बाजार का विस्तार हुआ है। इसके लिए गाँव तक पहुँचने के लिए सड़कों का जाल बिछाया गया और यातायात के साधनों को उन्नत किया गया। खेती की लागत के रूप में भी औद्योगिक मालों की खपत होती है जैसे-- बिजली, कीटनाशक, खरपतवारनाशक, उर्वरक, पानी, बीज आदि। इनके अलावा पूँजी निवेश का एक हिस्सा विविध तरह के शोध (बिजली, कीटनाशक, खरपतवारनाशक, उर्वरक, बीज आदि के शोध में) और कृषि यन्त्रों के विकास में लगाया जाता है। पूँजीवादी कृषि के दम पर उद्योग की पूरी एक शाखा यानी फूड प्रोसेसिंग इण्डस्ट्री फलती-फूलती है जिसमें आटा, मैदा, खाद्य तेल, ब्रेड, डेयरी उत्पाद, नमकीन-बिस्किट, चीनी, शराब, दवाइयाँ जैसे-- अनगिनत उपभोक्ता मालों का उत्पादन होता है।

ग्रामीण समाज में वर्गीय विभेदीकरण

कृषि में पूँजीवाद आने के चलते ग्रामीण क्षेत्र के श्रम सम्बन्धों में बुनियादी परिवर्तन आ गया। गाँव में पूँजी के प्रसार से किसानों का चार वर्गों में विभेदीकरण हुआ-- पूँजीवादी फार्मर (किसान पूँजीपति), धनी किसान, मध्यम किसान और गरीब किसान। इनकी माली हालत इस तरह है--

धनी किसान मूलतः मजदूरों के दम पर ही खेती करता है। वह मजदूरों के श्रम का शोषण करके अपनी पूँजी बढ़ाता है। उसके पास खेती के अपने औजार भी होते हैं। वह कभी-कभी ठेके पर खेत लेकर भी खेती करता है।

पूँजीवादी फार्मर भी धनी किसान की तरह मजदूरों के श्रम का शोषण करके खेती करता है, लेकिन जहाँ धनी किसान खेती का प्रबन्धन खुद करता है, वहीं पूँजीवादी फार्मर खेती के प्रबन्धन के लिए उच्च शिक्षित मैनेजर को काम पर रखता है। वह खेती के सम्पूर्ण कामों का संगठन उद्योग की तर्ज पर करता है और कृषि कार्य को कई शाखाओं और उपशाखाओं में बाँट देता है। भारत जैसे पिछड़े देश में पूँजीवादी फार्मरों की संख्या बहुत कम है।

मध्यम किसान के पास इतनी जमीन होती है कि वह अपनी मेहनत से जमीन पर खेती करके परिवार का गुजारा कर लेता है। वह कहीं और मजदूरी करने नहीं जाता। उसके परिवार के सदस्य अपनी जमीन पर ही मजदूर की तरह खटते हैं। अपनी बर्बादी को रोकने और विषम परिस्थितियों में आगे बढ़ने के लिए इसे कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। वह कभी-कभार अपने खेत पर मजदूर लगा लेता है, लेकिन मजदूरों से सहानुभूति भी रखता है।

गरीब किसान बहुत छोटी जोत वाले ऐसे किसान होते हैं जो अपनी जमीन पर खेती करने के अलावा बाहर भी मजदूरी या कोई छोटा-मोटा रोजगार करते हैं। इनमें से कुछ एक-दो गाय या भैंस पालकर अपनी जिन्दगी गुजारते हैं। इन किसानों की हालत बहुत खराब रहती है और इनके लिए अपनी रही-सही जमीन बचाना भी भारी मुसीबत का काम होता है। इनमें से कुछ किसान जमीन के मालिक नहीं होते, बल्कि वे ठेके पर जमीन लेकर खेती करते हैं। दूसरी जगह रोजगार की कमी के चलते भी गरीब किसान द्वारा ठेके पर जमीन लेकर खेती का चलन बढ़ता है।

इन चार वर्गों के अलावा गाँव में खेत मजदूर एक बड़ा वर्ग है। खेत मजदूर अपनी श्रम शक्ति पूँजीवादी फार्मर और धनी किसान को बेचता है। सामन्ती शोषण के अधीन खेत मजदूरों की हालत बँधुआ गुलाम जैसी थी, लेकिन आज वे किसी एक किसान परिवार से बँधे हुए नहीं रह सकते हैं। अगर कुछ मजदूर किसी एक किसान परिवार के यहाँ स्थायी रूप से काम करते हैं, तो किसी जोर-जुल्म के चलते नहीं, बल्कि उस मजबूरी के चलते, जिसे बाजार ने उनके ऊपर थोप दिया है, यानी रोजगार की खराब हालत ने क्योंकि पूँजीवादी फार्मर और धनी किसान के यहाँ काम करनेवाले खेत मजदूर भी बहुत बढ़िया जिन्दगी नहीं जी रहे हैं। बड़ी संख्या में खेत मजदूर असंगठित क्षेत्र के बाकी दिहाड़ी मजदूरों की तरह ही रोज कुआँ खोदते और पानी पीते हैं। उन्हें खेती में पर्याप्त रोजगार नहीं मिलता। नतीजतन वे गाँव में विविध तरह की मजदूरी करने के अलावा रोजगार की तलाश में शहर की ओर पलायन करते हैं। शहर और देहात के बीच मजदूरी का अन्तर और गाँव का जातीय उत्पीड़न भी उन्हें शहरों की ओर धकेलता है। शहर में जातीय उत्पीड़न गाँव की तुलना में कम है। शहर में पूँजीवाद के अमानवीय शोषण का शिकार होने के बावजूद वे यहाँ जातीय उत्पीड़न के दंश से कुछ हद तक मुक्ति पा जाते हैं।

आधुनिक खेती और नयी कृषि मशीनरी के बढ़ते चलन ने गरीब किसानों और खेत मजदूरों को गाँवों में मजदूरी से बाहर कर दिया। इसने पुरखों की याद दिलानेवाले गाँव को छोड़ने के लिए उन्हें मजबूर कर दिया है। शहरों में आ जाने के बाद भी उनकी कठिनाइयाँ कम नहीं होती। किराये के कमरे में ठुँसे हुए या गन्दी झुग्गियों में वे बीमारी, चोर-उचक्कों और पुलिस-प्रशासन के हमलों को झेलते हुए अपनी जिन्दगी गुजारते हैं। इस तरह जातीय भेदभाव से भी वे दूर ही बने रहना चाहते हैं। उनके बूढ़े होने के बहुत पहले ही उनके बच्चे बचपन में ही उनकी जगह लेने के लिए प्रशिक्षण लेने लगते हैं। बिजली, पानी और टायलेट का अभाव भी उनकी हिम्मत को तोड़ नहीं पाता। वे कमाल के जीवट होते हैं। साफ-सुथरे मुहल्लों से दूर निवास करने की वजह केवल आर्थिक ही नहीं होती, बल्कि सामूहिकता का फायदा भी उन्हें एक-दूसरे से बाँधे रखता है।

पूँजीवादी अवस्था की अदृश्य लेकिन भयावह शोषण की चक्की में पिसकर मध्यम और गरीब किसान दिन पर दिन बदहाल होते जा रहे हैं। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्र में काम करनेवाले खेत मजदूर, चिनाई और ईंट-भट्ठा मजदूर, छोटे दुकानदार, निजी स्कूलों के अध्यापक और झोलाछाप डॉक्टर आदि शोषित वर्ग में आते हैं। देहात के शोषक वर्ग में धनी किसान, ईंट-भट्ठे के मालिक, धनी दुकानदार, सूदखोर-साहूकार और मोटी तनखाह वाले नौकरीपेशा लोग आते हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था में छोटी खेती के घाटे से परेशान गरीब किसान, रोजगार की बेहतर स्थिति आने पर अपना खेत धनी किसान को ठेके पर उठा देते हैं और खुद मजदूरी करने लगते हैं। धनी किसान केसीसी (किसान क्रेडिट कार्ड) के जरिये अपने विशाल भूभाग पर सरकारी बैंकों से सस्ता कर्ज पा जाते हैं। कुछ

धनी किसान इस धन का उपयोग सूदखोरी के लिए करने लग जाते हैं। वे मध्यम किसान, गरीब किसान या खेत मजदूर को, जिसके पास अपना घर हो या कोई और साख हो उन्हें ऊँची ब्याज दर पर कर्ज दे देते हैं। ब्याज की दरें 3 से 10 प्रतिशत मासिक तक होती हैं। इतनी ऊँची ब्याज दर का कर्ज शायद ही कभी कर्जदार चुका पाते हों और अमूमन हर मामले में वे बर्बाद ही होते हैं और अपनी जगह-जमीन से उजड़ जाते हैं। इस तरह चाहे सरकारी कर्ज हो या सब्सिडी या न्यूनतम समर्थन मूल्य, सभी सरकारी रियायतों का लाभ धनी किसान ही सबसे अधिक उठाते हैं।

कृषि के पूँजीवाद के अधीन होने के बाद से भूस्वामित्व की व्यवस्था में भी व्यापक बदलाव आया है। जमीन की कीमत आसमान छूने लगी है। देहात में जमीन सबसे कीमती माल बन गयी है। इसके बावजूद कर्ज में दबे गरीब और मध्यम किसान अपनी जमीन को बेचकर कर्जमुक्त नहीं हो पाते और बर्बाद होकर कंगाल बन रहे हैं। उनके लिए खेती घाटे का सौदा बन गयी है। उनकी जमीनें हथियाकर धनी किसान तथा गाँव के दूसरे धनाढ्य वर्ग और अधिक मालामाल होते जा रहे हैं क्योंकि इनके लिए इनका व्यवसाय घाटे का सौदा नहीं बल्कि मुनाफे का धन्धा बना हुआ है। शहरों में सरकारी और निजी नौकरी करने गये देहात के उच्च शिक्षित नौजवान मालामाल होकर जब घर लौटते हैं, उनमें से कुछ जमीनें खरीद लेते हैं और मजदूर लगाकर लाभप्रद खेती करने लगते हैं। इस काम के प्रबन्धन को गाँव में रह गये उनके बुजुर्ग सम्हाल लेते हैं या वे पूरी तरह अपने खेत को बटाई पर ही दे देते हैं। धीरे-धीरे ही सही बटाईदारी आर्थिक पट्टे की खेती में तब्दील होती चली गयी है, लेकिन अभी तक कुछ पिछड़े इलाकों में बटाईदारी जारी है। पूँजीवाद में उल्टी बटाईदारी (रिवर्स टीनेन्सी) भी शुरू हो गयी है जिसमें गरीब और मध्यम किसान जिनके लिए खेती घाटे का सौदा बन गयी है, वे अपना खेत धनी किसान को पट्टे पर उठा देते हैं और खुद मजदूरी करके जिन्दगी बिताते हैं।

कृषि उत्पादन की जातीय संरचना

जातीय विभाजन भारतीय समाज की बुनियादी विशेषता है। कृषि उत्पादन भी जातीय संरचना से मुक्त नहीं है। हालाँकि जातीय संरचना पहले से कमजोर हुई है और सवर्ण और पिछड़ी जातियों के लोग आर्थिक रूप से विपन्न हुए हैं, लेकिन आज भी जमीनों पर सवर्ण और पिछड़ी जातियों के ऊपरी हिस्से का मालिकाना है। दलित जातियों और पिछड़ी जातियों के निचले हिस्से के पास बहुत कम जमीन है। खेत मजदूरों का बड़ा हिस्सा इन्हीं जातियों से आता है। इसी तरह पशुपालन में भी जातीय संरचना लगभग साफ दिखायी देती है। मछली, सूअर, मुर्गी, बकरी, गाय और भैंस पालन का काम अलग-अलग जातियों के लोग करते हैं। यानी पशुओं के उत्पादन में भी जातीय संरचना और छुआछूत बना हुआ है। इन विभाजनों को झेलने के अलावा ये जातियाँ कृषि उत्पादन के कुल अधिशेष के बहुत छोटे हिस्से पर अपना नियन्त्रण कर पाती हैं। इसी के चलते ये वंचना भरी जिन्दगी जीती हैं। इन जातियों के कुछ लोग अपनी मेहनत और आरक्षण का लाभ पाकर सम्पन्न हुए हैं, लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है।

भारत के आदिवासी समुदाय जमीन और उत्पादन के अन्य साधनों से वंचित हैं और जंगलों पर आश्रित हैं। इनमें से कई समुदाय विकास की अंधी दौड़ की भेंट चढ़ चुके हैं और रोजी-रोटी के लिए दर-दर भटक रहे हैं। ये राज्य प्रायोजित हिंसा के सबसे अधिक शिकार हुए हैं।

पूँजीवादी कृषि की कुछ अन्य बुनियादी विशेषताएँ

वर्गीय विभाजन में परिवर्तन के अलावा पूँजीवादी कृषि की एक और बुनियादी विशेषता है-- किसानों की बेदखली। इग्लैण्ड में किसानों की बेदखली और पूँजीवाद के विकास की प्रक्रिया समानान्तर चली। दोनों प्रक्रियाएँ एक दूसरे की सहयोगी रही। बाड़ाबन्दी आन्दोलन ने किसानों को उजाड़कर उद्योग में काम करने वाले मजदूर (क्लासिकल अर्थ में सर्वहारा) में बदल दिया यानी किसानों का सर्वहाराकरण हुआ। यूरोप और अमरीका में खेती जब पूँजीवाद के अधीन हुई, तब खेती से बाहर होनेवाली अतिरिक्त आबादी कुछ उद्योग और सेवा क्षेत्र में लग गयी और कुछ नये कब्जाये उपनिवेशों में बस गयी। लेकिन आज पिछड़े देशों के पास ये दोनों ही विकल्प अनुपलब्ध हैं। इन देशों के उजड़े हुए गरीब और मध्यम किसान किसी उद्योग में मजदूर की तरह काम नहीं पा रहे हैं क्योंकि उद्योग खुद बेरोजगार मजदूरों की भारी भीड़ की स्थिति में है, जिसका फायदा उठाकर वहाँ कार्यरत मजदूरों के काम के घण्टे बढ़ाये जा रहे हैं और उनकी मजदूरी कम की जा रही है। यानी शोषण को तेज किया जा रहा है। दूसरी ओर, उजड़े हुए गरीब और मध्यम किसानों का सर्वहाराकरण नहीं, बल्कि कंगालीकरण हो रहा है। वे श्रम की आरक्षित सेना में शामिल हो रहे हैं, असंगठित क्षेत्र के मजदूर बन रहे हैं, भिखमंगे बन रहे हैं या निराश-हताश हो आत्महत्या कर रहे हैं। मौजूदा पूँजीवादी उद्योग उन्हें खपाने की स्थिति में नहीं हैं।

पूँजीवादी कृषि की यह भी बुनियादी विशेषता है कि उद्योग की तुलना में खेती पिछड़ती जाती है। अगर कच्चे माल की अबाध आपूर्ति जारी रहे तो उद्योग में माल उत्पादन की गति को कई गुना तक बढ़ाया जा सकता है। लेकिन कृषि के साथ ऐसा नहीं है क्योंकि कृषि योग्य जमीन को एक सीमा से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता, चाहे भूमि सुधार की कैसी भी तकनीक क्यों न इस्तेमाल कर लें, क्योंकि पृथ्वी का आकार सीमित है, उसे खींचकर

नहीं बढ़ाया जा सकता। इसके साथ ही खेती के मैकेनाइजेशन की भी एक सीमा होती है और फसल के जीवन चक्र को एक सीमा से छोटा नहीं किया जा सकता। खेती के पिछड़ेपन के बावजूद यह सच है कि कृषि कार्य को बन्द करना नामुमकिन है क्योंकि यह इनसान के लिए भोजन उपलब्ध कराने का प्रमुख जरिया है। इसलिए खेती को जारी रखने के लिए उद्योग की तुलना में अतिरिक्त अनुदान की जरूरत पड़ती है अन्यथा कृषि संकटग्रस्त हो जाती है। लेकिन नवउदारवाद की हमलावर नीतियों के लागू होने के बाद कृषि के सरकारी बजट में कटौती की गयी और उसे निजी पूँजी के मगरमच्छों के जबड़े में धकेल दिया गया।

यह बात विवादों से परे है कि आधुनिक खेती पूँजी के बिना असम्भव है। यह आज एक अशिक्षित किसान भी इसे अच्छी तरह समझता है। लागत की लगभग सभी चीजें बाजार से खरीदी जाती हैं, जिसमें पूँजी की जरूरत पड़ती है। जहाँ एक ओर धनी किसान के पास अपनी अतिरिक्त पूँजी होती है, (धनी किसान का महल जैसा घर भी अय्यासी के साधन से अधिक फसलों के लिए भण्डारगृह का काम करता है यानी वह भी एक तरह की स्थिर पूँजी ही है।) या वे बैंक और वित्तीय संस्थाओं से सस्ता कर्ज पा लेते हैं, वहीं दूसरी ओर, मध्यम और गरीब किसान पूँजी की कमी से लगातार जूझते रहते हैं। फसलों के उचित मूल्य न मिलने से उनकी यह समस्या और बढ़ जाती है, जो उन्हें निजी सूदखोरों के शिकंजे में फँसने के लिए मजबूर कर देती है। इसी का फायदा उठाकर छोटे सूदखोर और वित्तीय संस्थाएँ अनेकों तरीकों से किसानों को निचोड़ती हैं। साम्राज्यवादी पूँजी के अधीन आने से कृषि क्षेत्र का तेजी से वित्तीयकरण और सट्टेबाजी शुरू होती है, जिसका अर्थ है-- खाद्य पदार्थों के व्यापार को शेयर बाजार के हवाले कर देना और इस पर वित्तीय कम्पनियों के नियन्त्रण को स्थापित करना। इससे दुनिया की पूरी आबादी के लिए बहुत बड़ा जोखिम पैदा हो गया है।

खेती को टिकाऊ बनाये रखने और विकसित करने के लिए जमीन की उत्पादकता बढ़ाना अनिवार्य है, इसके लिए भूमि में नमी संरक्षण, कार्बन की मात्रा बढ़ाना, वायुक्षरण से बचाव, अनावश्यक घासफूस का विनाश, फसल विविधिकरण और फसल चक्र आदि उपाय अपनाये जाते हैं। जबकि पूँजीवादी खेती के अधीन भूमि के अन्धाधुन्ध और अतार्किक दोहन तथा पर्यावरण के विनाश के चलते उसकी उर्वरकता नष्ट हो रही है, जिसकी पूरी तरह भरपाई इन उपायों से नहीं की जा सकती है। इसलिए पूँजीवादी खेती को टिकाऊ बनाया ही नहीं जा सकता। साम्राज्यवादी पूँजी खेती से अति-मुनाफा निचोड़कर उसे तबाही की ओर धकेल देती है क्योंकि मिट्टी की उर्वरता को बनाये रखने के बजाय खेत से अधिक से अधिक पैदावार लेने पर जोर रहता है। इसके लिए बहुत ज्यादा सिंचाई, उर्वरक, कीटनाशक, उन्नत कृषि यन्त्रों आदि के अधिकतम इस्तेमाल की सनक सवार रहती है। एक फसली खेती को बढ़ावा दिया जाता है, जबकि मिट्टी की उर्वरता को बनाये रखने के लिए इस्तेमाल होने वाले उपाय जैसे-- फसल चक्र (क्रॉप रोटेशन), मिश्रित फसल और बहुफसली खेती तथा खेत की मिट्टी के हिसाब से फसलों का चुनाव गौण बने रहते हैं। खेती की पैदावार को उपभोग के लिए लगातार शहरों में भेजा जाता है, लेकिन फलों, सब्जियों और अनाज के अवशेष जिनमें कार्बन की अधिक मात्रा होती है, उसे वापस खेतों को नहीं लौटाया जाता। इससे जमीन में कार्बन की मात्रा गिरती जाती है और भूमि की उर्वरता घटती जाती है। इसकी क्षतिपूर्ति के लिए किसान अन्धाधुन्ध रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल करते हैं, जिससे जल और जमीन और अधिक जहरीले हो जाते हैं। जमीन बंजर होती चली जाती है।

पूँजीवाद के अधीन कृषि विविधिकरण पर एकांगी जोर

कृषि विविधिकरण में फसल पैटर्न में बदलाव जैसे-- सब्जियों, फलों, फूलों, कन्द फसलों, और सजावटी या औषधीय पौधों की खेती (बागवानी) और मुर्गीपालन, पशुपालन, मत्स्य पालन जैसी अन्य सम्बद्ध गतिविधियाँ आती हैं। इसे अतिरिक्त आय अर्जित करने और गरीबी दूर करने के उपाय के रूप में प्रचारित किया जाता है, लेकिन वास्तव में यह क्षेत्र भी पूँजीवाद की माँग-आपूर्ति के अन्तरविरोधों से मुक्त नहीं होता और शुरू में कुछ समय तक तेजी बनी रहती है, लेकिन एक दौर के बाद संकटग्रस्त अवस्था आ जाती है। मौजूदा समय में कृषि का विविधिकरण किसानों की जरूरत के मुताबिक नहीं हो रहा है, बल्कि यह बाजार की माँग से संचालित होता है। अब पारम्परिक कृषि के विविध फसलों की पैदावार की जगह बाजार की माँग पर टिकी अत्यधिक गतिशील खेती ने ले लिया है, जिसमें उत्पादन दर को तेज करना ही प्राथमिकता होती है। कृषि विविधिकरण पर तकनीकी परिवर्तन, माँग, और सरकारी नीतियों का प्रभाव तो पड़ता ही है, इसके अलावा परिवहन, सिंचाई और अन्य इन्फ्रास्ट्रक्चर का विकास भी इसे प्रभावित करता है। जैसे-- खीरा, टमाटर या स्ट्राबेरी की खेती करनेवाले किसानों को बाजार नहीं मिला तो वे बर्बाद हो गये।

पशुपालन भी कृषि की एक शाखा ही है, जिसके तहत चारे की खेती, पशु-प्रजनन, और गाय, भैस, भेड़, बकरी, कुत्ता और घोड़े जैसे पशुओं की देखभाल की जाती है। भारत में, लगभग सात करोड़ छोटे और मध्यम किसान, मजदूर और परिवार की जिम्मेदारी सम्हालने वाली ग्रामीण महिलाएँ पशुपालन पर निर्भर हैं। जलीय कृषि या मत्स्य पालन आजीविका की सहायक मानी जाती है। मत्स्य पालन का भारत के कुल सकल घरेलू उत्पाद में योगदान

0.8 प्रतिशत है, जबकि बागवानी क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद में 6 प्रतिशत और कृषि उत्पादन में एक तिहाई योगदान देता है।

किसानों को खराब मौसम और कीमतों के उतार-चढ़ाव के जोखिम का सामना करना पड़ता है। ऐसा दावा किया जाता है कि विविधिकरण इन जोखिमों को कम कर सकता है। जैसे-- कुछ फसलें दूसरों की तुलना में अधिक सूखा-प्रतिरोधी होती हैं। इसलिए सुझाव दिये जाते हैं कि मौसम खराब होने पर किसानों की फसल पूरी तरह से बर्बाद न हो, इसलिए उन्हें चाहिए कि वे एक साथ विविध तरह की फसलें उगायें। इससे किसी उत्पाद की कीमत कम होने पर किसान को अधिक नुकसान भी नहीं होगा। लेकिन इन उपायों को सुझाने वाले अकसर यह नहीं समझ पाते कि देश के अधिकांश किसान मध्यम और गरीब श्रेणी में आते हैं, जिनकी जोत का आकार बहुत छोटा होता है, वे एक साथ विविध फसल उगा ही नहीं सकते। अलबत्ता फसल विविधिकरण का फायदा भी धनी किसान और पूँजीवादी फार्मर ही अधिक उठाते हैं। जैसे-- हाइड्रोपोनिक खेती से कई धनी किसान मालामाल हो रहे हैं, लेकिन अधिक खर्चीली होने के चलते शायद ही कोई गरीब किसान उससे लाभ कमा पाये।

अकसर यह तर्क दिया जाता है कि माँस, अण्डे और दूध के लिए होनेवाले पशुपालन से वैश्विक ग्रीनहाउस गैसें उत्सर्जित होती हैं। शाकाहार पर अप्रत्यक्ष तौर पर जोर देनेवाले ऐसे तर्क भ्रामक होते हैं क्योंकि इसमें यह नहीं बताया जाता कि यह सब संकट प्रकृति के उस चक्र के बिगड़ने के चलते हुआ है, जिसे पूँजीवाद ने बढ़ावा दिया है। आज का पशुपालन सदियों पुराने उस पशुपालन से भिन्न है, जब अपने बछड़ों के साथ कुलांचे मारती गायें हरे-भरे जंगलों में चरा करती थीं। वहाँ उनके द्वारा उत्सर्जित कार्बन डाई ऑक्साइड और गोबर-मूत्र पेड़-पौधों के लिए पोषक तत्व का काम करते थे। बदले में पेड़-पौधे पशुओं के लिए हरा चारा और ऑक्सीजन पैदा करते थे। लेकिन आज का पूँजीवादी पशुपालन वनों को काटकर बनाये गये हरियाली विहीन बाड़ों में पशुओं को कैद करके किया जा रहा है, जहाँ पशुओं और पेड़-पौधों के बीच का चक्र टूट चुका है, जो पर्यावरण को बेतहाशा प्रदूषित कर रहा है।

बड़े पैमाने की तुलना में छोटी खेती अलाभकारी होती है

हम देखते हैं कि छोटी जोत के मालिक किसानों की जमीन का रकबा घटता जा रहा है और दस एकड़ से बड़ी जोतवाले किसानों की जमीन का रकबा बढ़ता जा रहा है। इससे साफ पता चलता है कि धनी किसान मालामाल होकर जमीन खरीदने में पूँजी निवेश कर रहे हैं। दूसरी ओर गरीब किसान अपनी जमीन से उजड़ते जा रहे हैं। बड़ी जोत का मशीनीकरण आसान होता है, इसीलिए धनी किसान और पूँजीवादी फार्मर देहातों में आधुनिक तकनीकी के वाहक बन गये हैं। इस काम में पूँजी की आसान उपलब्धता उनकी मदद कर रही है, जिन पर वित्तीय पूँजी की नजरे-इनायत है।

बड़ी जोत वाले किसान न केवल तकनीकी श्रेष्ठता का लाभ उठाते हैं, जिससे श्रम अधिक उत्पादनशील हो जाता है बल्कि बड़े किसान को पूँजी या कर्ज की उपलब्धता भी आसान होती है। छोटी जोत के किसान परिवार हाड़-तोड़ मेहनत के बावजूद पिछड़ते जाते हैं, जबकि बड़ी जोत के किसान मालामाल होते जाते हैं। इसलिए जब खेती को बाजार के हवाले कर दिया गया हो और छोटी जोत के किसान अपनी फसल बाजार में बेचकर अपनी जरूरत के हर सामान बाजार से महँगे दामों पर खरीदने को मजबूर कर दिये जाते हैं, तो ऐसे में उनका उजड़ना लगभग तय हो जाता है। कृषि के विविधिकरण जैसे छोटी जोत में फल और सब्जियों की खेती से उजड़ने की दर को कम तो किया जा सकता है, लेकिन रोकना नामुमकिन है क्योंकि फल और सब्जी का लाभप्रद कारोबार न केवल छोटी जोत के दूसरे किसानों को आकृष्ट करता है, बल्कि इस क्षेत्र में बड़ी पूँजी के मालिक भी कूद पड़ते हैं। वे इस क्षेत्र में भी अपनी श्रेष्ठता कायम कर लेते हैं। नये और अधिक सक्षम प्रतिस्पर्धियों के बढ़ने से या तो फल और सब्जी का बाजार मन्दी का शिकार हो जाता है या छोटी जोत के किसानों को उजाड़कर इस क्षेत्र से बाहर धकेल दिया जाता है।

कई बार छोटी जोत की खेती इतनी अलाभकारी होती है कि खेती की आय को परिवार के प्रति व्यक्ति में बाँट देने पर न्यूनतम मजदूरी भी नहीं निकलती, लेकिन सम्पत्ति के मोहपाश से छोटा किसान तब तक अपना पिण्ड नहीं छुटा पाता, जब तक बाजार उसको बेदखल न कर दे। ऐसी दुखद स्थिति और घाटे के कारोबार को देखकर कई छोटे किसान अपनी जमीन ठेके पर उठा देते हैं और पूरे समय के लिए मजदूर बन जाते हैं। इस तरह एक साथ ही वह लगान पर जीनेवाले और अपनी श्रम शक्ति बेचनेवाले बन जाते हैं, लेकिन इससे भी उनका दुर्भाग्य कम नहीं होता।

खेती-किसानी पर साम्राज्यवादी वर्चस्व

-- विक्रम प्रताप

खेती के आधुनिकीकरण करने के नाम पर फार्म मशीनीकरण, उर्वरकों-कीटनाशकों के बढ़ते उपयोग, सिंचाई तकनीकों में सुधार, जेनेटिक मोडीफाइड बीज, गरीब और मध्यम किसानों की तबाही और ऋण की आसान उपलब्धता जैसी चीजें साम्राज्यवादी ढंग की खेती की शुरुआत की महज भूमिका भर हैं। साम्राज्यवादी पूँजी के आने पर गाँवों-शहरों में वर्ग सम्बन्धों में नये सिरे से बदलाव हो रहे हैं। हर शहर में बीज, खाद, ट्रैक्टर ट्रॉली आदि की दुकानें खुल रही हैं। कॉन्ट्रैक्ट व्यवस्था में जमीन देनेवाले और लेनेवाले दोनों पैदा हो रहे हैं। नये उत्पादन सम्बन्ध बन रहे हैं। इन सभी आवश्यक शर्तों के साथ ही साम्राज्यवादी ढंग की खेती के लिए कानूनी प्रावधान भी जरूरी है, जिससे इसके रास्ते में आनेवाले अवरोधों को प्रभावी तरीके से हटाया जा सके और नयी कृषि प्रणाली में शासन-प्रशासन के सहयोग में कोई कमी-कोताही न हो। इसी का नतीजा है-- मौजूदा तीनों कृषि कानून।

भारत में ऑटोमैटिक रूट से कृषि के विभिन्न क्षेत्रों जैसे-- बीज उत्पादन, फूलों की खेती, बागबानी, मधुमक्खी पालन, पशुपालन, मत्स्यपालन, एक्वाकल्चर (जलीय कृषि) सब्जी और मशरूम की खेती तथा कृषि और उससे जुड़े क्षेत्रों की सेवाओं में सौ प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दे दी गयी है। ऐसा करके वित्तीय पूँजी के अधीन ठेका खेती के लिए रास्ता साफ कर दिया गया है। कम्पनियाँ अपने मुताबिक मूलभूत ढाँचे का विकास भी कर रही हैं। भारत सरकार ने भी उनके अनुरूप सड़क, रेलवे और जल परिवहन का विकास शुरू कर दिया है। भण्डारण के लिए विशालकाय गोदाम बनाये जा रहे हैं। देशी पूँजी इन सभी कामों में साम्राज्यवादियों की संश्रयकारी है।

पिछड़े देशों में पर्यावरण बेहद प्रदूषित हो गया है। पानी, हवा और मिट्टी के जरिये जहरीले प्रदूषण से फसलें जहरीली हो रही हैं, जिससे यहाँ पैदा हुई फसलों की माँग विकसित देशों में बहुत कम है। इस समस्या को सुलझाने के लिए पानी और मिट्टी का उपचार करना होगा। जाहिर है कि मौजूदा परिस्थिति में इस उपचार को साम्राज्यवादी पूँजी ही अंजाम देगी।

साम्राज्यवादी पूँजी के लिए भारत एक बड़ा आकर्षक बाजार है और यह खेती से पैदा होने वाले कच्चे माल का स्रोत भी है। 2020 में भारतीय कृषि बाजार 20,33,600 करोड़ रुपये के मूल्य पर पहुँच गया। विश्व बाजार में भारत कई ताजे फल और सब्जियों, प्रमुख मसालों, जूट जैसे चुनिन्दा रेशेदार फसलों, बाजरा और अरण्डी के बीज आदि का प्रतिनिधित्व करता है। भारत गेहूँ और चावल का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है, जो दुनिया की प्रमुख खाद्य फसल है। 80 प्रतिशत से अधिक कृषि वस्तुओं के उत्पादन में दुनिया भर में भारत पाँचवें स्थान पर है। भारत में जैव-विविधता का भण्डार है। यह सब साम्राज्यवादियों को लुभाने के लिए काफी है।

चौथी पीढ़ी की औद्योगिक क्रान्ति

मिशेल पिम्बर्ट और कॉलिन एण्डरसन ने द कनवरजेशन डॉट कॉम पर एक लेख *'द बैटल फॉर फ्यूचर ऑफ फार्मिंग : व्हाट यू नीड टू नो'* लिखा। (मिशेल पिम्बर्ट : प्रोफेसर और निदेशक, सेण्टर फॉर एग्रोइकोलॉजी, वाटर एण्ड रेसिलिएंस, कोवेंट्री विश्वविद्यालय। कॉलिन एण्डरसन : सीनियर रिसर्च फेलो, कोवेंट्री विश्वविद्यालय) इसमें वे चौथी पीढ़ी की औद्योगिक क्रान्ति की बात करते हैं, जिसे आगे बढ़ाने के लिए साम्राज्यवादी देश जी-जान से शोध करवा रहे हैं। विश्व आर्थिक मंच (डब्ल्यूईएफ) ने जनवरी 2018 की अपनी रिपोर्ट *'इनोवेशन विद पर्पज : द रोल ऑफ टेक्नालजी इनोवेशन इन असेलरेटिंग फूड सिस्टम ट्रांसफोरमेशन'* में चौथी पीढ़ी की औद्योगिक क्रान्ति के बारे में सविस्तार बताया है और उसके महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है।

इन दस्तावेजों से पता चलता है कि पिछली हरित क्रान्ति की तरह ही इस बार भी कृषि में मौजूदा तकनीकी उन्नति को शक्तिशाली कृषि दिग्गज कम्पनियाँ बढ़ावा दे रही हैं। जो भी तकनीकी नवाचार किया जा रहा है, वह मुट्ठीभर निगमों के हाथों में केन्द्रित है और उनकी राजनीतिक और आर्थिक शक्ति को और अधिक मजबूत करनेवाला है। ये मुट्ठीभर निगम पेटेंट कानून के जरिये सबसे उन्नत "12 ट्रांसफॉर्मिंग टेक्नोलॉजीज" पर अपना एकाधिकार रखते हैं। इन तकनीकों के जरिये खेती के जैव-संसार को 'तकनीकी उपकरणों' से प्रतिस्थापित कर दिया जायेगा। जैसे-- जीवित मधुमक्खियों के बजाय नन्हें-नन्हें फ्लाइंग रोबोट फसलों के परागण प्रक्रिया में भाग लेंगे। किसानों की भुजाओं की जगह स्वचालित मशीनें मिट्टी की तैयारी, बीज बोने, निराई करने, उर्वरक डालने, कीट नियंत्रण और फसलों की कटाई का काम

करेंगी। इससे किसानों की इतने विशाल स्तर पर तबाही होगी, जिसे पहले न तो कभी देखा गया और न कभी सुना गया।

स्पष्ट बात है कि ये उन्नत तकनीक (हाई-टेक इनोवेशन्स) मौलिक रूप से पुरानी पूँजीवादी कृषि तकनीकों से भिन्न हैं और उसका उन्नत रूप हैं। आज ये नयी तकनीक दुनिया भर की खेती में तेजी से पैर पसारती जा रही है, जो ऐसी कृषि प्रणाली को जन्म देनेवाली है जिसमें श्रम की कम से कम जरूरत पड़े, यानी भारी संख्या में इनसान कृषि उत्पादन से बाहर फेंक दिये जायें। इस नयी कृषि प्रणाली में भी पूँजीवादी शोषण और संचय का तर्क काम करता है, लेकिन यह साम्राज्यवादी विश्व व्यवस्था को अत्यधिक अस्थिर करनेवाला साबित होगा और उसे अन्त की ओर ले जायेगा। इतने बड़े जोखिम के बावजूद इसे आगे बढ़ाया जा रहा है, जो इसकी मरणासन्न स्थिति की ओर ही इशारा करता है।

जहाँ एक ओर इस नयी वैश्विक कृषि प्रणाली के बारे में दावा किया जा रहा है कि यह स्वचालित, गैर-स्थानीयकृत और डिजिटल तकनीकों के संयोजन से पैदा होने वाली अब तक की सबसे उन्नत कृषि प्रणाली है, वहीं दूसरी ओर उत्पादन के नियन्त्रण और खाद्य पदार्थों के व्यावसायीकरण पर ध्यान दें तो यह प्रणाली जिन मुट्ठीभर निगमों के हाथों में केन्द्रित होंगी, वे और कोई नहीं 'वित्तीय' पूँजी के दम पर अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण करनेवाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हैं। यही वे कम्पनियाँ हैं जो कृषि व्यवसाय के बड़े हिस्से पर अपना दबदबा कायम रखती हैं। दुनिया की शीर्षस्थ दस कम्पनियों में चार अमरीकी कम्पनियाँ हैं, 2018 में जिनकी कुल आय 303.41 अरब डॉलर यानी दस कम्पनियों की कुल आय का 70.13 प्रतिशत थी। यह बात स्पष्ट है कि कृषि व्यवसाय के मामले में भी अमरीका के निगम ही अग्रणी हैं।

साम्राज्यवादी ढंग की खेती

साम्राज्यवाद ने अपने मातृ देश में अकेले और पिछड़े देश में वहाँ के पूँजीवाद के साथ मिलकर कृषि की एक-फसली संस्कृति को बढ़ावा दिया, इससे जहाँ एक ओर ऊँचा मुनाफा पैदा हुआ, वहीं दूसरी ओर, खास तौर से पिछड़े देशों में पर्यावरण संकट भी बढ़ता गया और खेतिहर समुदाय की बड़ी आबादी को बाजार के हवाले करके भूखा मरने के लिए छोड़ दिया गया। पिछड़े देश में साम्राज्यवादी पूँजी ने न केवल विपणन और प्रोसेसिंग के तौर-तरीकों में बदलाव ला दिया है, बल्कि उसने उत्पादन के पैटर्न सहित उसकी प्रणाली को भी बदल दिया है। उसने पिछड़े उद्योग की तरह ही पिछड़ी सामन्ती खेती को भी अपने नियन्त्रण में लेकर निचोड़ने में कभी कोई कोताही नहीं बरती और उसके पूँजीवादी विकास को बाधित किया। लेकिन अगर पिछड़े देश की खेती पूँजीवाद के अधीन आ गयी है, तो उसका भी फायदा उठाने से वह नहीं चूका। आज वह पिछड़े देशों की पूँजीवादी कृषि पर अपना वर्चस्व कायम करता जा रहा है।

इस हिसाब से देखें तो नवउदारवादी नीतियाँ लागू होने के बाद भारत की कृषि के पैटर्न में भी बदलाव आने शुरू हो गये। भारत में धनी किसानों ने मशीनीकृत खेती शुरू कर दी। ग्रीन हाउस खेती, हाइड्रोपोनिक्स, फूलों की खेती, सफेद मूसली, रबर, जैट्रोपा की खेती और वृक्षारोपण इसके कुछ उदाहरण हैं। कृषि व्यवस्था को अमरीका और यूरोपीय जरूरतों के हिसाब से ढाला गया। लेकिन इसके बावजूद भारतीय कृषि का एक बड़ा हिस्सा साम्राज्यवादी पूँजी के दबाव से मुक्त रहा, जबकि विश्व व्यापार संगठन (ड्ब्ल्यूटीओ) के माध्यम से लगातार साम्राज्यवादी पूँजी के हित में इस क्षेत्र को खोलने के लिए दबाव डाला जाता रहा। जून 2020 में भारतीय संसद द्वारा पारित तीनों कृषि कानून ड्ब्ल्यूटीओ के उसी दबाव के नतीजे हैं और ये भारतीय कृषि को पूरी तरह साम्राज्यवादी पूँजी के अधीन कर देनेवाले हैं।

खेती की विविधता, जटिलता और इलाकाई विशेषता तथा असमान विकास के चलते इसके बारे में किसी आम नतीजे तक पहुँचना बहुत कठिन होता है। उन सामान्य नियमों को खोज निकालना, प्रभावी प्रवृत्तियों को चिन्हित करना और कृषि के बारे में पूँजीवादी सरकारों की नीतियों का विश्लेषण करना अपने आप में जटिलता लिये हुए होता है। हर पहलू से फसल उत्पादन की अपनी विशेषता होती है, जिसे कई मानदण्ड संचालित करते हैं। उदाहरण के लिए दलहन फसलों को ही ले लें। सभी दलहन फसलों की तरह चने के लिए भी नाइट्रोजन उर्वरक की जरूरत नहीं पड़ती और कम उपजाऊ भूमि में भी उसकी अच्छी फसल होती है, लेकिन एक ओर जहाँ अरहर को लगातार पानी की जरूरत होती है, हालाँकि उसकी जड़ों में पानी रुकना नहीं चाहिए, वहीं दूसरी ओर चने की फसल में कम पानी की आवश्यकता होती है, जबकि मटर को लगातार सिंचाई चाहिए। उड़द की फली जब पक रही हो, तो बिलकुल बारिश नहीं होनी चाहिए, नहीं तो फली के सड़ने का खतरा होता है। बारिश होने पर किसान उड़द की फली तोड़कर घर में सुखा लेते हैं, जो एक श्रमसाध्य काम है। पूँजी ने जिस कुशतला से उद्योग को संगठित कर लिया, खेती की इन्हीं विशिष्टताओं के चलते उसे संगठित करने में सफल नहीं हो पायी। लेकिन 21 वीं सदी में साम्राज्यवादी देशों की कृषि तकनीकों के विकास के बाद स्थिति पलट गयी है। वह अब विशिष्टता के बावजूद कृषि को संगठित करने में पहले से अधिक सक्षम है।

धनी किसान पहले से ही यहाँ कॉफी, चाय, गन्ना, आदि नकदी फसलें उगा रहे हैं। गन्ने की खेती के लिए बेतहासा भूजल का दोहन होता रहा है, इसके चलते गन्ना उत्पादन का पूरा इलाका बंजर होने के करीब पहुँच चुका है। कृषि के इस मॉडल को बदलना जरूरी है, लेकिन साम्राज्यवादी लुटेरे पर्यावरण और जनता की जरूरतों के हिसाब से बदलाव नहीं करते। वे अतिशय पूँजी संचय के संकट का सामना कर रहे हैं। पिछड़े देशों में पूँजी निवेश के जरिये वे अपने

निवेश के संकट को हल करना चाहते हैं। इसके लिए ही वे काम कर रहे हैं। इसलिए आज पिछड़े देशों की कृषि में जो परिवर्तन हो रहा है, वह साम्राज्यवादी पूँजी के दबाव में और उन्हीं स्वार्थों के चलते हो रहा है और संकट को यह और ज्यादा बढ़ानेवाला है।

2016 में मारियानो तुरजी की एक पुस्तक आयी थी जिसका शीर्षक है *'द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ एग्रीकल्चरल बूम्स : मैनेजिंग सोयाबीन प्रोडक्शन इन अर्जेंटीना, ब्राजील और पैराग्वे'।* इस पुस्तक में खेती से जुड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनी कारगिल के कारोबार के बारे में जानकारी दी गयी है। यह पुस्तक ब्राजील, अर्जेंटीना और पराग्वे में सोयाबीन उत्पादन की राजनीतिक अर्थव्यवस्था का एक गहन विश्लेषण करती है। इन इलाकों के कृषि उत्पादन पर दैत्याकार कॉर्पोरेट कम्पनियों का नियन्त्रण है। कॉर्पोरेट ने सोयाबीन उत्पादन की पैदावार में जबरदस्त उछाल के लिए जैव प्रौद्योगिकी और नयी कृषि-तकनीकों का आक्रामक इस्तेमाल किया। इससे कृषि क्षेत्र में शासक वर्ग के विभिन्न धड़ों के साथ कॉर्पोरेट की ताकत में बड़ी वृद्धि हुई। आज लातिन अमरीका के ये देश अपनी जनता की जरूरतों से संचालित नहीं हैं, बल्कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हितों को आगे बढ़ाने में लगे हुए हैं। इस पुस्तक में कृषि उत्पादन के नये 'साम्राज्यवादी मॉडल' की विवेचना की गयी है जो पिछड़े देशों की सरकारों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का वर्चस्व कायम करता है।

लातिन अमरीका में बहुराष्ट्रीय बीजारोपण कम्पनियों का जनता के साथ खुला टकराव हुआ। पैराग्वे की संस्थाओं की खराब हालत और सरकारों की अकर्मण्यता ने उसे कॉर्पोरेट पर निर्भर बना दिया। संस्थागत रूप से कमजोर पैराग्वे अपना स्वदेशी बीज भी विकसित नहीं कर सका और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आर्थिक उपनिवेश बन गया।

कृषि के अन्दरूनी खतरों और बाजार मूल्य अस्थिरता से बचने के लिए, क्रेता और विक्रेता को सिक्योरिटीज, कमोडिटीज और फ्यूचर्स एक्सचेंज जैसे वित्तीय उपकरणों के जाल में उलझाया गया। इन उपकरणों के जरिये मौखिक और लिखित करार के तहत लेन-देन की कीमतों को तय किया जाता है, माल आपूर्ति के समय और शर्तों को निर्धारित करके क्रेता और विक्रेता के सम्बन्ध की कानूनी गारन्टी भी दी जाती है। यह सब वित्तीय और सट्टेबाजी से जुड़ी कम्पनियाँ करती हैं। लेकिन वे उन्हीं व्यवसायों में हाथ डालती हैं, जिनमें मुनाफे की गारन्टी हो। जब किसानों के उत्पाद की गारन्टी के लिए सरकारें आगे नहीं आतीं, तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ मनमाने तरीके से दाम उठा-गिराकर किसानों को लूटती हैं।

प्रोफेसर नरसिंह दयाल अपनी पुस्तक *'जीन टेक्नोलॉजी और हमारी खेती'* में लिखते हैं, "बायोटेक खेती मौजूदा समय की नवीनतम कृषि प्रणाली है। जीन टेक्नोलॉजी के द्वारा किसी भी जीन को किसी भी अन्य जीव के जीनोम में डालकर उसका मनचाहा अनुवांशिक रूपान्तर किया जा सकता है। इसमें लैंगिक प्रजनन विधि की जरूरत नहीं पड़ती। उदाहरण के लिए आर्कटिक मछली के शीतप्रतिरोधी जीन को टमाटर या स्ट्राबेरी में शीत प्रतिरोधिता के लिए और मिट्टी में पाये जानेवाले जीवाणु, बैसिलस थुरीजिएँसिस के बीटी जीन को कीट प्रतिरोधिता के लिए किसी भी पौध प्रजाति के जीनोम में स्थानान्तरित किया जा सकता है। ऐसा करने से पराया जीन भी मेजबान पौधे में विशिष्ट प्रोटीन बनाने में सक्षम हो जाता है। विकसित देशों की दैत्याकार कृषि बायोटेक कम्पनियों के जीनियागरों ने जीन इंजीनियरी द्वारा सैकड़ों फसलों की जीएम किस्में बना डाली हैं।..."

जब बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने "बायोटेक क्रान्ति" सम्पन्न कर ली तो उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि वे दुनिया की खेती पर अपना नियन्त्रण कायम कर सकती हैं। इसके लिए उन्होंने कृषि उत्पादन का एक नया मॉडल विकसित किया जो पूँजी और तकनीक केन्द्रित है, श्रम केन्द्रित नहीं। इसका अर्थ है कि वे मजदूरों की छँटनी करके उनकी जगह मशीनों से उत्पादन कराती हैं। बौद्धिक सम्पदा अधिकार के तहत वे अपने बायोटेक से जुड़े शोध से पैदा ज्ञान का संरक्षण करती हैं। बायोटेक क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने तकनीकी हस्तान्तरण को नियंत्रित कर रखा है और अपने अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए सरकारों के साथ लॉबिंग करती हैं। इससे आगे बढ़ते हुए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने पिछड़े देशों के कृषि प्रौद्योगिकी के सार्वजनिक शोध संस्थानों को अपने नियन्त्रण में लेकर आनुवंशिक बीजों के विकास में इस्तेमाल करना शुरू कर दिया।

निरबंसी बीजों के विकास से पहले कई ऐसे कानून बनाने पड़ते थे, जिससे किसान कम्पनियों के बीजों का एक बार ही इस्तेमाल कर सकें। लेकिन बायो टेक्नोलॉजी आने पर अब कानून की जरूरत नहीं रह गयी। इसके लिए निरबंसी बीज ही काफी हैं। जीन टेक्नोलॉजी के चलते बीजों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का नियंत्रण हो चुका है। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि साम्राज्यवाद के लिए केवल बीज पर एकाधिकार का सवाल ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, जिसे उसने अपने पेटेंट कानून और जैव-प्रौद्योगिकी के जरिये काफी हद तक हल कर लिया है। उसके लिए तीसरी दुनिया की खेती को अपने अधीन कैसे किया जाये, यह सवाल वहाँ की जनता से टकराये बिना हल होने वाला नहीं है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ चाहती हैं कि न केवल (1) खेती की लागत के कारोबार और (2) प्रसंस्करण तथा वितरण कारोबार पर बल्कि (3) सम्पूर्ण खेती-किसानी पर ही उनका एकाधिकार हो।

एक सामान्य अध्ययन के अनुसार खेती के अधिशेष में से लगभग 10 प्रतिशत हिस्सा ही किसानों को मिलता है। बड़ा हिस्सा लागत कम्पनियाँ और प्रसंस्करण कम्पनियाँ डकार ले जाती हैं। किसानों की जमीन पर कब्जा किये बिना ही वे ऐसा कर पा रही हैं, लेकिन आगे सम्भव है कि वे किसानों से जमीन हथियाकर या

उसे ठेके पर लेकर खुद खेती करवायें। छोटे और मध्यम किसानों की स्थिति क्या होगी? छोटे आकार की खेती बड़ी मशीनों के लिए बाधा है। इसलिए सम्भव है कि भविष्य में छोटे और मध्यम किसानों को उजाड़कर बड़ी कम्पनियाँ विशाल स्तर के फॉर्म बनायें। वैसे भी छोटी पूँजी और बड़ी पूँजी में अन्तरविरोध होता ही है और राज्य का संरक्षण न मिले तो छोटी पूँजी का डूबना तय होता है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अधीन साम्राज्यवादी ढंग की खेती मूलतः वित्तीय पूँजी से संचालित किसान मालिकाने वाली खेती से भिन्न होगी, हालाँकि दूसरे मामले में मालिकाना भी गरीब और मध्यम किसानों के लिए एक भ्रम जैसा ही होता है और असली फायदा कम्पनियाँ ही उठाती हैं। साम्राज्यवादी खेती न केवल तकनीकी दृष्टि से श्रेष्ठ होगी, बल्कि इस खेती में किसान को वित्तीय पूँजी का कारिन्दा बना दिया जायेगा। अलग-अलग आर्थिक हैसियत वाले किसान इसमें अलग-अलग भूमिका निभायेंगे। मध्यम और गरीब किसान उजड़कर तबाह होंगे। उजड़े हुए किसानों में से बहुत थोड़े लोग बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मजदूर बन जायेंगे। इन परिवारों के शिक्षित नौजवान कम्पनी के छोटे-मोटे एजेन्ट का काम करेंगे। धनी किसान और सूदखोर गाँव में साम्राज्यवाद के सामाजिक आधार होंगे। उनके घरों के शिक्षित नौजवान कम्पनी में मैनेजर, डीलर और बड़े एजेन्ट की भूमिका निभायेंगे।

ठेका खेती साम्राज्यवादी ढंग की खेती का शुरुआती चरण है, आगे चलकर कम्पनियाँ उद्योग की तर्ज पर खेती का संचालन करेंगी, संयुक्त राज्य अमरीका की खेती इसका एक नमूना है। 1870 में अमरीका की कुल आबादी का 50 प्रतिशत हिस्सा कृषि पर निर्भर था, लेकिन आज यह 2 प्रतिशत से भी कम हो गया है। 2017 के बाद संस्थागत निवेशकों ने बड़ी मात्रा में खेती के लिए जमीनों की खरीद की है और अब सम्पत्ति के छोटे मालिकों के हाथों से जमीन निकलकर इनके हाथों में केन्द्रित होती जा रही है। अमरीका के पूँजीवादी फॉर्मर लोन फराहम जब अपने खेतों के निरीक्षण के लिए निकलते हैं तो उन्हें कम से कम 50 किलोमीटर क्षेत्र में फैले अपने खेत के ऊपर हेलीकॉप्टर से उड़ान भरनी पड़ती है। 1980 से जारी भयावह कृषि मन्दी के बावजूद लोन फराहम का कृषि व्यवसाय लगातार विकास के कीर्तिमान स्थापित करता चला गया, जबकि इसी दौरान छोटे किसान तबाह होते गये। आज अमरीका के कृषि की हालत यह है कि मात्र 4 प्रतिशत खेत, जिनमें से हर खेत साढ़े सात करोड़ रुपये से अधिक की सालाना बिक्री करते हैं, वे अमरीका के कुल कृषि के दो-तिहाई हिस्से का उत्पादन करते हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका और लातिन अमरीका की साम्राज्यवादी खेती को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि आने वाले समय में भारत में कृषि उत्पादन की प्राथमिकताएँ भी बदल जायेंगी। खाद्य प्रसंस्करण कम्पनियों के लिए कच्चे माल का उत्पादन खेती की पहली प्राथमिकता होगी। ये कम्पनियाँ बाकी उद्योग से इस मामले में भिन्न होती हैं कि इनमें इस्तेमाल होनेवाला कच्चा माल प्रकृति से सीधे प्राप्त नहीं होता, जिसका भण्डार सीमित है। खेती से पैदा होने के चलते इसका स्रोत लगभग असीमित है। हाइडोपोनिक, एक्वाकल्चर, वर्टिकल फॉर्मिंग आदि खेती की उन्नत तकनीकों से सीमित भूमि की समस्या को भी हल करने की कोशिश चल रही है और इसमें सफलता मिलती दीख रही है।

खेती के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को ऐसे इलाकों की तलाश होती है, जो खेती के लिए उत्पादक जमीन के साथ ही साल भर अच्छा मौसम उपलब्ध कराये यानी भरपूर बारिश, फसलों के लिए अनुकूल धूप, नमीं और ताप की उपलब्धता साल भर बनी रहे। उस इलाके में साफ जल से सिंचाई की सुविधा हो और विशाल समतल मैदान हो, जिस पर बड़े कृषि यन्त्रों से आधुनिक खेती की जा सके। गंगा-यमुना का दोआबा ऐसा ही एक बेहतरीन इलाका है, जिस पर साम्राज्यवादियों की गिद्ध दृष्टि लगी हुई है। जमीन की ऊँची कीमत भी उन्हें जमीन हथियाने से नहीं रोक पायेगी। किसानों के कर्ज न लौटा पाने की स्थिति में और सरकारों से मिलीभगत करके ये किसानों से जमीन छीन लेंगी।

इन तमाम तथ्यों से यह साफ जाहिर है कि तीन कृषि कानून बनाकर सरकार ने देश के किसानों को दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगे असहाय छोड़ देने की पूर्वपीठिका तैयार कर दी है। इन कम्पनियों के पास बेहद उन्नत तकनीकी साधन हैं, जिससे वे साम्राज्यवादी ढंग की खेती करवायेंगी, जो अब तक की पूँजीवादी खेती के मॉडल से भिन्न है। उनका न केवल कृषि उत्पादन पर कब्जा होगा, बल्कि वे लागत, वितरण और प्रोसेसिंग पर भी अपना एकाधिकार कायम कर लेंगी। खेती का यह मॉडल न केवल गाँव के कमजोर वर्गों को तबाह कर देगा, बल्कि शहर के गरीब उपभोक्ता भी बरबाद हो जायेंगे। इसके साथ ही यह पर्यावरण को और गहरे संकट की ओर धकेल देगा। इन ताकतवर कम्पनियों से किसान अलग-अलग नहीं निपट सकते। इसलिए किसानों को इनसे अपनी एकजुट ताकत के साथ टकराना पड़ेगा और इस रास्ते में आनेवाली सभी बाधाओं को दूर करना होगा।

अकेले-अकेले अपने साधनों से खेती करना आज सम्भव नहीं। इसका एक रास्ता सरकारी, सामुदायिक या सामूहिक खेती है, जिसे समाजवादी देशों में अपनाया जाता है जिसके केन्द्र में मनुष्य और मानव श्रम होता है। दूसरा रास्ता साम्राज्यवादी पूँजी के मातहत किया जा रहा यह बदलाव है जो पूँजी और मुनाफे की नृशंस लूट पर आधारित है। पहला रास्ता न्याय, समता और बहुजन हिताय का रास्ता है। यह दीर्घकालिक संघर्ष और आमूल परिवर्तन की माँग करता है। मानवता इसी रास्ते पर चलकर सुखी, सुन्दर और शोषण मुक्त होगी।

किसान आन्दोलन के आह्वान पर मिट्टी सत्याग्रह यात्रा

किसान आन्दोलन ने जनता के विभिन्न तबकों की चेतना उन्नत करने और आन्दोलन में उनकी भागीदारी बढ़ाने के लिए नए-नए सृजनशील तौर तरीके विकसित किये हैं। संघर्ष के उन्हीं रूपों में एक है-- मिट्टी सत्याग्रह यात्रा, जो नमक कानून के विरोध में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी द्वारा निकाली गयी दाण्डी यात्रा से प्रेरित है।

तीन कृषि कानूनों के खिलाफ किसान आन्दोलन के समर्थन में देश भर में यह यात्रा निकाली गयी, जिसके माध्यम से इन किसान विरोधी कानूनों को रद्द करने, सभी कृषि उत्पादों की एमएसपी पर सरकारी खरीद की गारंटी, बिजली संशोधन बिल की वापसी जैसे मुद्दों पर लोगों में जागरूकता पैदा की गयी। 12 मार्च को देश के विभिन्न राज्यों से शुरू हुई यह यात्रा 5 और 6 अप्रैल को दिल्ली की सीमाओं पर किसानों के धरना स्थल पर पहुँची। दिल्ली के सभी बॉर्डर पर जहाँ किसानों का आन्दोलन चार महीने से भी ज्यादा समय से चल रहा है, शहीदों की याद में शहीद स्मारक बनाया जा रहा है।

संयुक्त किसान मोर्चा के अनुसार इस यात्रा के दौरान देश भर से 23 राज्यों से 1500 गाँवों से घड़े में मिट्टी भरकर किसान संगठनों के साथी दिल्ली ले आये। यात्रा में लाये गये इन घड़ों में प्रमुख रूप से शहीद भगत सिंह के गाँव खटखट कलाँ, शहीद सुखदेव के गाँव नौघरा जिला लुधियाना, उधमसिंह के गाँव सुनाम जिला संगरूर, शहीद चन्द्रशेखर आजाद की जन्म स्थली भाभरा, झाबुआ, की मिट्टी शामिल है। इसके अलावा असम के शिवसागर, पश्चिम बंगाल के सिंगूर और नन्दीग्राम, कर्नाटक के वसव कल्याण और बेलारी, अहमदाबाद के साबरमती आश्रम, बारदोली के ऐतिहासिक किसान आन्दोलन की धरती, दल्ली राजहरा के शहीद शंकर गुहा नियोगी सहित 12 शहीदों के स्मारक स्थल की मिट्टी, छत्तीसगढ़, बस्तर के भूमकाल आन्दोलन के नेता शहीद गुण्डाधुर ग्राम नेतानार, धमतरी जिला के नहर सत्याग्रह की धरती कण्डेल की मिट्टी, मुलताई की मिट्टी जहाँ 24 किसानों की गोली लगने से शहादत हुई, मन्दसौर में 6 किसानों के शहादत स्थल की मिट्टी भी लायी गयी। इस यात्रा में महाराष्ट्र के 150 गाँव, राजस्थान के 200 गाँव, आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाना के 150 गाँव, गुजरात के 800 गाँव, उत्तर प्रदेश के 75 गाँव, बिहार के 30 गाँव, हरियाणा के 60 गाँव, पंजाब के 78 गाँव से मिट्टी आयी।

शहीदों की याद में मिट्टी यात्रा का एक और कार्यक्रम 23 मार्च को भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव के शहादत दिवस पर भी आयोजित किया गया। मीलों की यात्रा करके पंजाब के नौजवानों का जत्था दिल्ली के सिंघु बोर्डर पर संयुक्त किसान मोर्चा के मंच पर पहुँचा। वे अपने साथ आठ ऐतिहासिक स्थानों की मिट्टी घड़े में भर कर लाये थे। किसानों की जिन्दगी में मिट्टी की अहमियत हमेशा ही सबसे ज्यादा रही है, जिसे शहीद दिवस के इस आयोजन के माध्यम से एक नया अर्थ प्रदान किया गया। यात्रा में शामिल युवा किसान कार्यकर्ताओं का कहना था कि जुल्म के खिलाफ लड़ते हुए कुर्बान होनेवाले शहीदों के गाँवों की मिट्टी हमें शोषण-उत्पीड़न करनेवालों से संघर्ष की प्रेरणा और साहस देती है। यह विचार सुदूर गाँवों के किसान कार्यकर्ताओं के मन में आया, जिन्होंने इसे व्यवहारिक रूप दिया।

भगत सिंह, सुखदेव थापर और शिवराम हरि राजगुरु की तस्वीरें मंच पर लगायी गयी थीं, जहाँ मिट्टी से भरे घड़े रखे जा रहे थे।

इन महान स्वतंत्रता सेनानियों को जब 23 मार्च, 1931 को लाहौर की केंद्रीय जेल में अंग्रेजों द्वारा फाँसी पर लटका दिया गया था, तब उन सब की उम्र 20 से 30 साल के बीच थी। उनके शवों को चुपके से अंधेरी रात में हुसैनीवाला गाँव लाकर अंग्रेज सरकार द्वारा आग की लपटों के हवाले कर दिया गया था। 1968 में, पंजाब के फिरोजपुर जिले में सतलुज नदी के किनारे पर हुसैनीवाला राष्ट्रीय शहीद स्मारक बनाया गया था। यही वह जगह है जहाँ उनके क्रान्तिकारी सहयोगी बटुकेश्वर दत्त का भी अन्तिम संस्कार किया गया था और भगत सिंह की माँ विद्यावती का भी। सिंघू मंच पर लाये गये पहले घड़े में वहीं की मिट्टी थी।

जिस समय भगत सिंह को फाँसी दी गयी थी, उनकी जेब में एक अन्य वीर स्वतंत्रता सेनानी करतार सिंह सराभा की तस्वीर थी, जो एक पत्रकार और गदर पार्टी के प्रमुख सदस्य थे,

जिन्हें 1915 में 19 साल की उम्र में अंग्रेजों ने फाँसी दी थी। उन्हीं के जन्म स्थल, पंजाब के लुधियाना जिले के सराभा गाँव से मिट्टी का दूसरा घड़ा आया था।

भगत सिंह 12 साल की उम्र में, अमृतसर के जलियाँवाला बाग गये थे जहाँ ब्रिटिश सेना के ब्रिगेडियर जनरल रेजिनाल्ड डायर के आदेश पर 13 अप्रैल, 1919 को 1,000 से अधिक निहत्थे लोगों का नरसंहार किया गया था। भगत सिंह ने जलियाँवाला से खून से सनी मिट्टी अपने गाँव ले गये। उन्होंने अपने दादाजी के बगीचे में वह मिट्टी डाली और उस पर फूल उगाया था। तीसरा घड़ा जो सिंघू बोर्डर पर आया, वह इसी बाग का था।

मिट्टी का चौथा घड़ा संगरूर जिले के सुनाम से आया जो शहीद उधम सिंह का गाँव है-- जिन्होंने 13 मार्च, 1940 को लन्दन में माइकल फ्रांसिस ओ डायर की हत्या की थी और ब्रिटिश अदालत में मुकदमे के दौरान अपना नाम बदलकर मोहम्मद सिंह आजाद कर लिया था। ओ डायर ने पंजाब के उपराज्यपाल के रूप में, जलियाँवाला में डायर की कार्रवाई का समर्थन किया था। 31 जुलाई, 1940 को लन्दन के पेंटोनविले जेल में उनको फाँसी दी गयी थी। 1974 में, उनके अवशेषों को भारत लाया गया और उनके पैत्रिक गाँव सुनाम में अन्तिम संस्कार किया गया।

पाँचवा घड़ा फतेहगढ़ साहिब से आया, जहाँ 26 दिसम्बर, 1704 को गुरु गोबिन्द सिंह के छोटे बेटे, पाँच वर्षीय बाबा फतेह सिंह और सात वर्षीय बाबा जोरावर सिंह को सरहिन्द के मुगल गवर्नर वजीर खान के आदेश पर जिन्दा दीवार में चिन दिया गया था।

छठे घड़े की मिट्टी गुरुद्वारा कत्लगढ़ साहिब से लायी गयी, जो पंजाब के रूपनगर जिले के चामकौर शहर में स्थित है। यहाँ गुरु गोबिन्द सिंह के दो बड़े बेटे-- 17 वर्षीय अजीत सिंह और 14 वर्षीय जुझार सिंह मुगलों के खिलाफ लड़ाई में शहीद हुए थे।

सातवाँ घड़ा पंजाब के रूपनगर जिले के आनन्दपुर साहिब का था जहाँ खालसा पंथ की स्थापना हुई थी। खालसा का अर्थ है श्शुद्धश जो 1699 में गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा स्थापित सिख धर्म के भीतर एक विशेष पंथ है, जिनके योद्धाओं का कर्तव्य अत्याचार और उत्पीड़न से निर्दोष लोगों की रक्षा करना था।

आठ घड़ों की उस कतार का अन्तिम घड़ा पंजाब के शहीद भगत सिंह नगर जिले में बंगा शहर के बाहर भगत सिंह के पैतृक गाँव खटकर कलाँ से लाया गया था। यात्रा में शामिल भगत सिंह के भतीजे अभय सिंह ने कहा कि भगत सिंह का लक्ष्य एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का और एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण समाप्त होने तक क्रान्ति को जारी रखना था। दिल्ली के बॉडर पर चल रहा किसानों का आन्दोलन इसी विचार को आगे बढ़ा रहा है।

यात्रा में शामिल किसान कार्यकर्ताओं का कहना था कि यह सरकार इन कृषि कानूनों को केवल बड़े निगमों द्वारा हमारी जमीन और रोजी-रोजगार पर कब्जा जमाने का रास्ता साफ करने के लिए ला रही है। जो लोग केंद्र के फरमान को नहीं मानते हैं, उन्हें यह सरकार सलाखों के पीछे भेज देती है। हम केवल तीन कृषि कानूनों के खिलाफ ही नहीं, बल्कि निगमों के खिलाफ भी लड़ रहे हैं। हमने अतीत में अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी है। उनके सहयोगियों के साथ भी हम लड़ेंगे।

युवा किसान कार्यकर्ताओं का मानना है कि क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी जो एक दमनकारी और क्रूर शासन था। बात यह नहीं है कि अंग्रेज यहाँ से चले गये, समस्या यह है कि अत्याचारी शासन आज तक कायम है। भगत सिंह और उनके क्रान्तिकारी साथियों का मानना था कि उनकी लड़ाई सिर्फ गोरे अंग्रेजों के खिलाफ ही नहीं, बल्कि उनके सहयोगी काले अंग्रेजों के भी खिलाफ है। इसलिए आज उन स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदान से समृद्ध मिट्टी को अपने लिए प्रेरक मानते हुए अपने संवैधानिक अधिकारों की हिफाजत करना और उनके सपनों को पूरा करने की लड़ाई जारी रखना एक अनिवार्य राजनीतिक कर्तव्य बन गया।

किसान आन्दोलन की ऐतिहासिक विशिष्टता यही है कि इसने संघर्ष के नये-नये तरीकों को जन भावना के साथ समन्वित किया है। दुनिया के इतिहास में आज तक महिला दिवस के आयोजन में इतनी भारी तादाद में महिलाओं की भागीदारी पहले कभी नहीं हुई, जितनी दिल्ली टिकरी बोर्डर पर सम्पन्न कार्यक्रम में हुई। शहीदों की विरासत को आगे बढ़ने के लिए आयोजित मिट्टी सत्याग्रह यात्रा भी इसी सृजनशीलता का एक और उदहारण है। इसके साथ ही इस आन्दोलन ने सामुदायिक और सामूहिक संस्कृति का अनुपम उदहारण प्रस्तुत किया है। मौजूदा नवउदारवादी दौर में चरम व्यक्तिवाद, खुदगर्जी, गलाकाट प्रतियोगिता जैसी जिन पाशविक प्रवृतियों को बढ़ावा दिया गया है, उनके जवाब में किसानों ने आपसी सहयोग, भाईचारा और निःस्वार्थ सेवा का मिसाल कायम किया है।

किसान आन्दोलन : समसामयिक परिदृश्य

(समय इस तरह का आ गया है)

-- सुरजीत पातर

पद्मश्री सम्मान वापिस करते समय मन में कई तरह की उधेड़बुन होती है। सम्मान प्राप्त करते समय के पूर्व-दृश्य मन में चलते हैं। मन में दुख और रोष होता है। जिसे सम्मान वापिस कर रहे होते हैं उसे हम अपने दुख और रोष का एहसास करवा रहे होते हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर याद आ रहे हैं जिन्होंने जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के बाद ब्रिटिश सरकार को 'सर' का खिताब वापिस करते समय इस सम्बन्ध में तत्कालीन वॉयसराय को चिट्ठी लिखी थी--

समय इस तरह का आ गया है
कि सम्मान के तमगे हमारे अपमान के साथ मेल
नहीं खा रहे
यह हमारी तौहीन को
बल्कि और अधिक उजागर कर रहे हैं।
तो मेरी स्वयं के लिए मेरी यह इच्छा है कि
मैं इन सब खास-उल-खास खिताबों से मुक्त होकर
अपने उन देशवासियों के साथ खड़ा हो जाऊँ
जो अपने तथाकथित मामूलीपन के कारण
इस तरह के अनादर सह रहे हैं
मानो वो इनसान ही न हों

टैगोर के रोष की इस आवाज के साथ सारा राष्ट्र ही नहीं बल्कि सारी दुनिया जुड़ गयी थी। टैगोर, पंजाबियों को टैगोर होने के कारण भी अच्छा लगता है, पर पंजाब के साथ उसके प्रेम, जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद अपना खिताब वापिस करने, बन्दा सिह बहादुर, गुरु गोविन्द सिंह और भाई तारु सिंह के बारे में खूबसूरत कविताएँ लिखने के कारण, गुरु नानक साहिब की आरती का बंगला में अनुवाद करने के कारण और भी अच्छे लगते हैं। जसवन्त दीद की एक दस्तावेजी फिल्म में टैगोर के लिए कुछ पंक्तियाँ इस तरह से हैं--

कुल शायरी के जहान का
तू है मान हिन्दुस्तान का
तू सपूत धरा बंगाल का
लाख दीप गीतों के बालता
तूने सुने जो नानक के सुखन
बन थाल जगमगाया था गगन
उसकी दिन-रात की आरती
कुल कायनात की आरती
तुझे मोह लिया पंजाब ने
इसके शबद ने इसके राग ने
पर रुलाइयाँ मिल गयी थीं राग में
जब जलियाँवाले बाग में
तेरा दिल कुछ ऐसा तड़प गया
तूने खिताब हाकिम को लौटा दिया
क्या करूं मैं तेरे खिताब को
आयी आँच जब मेरे पंजाब को
आज तक धरा पंजाब की
तुझे देती आशीष प्यार की
तू सपूत धरा बंगाल का
मेरे अपने बेटों के साथ का
मेरा राग विराग तू जानता
मुझे माँ कह कर तू पहचानता

पद्मश्री सम्मान वापिस करते समय मुझे प्यारे टैगोर याद आये थे। उस याद से मुझे प्रेरणा मिली थी।

सिर से वारता हूँ

कॉरपोरेट घराने इस समय सब कुछ हड़पने के लिए बेताब हैं। सारा कारोबार, सारी दौलत, सारी शक्तियाँ, सारे प्राकृतिक संसाधन। यहाँ तक कि बहुत सारी सरकारों को भी इन्होंने अपना जरखरीद गुलाम बना लिया है। अब ये गाँवों को हड़पने के लिए चल पड़े हैं। इस ललचाये दैत्य की लार खेतों में गिर रही है। बड़ी-बड़ी मशीनें मनुष्य को रौंदकर बढ़ने के लिए तैयार हैं। इसीलिए सारा पंजाब किसान आन्दोलन के सरोकारों की सार्थकता को नमस्कार कर रहा है।

दूसरी बात यह है कि जिस समझदारी हूँ, धीरज और

सहनशीलता के साथ यह आन्दोलन चलाया जा रहा है, उसने हमारी आत्माओं को तरो-ताजा कर दिया है। हमें यह एहसास हुआ कि पंजाब मरा नहीं, जिन्दा है, इसके मन में पुरखों की याद जिन्दा है, इसका सिदक जिन्दा है। हमारे लोगों की एकता शक्ति, खुशमिजाजी और चढ़ रही कला को प्रणाम है।

मैं मैं तू तू करते थे
हम आज 'हम' हैं हुए
इस 'हम' को सम्भाल के रखना
हम मुश्किल से 'हम' हैं हुए
वही 'हम' मुकद्दस होता
जो सच के संग खड़ा होता
दुखों में भी मेले लगते
जब दुख-सुख साझे होते

पंजाबी इस आन्दोलन के सुघड़ नेताओं के भी शुक्रगुजार हैं। वे महसूस करते हैं कि इन नेताओं की दूरदृष्टि, नम्रता, सहृदयता, तथा लोगों के प्रति अपनत्व भरे व्यवहार के कारण हमने एक जीत तो हासिल कर ही ली है। वह है, दिल्ली के लोगों का प्यार। हमारे नेताओं ने उनसे माफी भी माँगी है कि हम अपने इतने बड़े जमावड़े से आपको तकलीफ दे रहे हैं। लोगों ने झाड़ू पकड़ कर सड़कें भी साफ कर दी और अब खाली पड़ी जमीन संवार कर उसमें सब्जियाँ भी बो रहे हैं और कह रहे हैं कि हम अगर जीत कर वापस चले गये तो ये सब्जियाँ यहीं के लोग खायेंगे और हमें याद करेंगे और यदि हमें अधिक देर ठहरना पड़ा तो हम उनके साथ मिलकर खायेंगे। इस सोच से ज़्यादा सुन्दर कविता क्या हो सकती है? इस वाक्य में भविष्य के आन्दोलनों के लिए भी संकेत हैं। इस तरह के सृजनात्मक रोष की मिसाल शायद ही कहीं मिले।

इस आन्दोलन में हमारे बेटे-बेटियाँ भी पूरी शिद्दत से शामिल हैं। दुखों में भी एक मेला लग गया। मैंने एक वीडियो देखी जिसमें दिल्ली की एक प्यारी सी बेटी एक पंजाबन को कह रही थी 'यदि आप यहाँ से चले गये तो हम उदास हो जायेंगे।' यह वाक्य सुनकर मेरी आँखें नम हो गयीं।

हम सभी के मन में इस आन्दोलन की शान्तिपूर्ण, सहनशील शूरवीरता पर बलिहारी जाने की भावना भी शामिल है। इस आन्दोलन के सरोकार तो निस्सन्देह लोगों के प्यार की हामी भरते ही हैं, अपने सर्जनात्मक अन्दाज के कारण भी यह आन्दोलन दुनिया के लिए मिसाल बन गया है। हम सभी जानते हैं कि इस आन्दोलन की जीत के साथ हमारी सारी समस्याएँ हल नहीं हो जायेंगी। हमें अपने मूल्यों के अपने व्यवहार और अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के पक्ष से भी बहुत कुछ बदलना होगा। यह आन्दोलन हमारे मन में पंजाब की पुर्नसर्जना की उम्मीद, धीरज और पुरुषार्थ जगाता है।

सम्मान वापस करना कुछ ऐसा है--
इन सुन्दर बेटों के सर ऊपर से
और इन प्यारी बेटियों के सर ऊपर से
महामेले में आये
सभी लोगों के सिर ऊपर से
सिर्फ सिरवारना किया है

इन उमंग वाली बहनों के सिर ऊपर से
और अपने बांके भाइयों के सिर ऊपर से
इन धरती जैसी माँओं के सिर ऊपर से
और पेड़ों के समान बुजुर्गों के सिर ऊपर से
उन सम्मानीय नेताओं के सिर ऊपर से
सिर्फ सिरवारना किया
जिनके धैर्य, सच, सयानप, हलीमी,
हौसले और दूरदृष्टि ने
सजा दिया है इस मेले को इतनी दूर तक
कि इसका एक सिरा गौरवमय इतिहास से मिलता
और दूसरा हमारी सन्तानों के भविष्य की उम्मीद से मिलता

और तीसरा और चौथा
इस मेले को दया और विनय की
नजाकत भरी जीवन-पद्धति के आगोश में
इस तरह सम्भाला है
कि इस मेले को कोई दाग ना लगे
इस मेले पर कोई दोष न आये
इस मेले का नाम मैला न हो।

यह मेला है करोड़ों शब्द जैसे होते किसी एक
नज़्म में शामिल।
इस मेले का हुस्न जमाल देख के
... ...
दुआ की है
कि हों तुम्हारी
सभी बलाएँ दूर
गरीबी और निराशा दूर
अन्याय वाली बांट भी काफूर
तेरी जात-पात टले
तुम्हारा श्रम-कर्म फले
तुम्हारा भेदभाव जले
तुम्हारा तन और मन दुरुस्त

मन नीचा और मति ऊँची...

नानक नाम चढ़दी कला
तेरे भाने सरबत दा भला
फतह का मार्ग
हमें फतह हासिल करनी है।

हमारी जीत का मार्ग ननकाना साहिब के अत्याचारी महन्त नारायणदास से मुक्त करवाने वाली ऊँची मति में से निकलेगा जिसके कहर से हिन्दुस्तान और पूरी दुनिया त्राहि-त्राहि कर उठी थी। पर हमारे सब्र, सन्तोष और शान्तिपूर्ण सहनशीलता ने दुनिया को हैरान कर दिया था। लोग यह तो जानते थे कि यह योद्धाओं की कौम है, हथियारों की जंग में इनका कोई सानी नहीं, पर उस दिन उन्होंने यह देखा कि शान्ति, सहनशीलता, शूरवीरता में शायद ही दुनिया में कोई इनसे मुकाबला कर सके।

20 फरवरी 2021 उस अनूठी फतह की प्रथम शताब्दी का पर्व है।

गुरु के बाग की फतह की प्रथम शताब्दी का पर्व अगस्त 2022 में है।

30 अक्टूबर 2022 पंजा साहब में गाड़ी रोकने के बलिदान-दिवस की प्रथम शताब्दी का पर्व भी है।

1 अप्रैल 2020 सर्व-धर्म सम्मान के रक्षक हिन्द की चादर गुरु तेग बहादुर जी के पावन प्रकाश पर्व की चौथी शताब्दी का पर्व भी है।

यह कैसा संयोग है कि यह चारों पर्व हमारे बहुत करीब हैं।

हम बहुत भाग्यशाली हैं कि इन सब की स्मृति से शूरवीरता, सहनशीलता और पूर्ण कुर्बानी की रोशनी आ रही है।

मशहूर ईसाई मिशनरी सी एफ एण्ड्रयूज ने गुरु का बाग के मोर्चे का आँखों देखा वर्णन किया था। उसने मैनचेस्टर गार्डियन में 15 से 24 फरवरी, 1924 में लिखा--

वे हाथ जोड़कर पाठ करते जा रहे थे। ब्रिटिश तथा हिन्दुस्तानी सिपाही उन पर धातु की मूठोंवाली लाठियाँ चला रहे थे। वे गश खाकर गिर पड़ते, फिर उठ बैठते। उन्हें देखा तो मुझे ईसा मसीह की सलीब याद हो आयी।

हमें इन पावन पर्वों की शान्ति, सहनशीलता और शूरवीरता की रोशनी में नया अध्याय रचना है जिससे भविष्य में होने वाले विश्व के आन्दोलन रोशनी, प्रेरणा और हौसला लिया करेंगे। यह हमारी उम्मीद भी है और प्रार्थना भी।

एक बावला काव्यात्मक ख्याल।

कल सुबह मुझे सपने जैसा काव्यात्मक खयाल आया कि देश के प्रधानमंत्री इस अद्वितीय लोक लहर को सम्बोधित कर रहे हैं। उन्होंने भी एक अद्वितीय जैसा वाक्य कहा--

'प्यारे देशवासियों, आप जानते ही हो, मैं आज तक कभी कहीं नहीं झुका। पर आज इन धरतीपुत्रों के सामने झुकता हूँ। इनके दुख के सामने झुकता हूँ। इनके धैर्य के सामने झुकता हूँ। तीनों कानून हम वापस लेते हैं और इन धरतीपुत्रों की सलाह के साथ नये कानून बनाने का अहद करता हूँ।

जय जवान, जय किसान...
नारों से सारा देश गूँज उठा

प्रधानमंत्री के इन वाक्यों के साथ मेहनतकश किसानों की फतह हुई, लोगों की विजय हुई, देश के प्यार की विजय हुई और प्रधानमंत्री की भी विजय हुई।

मैंने यह बात अपने एक दोस्त को सुनायी तो वह कहने लगा, 'कवि के बावले खयाल और राजनीतिज्ञों के सयानेपन में ख्वाहिशों और हैसियत जितना, दिन और रात जितना फासला होता है।' इस सपने के बारे में बात करते हुए चार्ली चैपलिन की फिल्म *द ग्रेट डिक्टेटर* की याद आ रही है।

(किसान आन्दोलन के समर्थन में पद्मश्री वापिस करने के बाद पंजाबी के वरिष्ठ कवि सुरजीत पातर ने पंजाबी ट्रिब्यून में यह लेख लिखा था। पंजाबी ट्रिब्यून से साभार। अनुवाद -- बलवन्त कौर)

इजराइल के हमले के जवाब में एक बुजुर्ग फिलिस्तीनी ने लिखा था--

"तुम मेरा पानी ले लो, मेरे पेड़ों को जला दो, मेरे घरों को तबाह कर दो, नौकरियाँ छीन लो, माँ की हत्या कर दो, मेरे देश में धमाके करो, हमें भूखा रखो, अपमानित करो लेकिन हमें इन सबके बदले एक रॉकेट दागने के लिए दोषी ठहराओ।"

(वाया नोआम चोम्स्की)

हरियाणा किसान आन्दोलन की समीक्षा

-- उदय चे

ऐतिहासिक किसान आन्दोलन पिछले छह महीने से दिल्ली की सरहदों पर चल रहा है। छह महीने पहले जब आन्दोलन शुरू हुआ था, उस समय 26 नवम्बर को जब किसान दिल्ली की तरफ कूच कर रहे थे, मीडिया ने सवाल पूछा था कि कब तक के लिए आये हो, किसानों ने जवाब दिया था कि छह महीने का राशन साथ लेकर आये हैं।

26 मई को किसान आन्दोलन के छह महीने पूरे हो गये। सयुंक्त किसान मोर्चे ने 26 मई को मुल्क के अवाम से अपने घरों, गाड़ियों, दुकानों, रहेड़ियो पर काले झण्डे दिखा कर तानाशाही सत्ता का विरोध करने की अपील की। अपील का असर हुआ और देश के कई हिस्सों में किसानों ने सरकार को काले झण्डे दिखाकर प्रदर्शन किया। किसान आन्दोलन में उतार-चढ़ाव आने के बावजूद किसान मोर्चों पर किसान मजबूती से पाँव जमाये बैठे हुए हैं। 500 के लगभग किसान आन्दोलनकारियों ने इन छह महीनों में अपनी शहादत दी है। 26 जनवरी को हुई दिल्ली में किसान परेड जिसमें करोड़ो किसान दिल्ली पहुँचे ये अपने आप मे अद्भुत नजारा था।

भारतीय फासीवादी सत्ता ने अलग-अलग तरीकों से किसान आन्दोलन को कुचलने के प्रयास किये लेकिन किसान नेतृत्व जो पंजाब के संगठित किसान संगठनो व मुल्क के वामपंथी किसान संगठनो का सांझा मंच है। उन्होंने सत्ता के सभी हमलों का जवाब मजबूती से व कुशल रणनीति से अब तक दिया है।

सत्ता व कार्पोरेट मीडिया दिन-रात किसान आन्दोलन खत्म होने के दावे करता रहा है, लेकिन इसके विपरीत पंजाब, हिमाचल, हरियाणा, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, तमिलनाडु, बंगाल, कर्नाटका इन सभी राज्यों में किसानों की बड़ी-बड़ी रैलियाँ किसान आन्दोलन को मजबूती देने के लिए हुई। किसान आन्दोलन के प्रचार का असर ही था जिसके कारण भाजपा को बंगाल, केरल, तमिलनाडु में जनता ने सत्ता के नजदीक भी नहीं फटकने दिया।

सत्ता में बैठी भाजपा व उसके सहयोगी पार्टियों के नेताओं के सार्वजनिक व निजी कार्यक्रमों का किसान मोर्चे ने विरोध का आह्वान किया। ये विरोध पंजाब व हरियाणा में ज्यादा व्यापक रहा है। पंजाब में भाजपा विधायक नारंग की पिटाई व हरियाणा में मुख्यमंत्री व उप मुख्यमंत्री व उनके विधायकों का विरोध तीखा रहा है।

सत्ता में बैठे नेताओं का विरोध करना हो या किसान मोर्चे का कोई आह्वान हो, हजारों की तादाद में किसान इकट्ठा हो रहे है। सरकार द्वारा 16 मई के हिसार में मुख्यमंत्री के विरोध प्रदर्शन में किये गये बर्बर लाठीचार्ज व किसान नेताओं पर गम्भीर धाराओं में केस दर्ज करने के बाद से दर्जनों गाँव ने लॉक डाउन का विरोध व पुलिस व प्रशासन को गाँव में न घुसने देने का फरमान जारी किया गया है। 24 मई को हिसार में लाठी-डण्डों के साथ हजारों की तादाद में किसानों का इकठ्ठा होना, सत्ता व प्रशासन को खुली चेतावनी देना, इस किसान आन्दोलन में सत्ता व प्रशासन के खिलाफ उबल रहे लावे को दिखा रहा है।

आन्दोलन इतना मजबूत होने के बावजूद आन्दोलन में ऐसी क्या खामियाँ है जिसको चिन्हित किया जाना चाहिए ताकि उन खामियों का फायदा सत्ता न उठा सके।

जब हम फौरी तौर पर इस आन्दोलन को देखते है तो आन्दोलन मजबूत व जीत की तरफ बढ़ता दिख रहा है। लेकिन जब हम जमीनी हकीकत की जाँच पड़ताल करते है, जातीय सामाजिक बन्धनों के आधार पर समीक्षा करते हैं या मजदूर-किसान के मुद्दों की समीक्षा करते हैं तो आन्दोलन में बहुत ज्यादा खामियाँ हैं जिसका फायदा सत्ता कभी भी उठाकर आन्दोलन को तोड़ सकती है।

किसान आन्दोलन की खामियाँ क्या है?

ये किसान आन्दोलन जो तीन खेती कानूनों के खिलाफ खड़ा हुआ। इन तीन खेती कानूनों से सिर्फ किसान को ही नुकसान होगा ऐसा नहीं हैं। इन खेती कानूनों से किसान, मजदूर, रहेड़ी लगाने वाला, मंडियों में काम करने वाले मजदूर, आढ़ती ये सब कानूनों की चपेट में आने वाले है।

लेकिन आन्दोलन में सिर्फ किसान ही क्यों शामिल है। किसान में भी जाट किसान शामिल है। क्यों इस आन्दोलन में गैर जाट किसान जातियाँ जो बहुमत पिछड़ी व मजदूर जो बहुमत में दलित जातियों से है, शामिल नहीं है। इसकी जमीनी जाँच पड़ताल बहुत जरूरी है।

जाट आरक्षण आन्दोलन

हरियाणा और उत्तर प्रदेश में आरक्षण की माँग को लेकर जाटों द्वारा आन्दोलन किया गया जिसमें सत्ता के जाल में फाँसकर जाट बनाम गैर जाट के बीच जमकर हिंसा हुई थी। हिंसा के पीछे कारण जो भी रहे हो, लेकिन उस आन्दोलन के बाद जाट व गैर जाट जातियों में आपसी नफरत की जो दीवार खड़ी हुई वो अब भी मजबूती से खड़ी है। इस किसान आन्दोलन ने उस नफरत की दीवार को कमजोर जरूर किया है। लेकिन उस दीवार को गिराने के सार्थक प्रयास दोनों तरफ से गम्भीरता से न पहले हुए और न ही इस ऐतिहासिक किसान आन्दोलन में हुए है।

सांगठनिक रणनीति का अभाव

इस आन्दोलन में पूरे हरियाणा में नौजवानों की बहुत बड़ी टीम निकल कर आयी जो काफी हद तक बहुत ईमानदार है। ये टीम आन्दोलन में मेहनत कर रही है। चन्दा इकठ्ठा करने से दिल्ली जाने और वहाँ स्थायी तम्भू लगाये रखने, दूध, सब्जी, लस्सी को किसान आन्दोलन में पहुँचाने, किसान पंचायतो में भीड़ जुटाने में बड़ी भूमिका निभा रही है। लेकिन इस टीम को सांगठनिक ढाँचे में ढालने का कोई प्रयास अब तक किसान नेतृत्व द्वारा नहीं किया गया है।

ऐसा ही महिला किसानों के साथ है। इस किसान आन्दोलन ने महिलाओ को किसान माना ये आन्दोलन की बहुत बड़ी उपलब्धियों में से है। महिलाओं की आन्दोलन में मजबूत भागीदारी रही है। महिलाएँ घर के चूल्हे-चौके, पशुओं व खेत का काम करके हजारों की तादाद में सभी विरोध प्रदर्शनों में शामिल होती है। महिलाओं ने सत्ता विरोधी गीत बनाये व अलग-अलग मंचो पर उन गीतों को गाया गया। लेकिन महिलाओं को भी कोई सांगठनिक मंच अभी तक नहीं मिला है।

महिलाओ को छेड़खानी व योनिक हिंसा से बचाने के लिए भी ये किसान आन्दोलन कोई सार्थक पहल नहीं कर पाया। बंगाल की लड़की के साथ जो अमानवीयता हुई, उसकी मौत के बाद भी किसान नेताओं की चुप्पी व आन्दोलन में शामिल खाप पंचायतों द्वारा आरोपियों के पक्ष में पंचायत करना व इन पंचायतों के खिलाफ किसान मोर्चे की चुप्पी अमानवीयता की हद पार कर रही है। किसान महिला नेताओ व महिला संगठनों की चुप्पी भी इस अमानवीयता में शामिल है।

किसान नेतृत्व की पृष्ठभूमि

हरियाणा में आन्दोलन की अगुवाई करने वाले नीचे से ऊपर तक बहुमत चेहरे जाट आरक्षण आन्दोलन के चेहरे रहे हैं जिसके कारण दूसरी जातियाँ आन्दोलन से दूर हैं। हरियाणा के किसान नेतृत्व होने का दावा करने वाले नेता जो आपको स्टेज पर लच्छेदार भाषण देते हर जगह मिलेंगे, वे न मजदूरों में गये, न किसानों में गये हैं, वे या तो दिल्ली सरहद पर रहते हैं या किसी पंचायत या विरोध प्रदर्शन में ही विशिष्ठ अतिथि की तरह आते हैं।

किसान पंचायतों या किसान मोर्चे के कार्यक्रम कैलेण्डर के कार्यक्रमों में वक्ता जाट ही रहे है। सन्त रविदास जयन्ती हो या फिर डॉ भीम राव अम्बेडकर की जयन्ती या मई मजदूर दिवस हो। वक्ता सब जगह जाट जाति से ही रहे है। गैर जाट जातियों के नेताओं को अब तक कोई विशेष जगह इस आन्दोलन में नहीं दी गयी है।

लाल झण्डे से नफरत

हरियाणा में जमीनी स्तर पर अखिल भारतीय किसान सभा, भारतीय मजदूर किसान यूनियन, किसान संघर्ष समिति, किसान सभा हरियाणा, अखिल भारतीय किसान महासभा, अखिल भारतीय खेत मजदूर यूनियन, मजदूर संघर्ष समिति के अलावा कई वामपंथी छात्र, नौजवान, महिलाओं के संगठन मजबूती से काम कर रहे है। जिनका मजबूत सांगठनिक ढांचा, संविधान, कार्यक्रम, झण्डा है।

इसके विपरीत कोई दूसरा किसान संगठन सांगठनिक तौर पर काम नहीं कर रहा है। भारतीय किसान यूनियन के नाम पर जरूर अलग-अलग गुट व्यक्तिगत नाम पर चल रहे है। लेकिन वे सिर्फ गुट ही हैं उनका सांगठनिक स्वरूप न के बराबर है।

वामपंथी संगठन के लाल झण्डे का विरोध एक खास सामन्ती विचारधारा के कारण किया जा रहा है। लाल झण्डे के संगठन मजदूरों के अलग-अलग हिस्सों में यूनियन बना कर काम करते हैं। फैक्ट्रियों में ट्रेड यूनियनें हैं। क्या लाल झण्डे का विरोध मजदूरों का विरोध नहीं है?

कानूनों पर किसानों की समझ का अभाव

हरियाणा के किसानों को यह तो साफ समझ आ गयी कि इन कानूनों से मोटा-मोटी ये नुकसान होगा। लेकिन किसान नेतृत्व बारीकी से ये समझाने में विफल रहा है कि इन कानूनों से मजदूर व किसान को क्या-क्या नुकसान होगा। 6 महीने के किसान आन्दोलन में साहित्य पर जीरो काम हुआ है। हरियाणा में किसान आन्दोलन पर 100 करोड़ से ज्यादा रुपया खर्च हो चुका है लेकिन साहित्य, पर्चो पर कुछ लाख भी खर्च नहीं किया गया।

हमने हरियाणा के कई गाँव का दौरा किया जहाँ किसान आन्दोलन के समर्थन में धरने चल रहे थे। इन सभी धरनों पर बैठे किसानों से बातचीत की, बातचीत का हिस्सा मजदूर भी रहा आखिर आन्दोलन में मजदूर शामिल क्यों नहीं हो रहे है।

सभी धरनों में शामिल किसानों का यही कहना था कि इन

कानूनों के लागू होने के बाद मजदूर को सरकारी राशन की दुकान पर मिलने वाला राशन व स्कूलों में मिड डे मील मिलना बन्द हो जाएगा।

किसानों ने कहा कि जब उन्होंने इस बारे में मजदूरों से बात की तो, मजदूरों का मानना है कि ये तीनो कानून किसान के खिलाफ है, मजदूर को कुछ नुकसान होने वाला नहीं हैं। मजदूरों को राशन मिलना बन्द नहीं होगा।

मजदूरों का ये भी कहना था कि अगर राशन बन्द होगा तो भी किसानों को हमारी किसलिए चिन्ता हो रही है, क्योंकि राशन वितरण प्रणाली के खिलाफ सबसे ज्यादा किसान ही तो बोलते थे। फ्री का खाने वाले, देश को बर्बाद करने वाले, देश पर बोझ ऐसा मजदूरों को किसान ही तो बोलते थे।

कुछ किसानों का ये भी कहना था कि मजदूरों का बहुमत दलित जातियों से है। उनके जातीय संगठन बने हुए हैं। जब तक उनके संगठन शामिल होने को नहीं बोलेंगे मजदूर शामिल नहीं होंगे।

एक गाँव में तो जब किसान मजदूरों से आन्दोलन में शामिल होने की अपील करने गये तो मजदूरों ने किसानों को साफ-साफ बोल दिया कि ये लड़ाई जमीन बचाने की है तो हम क्यों लड़े, हमारे पास कौनसी जमीन है। अगर हमको लड़ाई में शामिल करना है तो जमीन हमको भी दो।

पंचायत की खेती भूमि, दुकानों का जब ठेका उठता है तो उसमें 33 प्रतिशत दलित के लिए आरक्षित है लेकिन कहीं भी उनको ये नहीं मिला है बस उनके नाम का कागज जरूर लग जाता है।

क्या किसान ये माँग करेंगे कि उनका हिस्सा उनको मिले।

इस ऐतिहासिक किसान आन्दोलन में मजदूर 1 प्रतिशत से ज्यादा शामिल नहीं हो सका है। किसान भी इस आन्दोलन में जातीय आधार पर बँटा हुआ है। बहुमत जाट जाति से सम्बन्ध रखने वाला किसान आन्दोलन के साथ मजबूती से खड़ा है तो इसके विपरीत गैर जाट जातियों से सम्बन्ध रखने वाला किसान हालाँकि आन्दोलन के खिलाफ नहीं खड़ा है, लेकिन वह पक्ष में भी नहीं खड़ा है।

किसान आन्दोलन के लिए जब चन्दा किया गया तो गाँव के मजदूरों ने भी चन्दा दिया। लेकिन चन्दे की कमेटी में मजदूर को शामिल नहीं किया गया। मजदूरों ने चन्दा तो जरूर दिया है लेकिन उनके अन्दर सवाल ये भी उठ रहा है कि कल को जब मजदूर अपने हक के लिए आन्दोलन करेगा तो क्या किसान उस आन्दोलन में चन्दा देगा?

किसान आन्दोलन की सबसे बड़ी भूल या गलती कहें, उसको लगता है की मजदूर किसान के झण्डे के नीचे आकर आन्दोलन करे। जबकि अगर ईमानदारी से मजदूर को इस आन्दोलन में शामिल करना है तो मजदूर अपने संगठन, झण्डे और मजदूर की माँगों के साथ आन्दोलन में समानान्तर खड़ा होगा न कि किसान का पिछलग्गू बनेगा।

क्या आन्दोलन में शामिल किसानों को यह मंजूर है?

किसान स्वामीनाथन आयोग की रिपोर्ट लागू करने की माँग सरकार से करते हैं। लेकिन स्वामीनाथन आयोग की उन्हीं सिफारिशों को लागू करने की माँग की जाती है जो किसान के फायदे की होती हैं। जैसे ही भूमिहीन खेतिहर को 1 एकड़ जमीन देने की माँग आती है तो किसान पीछे हट जाता है। अगर मजदूर आन्दोलन में शामिल होगा, तो उसकी ये माँगे आन्दोलन में रहेगी। जो किसानों के गले नहीं उतर रही है।

इसलिए सार्थक प्रयास न होने के कारण मजदूर इस आन्दोलन से दूर है। वैसे किसान नेतृत्व चाहता भी नहीं है की मजदूर आन्दोलन में शामिल हो। अगर ईमानदारी से वह चाहता तो वो मजदूरों की बस्तियों में जाता, उनसे बात करता, उनकी माँगों को उठाने की बात करता, लेकिन ऐसा नहीं किया गया।

मजदूरों में व्याप्त भ्रम

यह आन्दोलन मजदूर आन्दोलन होना चाहिए था। इन तीनों कानूनों से सबसे बड़ी मार गाँव में रहने वाले खेत मजदूर पर पड़ने वाली है। कानून लागू होते ही सबसे पहले खेत में मिलने वाली मजदूरी पर संकट गहरायेगा। उसके बाद महिला मजदूर जो किसान के खेत से फ्री में पशुओं के लिए चारा लेकर आती है वह बन्द हो जाएगा। चारा बन्द होते ही मजदूर का पशुपालन चौपट होना लाजमी है।

कानून लागू होने के बाद फूड कार्पोरेशन ऑफ इंडिया को सबसे पहले खत्म किया जाएगा। फूड कार्पोरेशन ऑफ इंडिया खत्म होते ही सरकार सरकारी राशन की दुकान को बन्द करेगी। राशनकार्ड धारकों को सरकार राशन देने की जगह नगद पैसे देगी। सरकार इस स्कीम को भी गैस सिलेण्डर की ऑनलाइन सब्सिडी की तरह लागू करेगी। लाभ पाने वाला परिवार पहले अपने पैसे से राशन खरीदेगा उसके बाद उसके बैंक खाते में पैसे सरकार डालेगी। किसको कितना पैसा वापिस आएगा या कब धीरे-धीरे सब्सिडी खत्म कर दी जाएगी गैस सिलेण्डर की तरह, आम आदमी समझ भी नहीं पायेगा। जब तक समझेगा तब तक बहुत देर हो चुकी होगी।

कुछ मजदूरों को ये भी भ्रम बना हुआ है कि कॉन्ट्रैक्ट खेती के बाद भी उनको मजदूरी मिलती रहेगी। लेकिन ये भी उनका

कोरा भ्रम ही है। जब बड़े-बड़े खेत बन जायेंगे, इन खेतों का मालिक ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए आधुनिक व बड़ी मशीन खेती में इस्तेमाल करेगा। बड़ी मशीन आने से 80 प्रतिशत तक मजदूरी खत्म हो जाएगी। 20 प्रतिशत मजदूरी करवाने के लिए भी खेत मालिक सस्ती मजदूरी की तलाश में बाहरी राज्यों से मजदूर को लाकर खेत मे काम देगा।

सरकारी मण्डी में जहाँ हजारों मजदूर काम करते हैं वहीं प्राइवेट मण्डी में हजारों मजदूरों की जगह काम सिर्फ कुछेक मजदूर करेंगे।

इसके बाद नम्बर आयेगा उस मजदूर का जो शहर या गाँव में रेहड़ी से फल-सब्जी बेचकर गुजारा करता है। कॉन्ट्रैक्ट खेती के बाद खेत मे पैदा हुई सब्जी व फल कॉन्ट्रैक्ट मालिक पूँजीपति के पास जाएगा। पूँजीपति जिसकी अपने शॉपिंग मॉल हैं वह अपने मॉल में फल व सब्जी मनमाने रेट पर बेचेगा। सब्जी मण्डी बन्द होने से रेहड़ी व छोटे दुकानदार भी बर्बाद हो जायेगें।

कानून लागू होने के बाद किसान जिसके पास खेती की जमीन है उसकी कमर एक समय बाद टूटेगी, उससे बहुत पहले मजदूर की कमर ये फासीवादी सत्ता तोड़ चुकी होगी।

इसलिए ये तीन कानून जिनको किसान विरोधी बोला गया है, असल में मजदूर विरोधी, उसको उजाड़ने वाले, उसकी रोटी छीनने वाले, उसको बेरोजगारी की तरफ धकेल कर भूखा मरने पर मजबूर करने वाले साबित होंगे।

आन्दोलन के छह महीने पूर्ण होने पर हरियाणा के किसान आन्दोलन को अपनी खामियों को दूर करने के लिए अभियान चलाना चाहिये। आन्दोलन को संगठित कैसे किया जाये? मजदूरों व महिलाओं को आन्दोलन में कैसे शामिल किया जाये व उनकी सुरक्षा को कैसे मजबूत किया जाये? लाल झण्डे के विरोध की बजाय फासीवादी सत्ता के विरोध की तरफ ध्यान केन्द्रित किया जाये। मजदूर संगठनों को भी मोर्चे में शामिल किया जाये। जो किसान जातियाँ आन्दोलन में शामिल नहीं है उनसे संवाद स्थापित करना बेहद जरूरी है।

मजदूरों को भी जिनका बहुमत दलित जातियों से है, उनको चार श्रम कानूनों, तीन खेती कानूनों के खिलाफ व भूमिहीन को जमीन मिले, "जो जमीन सरकारी है, वह जमीन हमारी है" इस नारे को धरातल पर लागू करने की जिम्मेदारी मजदूर व किसान दोनों की होनी चाहिए।

मजदूर व महिलाएँ जो सबसे अन्तिम पायदान पर खड़े हैं उनकी माँगों पर ध्यान देना व उनकी माँगों को प्रमुखता से उठाना इस आन्दोलन की जीत की तरफ बढ़ने के लिए जरूरी है।

पेज 38 कर शेष....

पिछले 7 साल में एक भी प्रेस कॉन्फ्रेंस नहीं की है। स्वतंत्र मीडिया संस्थानों पर सरकारी एजेंसियों द्वारा छापे लगवाये जाते हैं और उन पर दबाव बनाया जाता है कि वे भी सरकार की उँगलियों पर नाचे।

महामारी के दौर में रिपोर्टिंग करना और भी मुश्किल हो गया है। देश की खस्ताहाल स्वास्थ्य सेवा और देश में जरूरी मेडिकल सुविधाओं की कमी के बारे में बोलने वाले पत्रकार या सोशल मीडिया यूजर खौफ के साये में जीते हैं। वैश्विक अखबारों और पत्रिकाओं में सरकार या मोदी की प्रशंसा में लिखी एक लाइन को मंत्री और भक्तगण वेद वाक्य के जैसे गाते फिरते हैं। लेकिन उन्हीं में जब नाकामियों के किस्से छपते हैं तो सरकार अपने स्तर से बहुत नीचे गिरकर आधिकारिक 'उलाहने' देने में लग जाती है। पिछले महीने ऑस्ट्रेलियाई अखबार "द ऑस्ट्रेलियन" ने भारत में कोरोना महामारी की दूसरी लहर के लिए मोदी सरकार को जिम्मेदार बताया। खबर छपते ही भारतीय उच्चायुक्त तुरन्त नाराजगी जताने अखबार के दफ्तर पहुँच गये। स्तरहीनता की हद तो यह थी कि भारत के विदेश मंत्रालय ने अखबार को चिट्ठी लिखी।

इसके अलावा सरकार ने ट्विटर को धमकी दी कि सरकार की नाकामी उजागर करने वाली 50 पोस्ट हटा ले नहीं तो उसे बैन किया जा सकता है। किसान आन्दोलन के दौरान भी दिल्ली पुलिस की ज्यादती दिखाने वाले स्वतंत्र पत्रकार मनदीप पुनिया को गिरफ्तार करवाया गया। सरकार की मुखर आलोचना करती हुई खबरें छापने वाली वेबसाइट "न्यूजक्लिक डॉट इन" को चुप करवाने के लिए प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) की रेड लगवाई जाती है। एक न्यूज एंकर के प्रोग्राम किसान आन्दोलन के बारे में तार्किक बात करते थे तो उसके चैनल को फ्री चैनल से पेड चैनल में डाल दिया। मतलब यह कि हर असहमति सरकार के लिए नाकाबिल-ए-बर्दाश्त है। इस सबके बावजूद सरकार चाहती है कि भारत को प्रेस स्वतंत्रता के मामले में दुनिया के चोटी के देशों में शामिल किया जाये।

दरअसल भारत सरकार जनता के प्रति अपने कर्तव्यों से जितना दूर भाग रही है अभिव्यक्ति की आजादी और असहमति के अधिकार को उतना ही कुचला जा रहा है। यह एक ऐतिहासिक रिश्ता है। जब सरकार केवल जनता पर सवारी गाँठने के लिए रह जाती है तो उसके चरित्र को उजागर करने वाली हर आवाज उसके कान में चुभन पैदा करती है। लेकिन अक्सर सरकार यह भूल जाती है कि दमन और प्रतिरोध एक सिक्के के दो पहलू हैं। दमन जितना बढ़ेगा प्रतिरोध की आवाजें भी उतनी ही ऊँची उठेंगी।

-- विशाल विवेक

गहरे संकट में फँसी भारतीय अर्थव्यवस्था
सुधार की कोई उम्मीद नहीं

-- मोहित पुण्डिर

हाल ही में देश कोरोना की दूसरी लहर का गवाह बना जिसमें सरकार की लापरवाही और अव्यवस्था ने लाखों लोगों की जिन्दगी छीन ली। कोरोना महामारी की दूसरी लहर तो अब घटती नजर आ रही है लेकिन एक दूसरा बड़ा संकट देश के करोड़ों मेहनतकश लोगों के सामने आ खड़ा हुआ है। पिछले साल कोरोना महामारी के समय लगाये गये लॉकडाउन के बाद हजारों छोटे कारोबार बन्द हो गये थे जिनमें काम करने वाले लाखों लोगों को नौकरी से हाथ धोना पड़ा था। अपनी सारी जमा-पूँजी लगाकर किसी तरह लोगों ने अपने परिवारों का भरण पोषण किया था। पिछले साल से ही सरकार लोगों को यह विश्वास दिलाने में लग गयी थी की देश की अर्थव्यवस्था दुबारा पटरी पर आने लगी है। बड़ी-बड़ी घोषणाओं के बीच जीडीपी की वृद्धि दर 10 फीसदी तक बढ़ने जैसी अजीबोगरीब बातें हो रही थीं। लेकिन जैसे ही वित्तीय वर्ष 2020-21 के आँकड़े आने शुरू हुए सरकार के झूठे दावे उजागर हो गये।

वित्तीय वर्ष 2020-21 में जीडीपी विकास दर में अभूतपूर्व शून्य से 7.3 फीसदी नीचे की गिरावट दर्ज हुई है। पिछले 40 सालों में यह अर्थव्यवस्था के सबसे बुरे दौर को दिखाता है। वर्तमान वित्तीय वर्ष में देश का सरकारी खजाने का घाटा (फिस्कल डेफिसिट) जीडीपी का 9.3 फीसदी तक हो गया है। एचएसबीसी ग्लोबल रिसर्च के अर्थशास्त्रियों ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि 16 में से 12 संकेत लाल निशान से ऊपर जा चुके हैं यानी विकास दर पिछले दशकों में सबसे कम है। ये 16 संकेत अर्थव्यवस्था के चार प्रमुख क्षेत्रों से लिये गये है जिनमें उपभोग, उत्पादकता, बाहरी व्यापार और जीवन सुगमता शामिल हैं। यह सब आँकड़े भारत की मौजूदा अर्थव्यवस्था की भयावह तस्वीर दिखाते हैं। मतलब साफ है आने वाले समय में अधिक नौकरियों का नुकसान, आय/मजदूरी में गिरावट, बचत का नुकसान, निवेश, शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवा सहित कई अन्य नुकसान। पहले से बदहाल देश की मेहनतकश जनता की हालत अब और बुरी होने के आसार नजर आ रहे हैं। एक तरफ देश की अर्थव्यवस्था रसातल में जा रही है, करोड़ों लोगों पर जीवन-मरण का संकट छाया हुआ है तो दूसरी तरफ मुट्ठीभर पूँजीपतियों की सम्पत्ति आसमान छू रही है, शेयर बाजार रोज नयी उँचाइयों को छू रहा है। देश के शीर्ष 100 खरबपतियों की दौलत में पिछले एक साल में 14 लाख करोड़ रुपये का इजाफा हुआ है। इन्हीं मुट्ठीभर लोगों के विकास को लम्बे समय से देश का विकास बताया जा रहा है। ऐसे में देश की वर्तमान स्थिति का सही आकलन बेहद जरूरी है जिसके लिए अर्थव्यवस्था के अलग-अलग अंगों की जाँच पड़ताल करनी होगी।

हाल ही में सेण्टर फॉर मोनिटरिंग इंडियन इकॉनमी (सीएमआईई) ने 171 से ज्यादा जिलों में सर्वे किये। इन सर्वे में सामने आया कि लगभग 59 फीसदी 'स्टार्ट अप्स' और 'एमएसएमई' यानी सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग बन्द होने के कगार पर आ गये हैं। ये उद्योग नगदी की भारी कमी का सामना कर रहे हैं, जिस कारण आने वाले समय में यह संख्या और भी अधिक हो सकती है। इन्हीं उद्योगों में देश के श्रमिक वर्ग का लगभग 94 फीसदी लगा हुआ है। इतने बड़े पैमाने पर अब इन लोगों की जीविका पर खतरा मंडरा रहा है। छोटे उद्योग ही नहीं बल्कि देश की बड़ी कम्पनियाँ भी संकट से अछूती नहीं रही हैं। मारुति कार की बिक्री में 52 फीसदी की गिरावट तो वहीं महिन्द्रा एण्ड महिन्द्रा के ट्रैक्टरों और गाड़ियों की बिक्री में रिकॉर्ड 52 फीसदी की कमी आयी है। इन कम्पनियों पर हजारों सहायक वेण्डर कम्पनियाँ निर्भर रहती है, एक कड़ी टूटने का मतलब बाकी सब जगह भी बर्बादी। इसी समस्या के कारण अधिकतर उद्योग अपनी क्षमता के 70 फीसदी से भी कम पर काम कर रहे हैं। विनिर्माण क्षेत्र भी दूसरी लहर के बाद खोला तो जरूर गया है लेकिन मजदूरों के पलायन के कारण और दूसरा मजदूरों के लिए टीका अनिवार्य करने के कारण अपनी क्षमता से नहीं चल पा रहे हैं। टेलीकॉम, बैंकिंग और इससे जुड़े कुछ सेक्टर पिछले सालों से ही दिक्कतों का सामना कर रहे थे लेकिन अब इनकी समस्या और बढ़ गयी है। सर्विस सेक्टर की स्थिति बहुत खराब है-- केवल पर्यटन उद्योग में ही पिछले महीनों में 60 हजार करोड़ का नुकसान हुआ है। तेजी से बर्बाद होते उद्योगों का सबसे बुरा असर वहाँ काम करने वाले मजदूरों पर पड़ रहा है। सीएमआईई की रिपोर्ट के अनुसार इस साल मई के महीने

में ही एक करोड़ से ज्यादा लोगों का रोजगार खत्म हुआ है। जनवरी से लेकर मई तक 2.5 करोड़ लोगों की नौकरी चली गयी।

पिछले साल लॉकडाउन में देश मजदूरों के सबसे बड़े पलायन का साक्षी बना था, जिसमें सरकार की लापरवाही और बदइन्तजामी से कितने ही मजदूरों की जान तक चली गयी थी। इस साल भी काम न मिलने के कारण और कोरोना की दूसरी लहर ने मजदूरों को शहरों से बड़े पैमाने पर ग्रामीण इलाकों में पलायन के लिए मजबूर किया है। जिससे पहले से संकटग्रस्त कृषि क्षेत्र में अतिरिक्त 90 लाख श्रमिक जुड़ गये हैं। पिछले महीने ग्रामीण बेरोजगारी दर 10 फीसदी से ऊपर रही है। इससे साफ है कि शहरों से पलायन करके आये मजदूरों के लिए गाँव में भी रोजगार मिलने की सम्भावना बेहद कम है। अब केवल मजदूर वर्ग ही नहीं बल्कि बहुत तेजी से मध्यम वर्ग भी संकट की चपेट में आ रहा है। सरकारी नौकरियों में लगभग 48 फीसदी तक की गिरावट आयी है। ये आँकड़े भारत में रोजगार की स्थिति को साफ बयान करते हैं। लेकिन सरकार इस सच्चाई के उलट अर्थव्यवस्था की भ्रामक तस्वीर सामने ला रही है जबकि करोड़ों लोगों को अपने हाल पर तिल-तिल करके मरने के लिए छोड़ रही है।

सीएमआईई के अनुसार इस साल ही वेतन वाली करीब एक करोड़ नौकरियाँ खत्म हो गयी हैं जिस कारण 97 फीसदी परिवारों ने अपनी आय में कमी का सामना किया है। रोज-रोज के खर्चे पूरे करने के लिए भी कर्ज लेने पड़ रहे हैं, यहाँ तक कि खाने-पीने तक के सामानों में भी लोगों ने कमी कर दी है। वित्तीय वर्ष 2021 में निजी उपभोग जो कि जीडीपी का सबसे बड़ा मानक होता है, 10 फीसदी तक सिकुड़ गया है। यानी सरकार के अलावा आम लोगों और निजी कम्पनियों की तरफ से होने वाले खर्च में करीब 8 लाख करोड़ की गिरावट आयी है। लेकिन ऐसे समय में भी महँगाई अपने चरम पर है, महँगाई की दर 8 साल के सबसे उच्च स्तर पर है। पिछले कुछ महीनों में ही पेट्रोल-डीजल के दामों में 17 बार बढ़ोतरी हुई है। मुम्बई और जयपुर में पेट्रोल 100 पार तक पहुँच गया है। अब सरसो के तेल जैसे खाद्य तेलों के दाम भी एक दशक के सर्वोच्च स्तर पर पहुँच चुके हैं। शायद ही इतिहास में आर्थिक संकट इतना गहरा पहले कभी हुआ हो।

पहले से बीमार बैंकिंग व्यवस्था अब और बड़े संकट में फँसती नजर आ रही है। क्रेडिट ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार होम लोन बकाया 2 लाख करोड़ से बढ़कर दिसम्बर 2020 तक 22 लाख करोड़ हो गया है। यह बहुत बड़ी दुर्गति है। इसमें छोटे ग्राहक ज्यादा है। यह दुर्गति एक तरफ लोगों की घटती आय की ओर इशारा कर रही है तो वहीं दूसरी ओर पहले से संकटग्रस्त रियल एस्टेट की हालत आगे और भी खराब होने वाली है। दिल्ली-एनसीआर में मकानों की बिक्री सबसे ज्यादा प्रभावित हुई है और अनुमान यह लगाया जा रहा है कि अगले 7-8 साल में भी इनके बिकने की कोई सम्भावना नहीं है। 28 फीसदी मकानों का निर्माण अधूरा ही बीच में छोड़ना पड़ा है। रीयल स्टेट का डूबना लम्बे समय तक अर्थव्यवस्था के संकटग्रस्त रहने की ओर इशारा कर रहा है क्योंकि स्टील, सीमेंट आदि अनेकों उद्योगों की गति बरकरार रखने का यह आधार है, इसका बर्बाद होने का मतलब एक लम्बी शृंखला की बर्बादी।

एक तरफ देश के करोड़ों मेहनतकश लोगों की जिन्दगी बेरोजगारी, महँगाई और घटती आय के कारण बद से बदतर हो रही है, वहीं कुछ बड़ी इजारेदार कम्पनियाँ मालामाल भी हो रही है। पिछले संकटों की तरह ही इस संकट का सारा भार आम जनता पर डालकर बड़े पूँजीपति खुद मलाई चाट रहे हैं। शीर्ष 1054 कम्पनियों का वित्तीय वर्ष 2020-21 में मुनाफा अभूतपूर्व तरीके से बढ़ा है। पिछले वित्त वर्ष में मुनाफे में वृद्धि केवल 1.6 फीसदी ही थी, वह अब बढ़कर 2.63 फीसदी तक हो गयी है। महामारी के समय में भी देश के दो बड़े उद्योगपतियों की आय बेतहाशा बढ़ी है। एक दिन में 4 हजार करोड़ रुपये तक कमाने वाले शायद दुनिया के ये पहले आदमी हों। लेकिन सवाल यह उठता है कि आखिर इनकी कमाई का क्या रहस्य है? सीएमआईई के अध्यक्ष महेश व्यास के अनुसार इस तिमाही में बिक्री 9.7 फीसदी घटी है पर लाभ 17.8 फीसदी बढ़ गया है। जिस कारण केवल इसी तिमाही में जीडीपी में वृद्धि नजर आयी। लेकिन बिक्री कम होने के बाद भी मुनाफा कैसे बढ़ा? इसी तरह शेयर बाजार में बड़ी बढ़ोतरी देखने को मिल रही हैं। 21 जनवरी का दिन बॉम्बे स्टाक एक्सचेंज के इतिहास में अभूतपूर्व रहा। 145 साल के इतिहास में पहली बार इसके सूचकांक ने 50 हजार अंक के स्तर को पार किया। मार्च से जनवरी तक 10 महीनों में ही सूचकांक में दोगुनी वृद्धि हुई। एक आकलन के मुताबिक साल 2020 में शेयर बाजार में निवेश करने वालों को 15 फीसदी का फायदा हुआ। महामारी के दौरान इतने कम समय में इतना ऊँचा मुनाफा कमाना किसी भी दूसरे क्षेत्र में असम्भव था।

ऐसा नहीं है कि यह संकट कोरोना के चलते आया है बल्कि लम्बे समय से भारतीय अर्थव्यवस्था संकट में थी। अगर हम पिछले तीन वित्तीय वर्षों की जीडीपी दर को देखें तो यह रुझान साफ नजर आता है। 2017-18 में जीडीपी दर 7.4 फीसदी थी जिसके बाद से यह लगातार घटती गयी है। 2018-19 में यह 6.5 फीसदी रही और कोरोना महामारी ने इसकी रफ्तार को तेज किया। अर्थव्यवस्था में मन्दी के बावजूद भी अपनी मुनाफे की दर को बरकरार रखने के लिए पूँजीपतियों ने कोरोना महामारी को अवसर के रूप में लिया। महामारी का फायदा उठाकर एक तरफ तो सरकार से लाखों करोड़ों का अनुदान लिया जिसे सट्टेबाजारी में लगाकर अरबों

कमाये। दूसरी तरफ छँटनी और थोड़े मजदूरों से ही बेहद कम मजदूरी पर 12-12 घण्टे काम लिया गया। मजदूरों के विरोध करने पर उन्हें निकाला गया। पूँजीपतियों के फायदे के लिए सरकार ने मजदूरों के हक के लिए बने कानूनों को एक के बाद करके खत्म कर दिया। उनके आन्दोलन करने और अपनी बात रखने पर सख्त रोक लगा दी गयी। वहीं दूसरी ओर पूँजीपतियों से वसूला जाने वाले कॉरपोरेट टैक्स में भारी कमी की गयी है। यह 12 साल में पहली बार हुआ है जब कॉरपोरेट टैक्स से ज्यादा सरकार ने आयकर वसूली की है जबकि पिछले साल सूचीबद्ध कम्पनियों का टैक्स के बाद भी मुनाफा 9.1 फीसदी बढ़ा है वहीं दूसरी और कॉरपोरेट टैक्स में 17.9 फीसदी की गिरावट रही है। इसी कारण विदेशी निवेशक भी सस्ते श्रम और सरकारी संरक्षण के चलते अकूत मुनाफा कमाने के लिए भारत आ रहे हैं। यही राज अडानी की सम्पत्ति बढ़ने का भी है। 2021 में अडानी ग्रुप ने ढाई लाख करोड़ रुपये का मुनाफा कमाया है जबकि इस दौरान देश की जीडीपी की वृद्धि दर शून्य से 7.3 प्रतिशत नीचे पहुँच गयी थी। पिछले 4 साल में इसकी सम्पत्ति 20 गुना से भी ज्यादा बढ़ी है। इस बीच जो सरसों का तेल 85 रुपये प्रति लिटर था अब वह 200 तक पहुँच गया है। इसे बेचने वाला फॉर्च्यून ब्राण्ड अडानी ग्रुप का ही है। यही हाल गैस की कीमत का भी है जो दोगुने से भी ज्यादा बढ़ गयी है। जबकि "अडानी टोटल गैस" के शेयरों में बीते एक वर्ष में 1145 फीसदी की वृद्धि हुई है। भारत के अरबपतियों की कुल सम्पत्ति हमारे जीडीपी के 20 फीसदी तक हो गयी है। करोड़ों मेहनतकश लोगों के खून की एक-एक बून्द निकालकर पूँजीपतियों ने अकूत मुनाफा बटोरा है। यही वह रहस्य है जिससे इनकी दौलत इतनी तेजी से बढ़ी है। एक अरबपति बनने के लिए करोड़ों लोगों को भूखा मरने को मजबूर किया जा रहा है।

अब आखिर देश के करोड़ों मेहनतकश जनता के सामने क्या रास्ता बचता है? हम एक नवउदारवादी दुनिया का हिस्सा है जहाँ देश की सरकारें देशी-विदेशी पूँजीपतियों के मुनाफे को बढ़ाये रखने के लिए कार्यरत हैं। इस महामारी के बीच ही दुनिया भर के अरबपतियों की आमदनी पाँच खरब से बढ़कर 13 खरब डॉलर तक हो गयी है। न केवल भारत की अर्थव्यवस्था संकट में है, बल्कि दुनिया के सभी देशों की अर्थव्यवस्था संकट में है। लेकिन जहाँ एक ओर अमरीका अपने बेरोजगारों को इतना भत्ता दे रहा है कि वे अच्छी जिन्दगी गुजार रहे हैं, वहीं भारत के बेरोजगार दर-दर की ठोकर खाकर आत्महत्या करने को मजबूर हैं।

भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार के कोई आसार नहीं है। यह चौतरफा संकट में फँस गयी है। इसका रोग नासूर बन गया है। यह मरणासन्न स्थिति में है। मरणासन्न स्थिति में पूरा समाज नहीं है, बल्कि वह पूँजीवादी व्यवस्था है, जो किसानों, मजदूरों और नौजवानों के शोषण और लूट पर टिकी है। दरअसल खात्में की ओर जनता नहीं बढ़ रही है, बल्कि उसे लूटने वाली व्यवस्था बढ़ रही है। लेकिन यह सड़ी-गली और मरणासन्न व्यवस्था जितने दिन तक जिन्दा रहेगी, उतना ही तबाही और महामारी पैदा करेगी। यह सड़ी हुई व्यवस्था चाहे जितनी मरने के करीब हो, लेकिन अपने आप खत्म नहीं होगी। इसलिए हमारा यह कर्त्तव्य है कि इस मानवद्रोही व्यवस्था को बदलकर एक न्यायपूर्ण समाज की नींव रखें, जिसमें सबको सम्मानजनक रोजगार की गारण्टी हो और किसी भी इनसान का शोषण-उत्पीड़न न हो। यानी लूटेरों के राज का अन्त होना चाहिए, लेकिन इसके लिए हमें सरकारों के मोहपाश से बाहर आकर सही समझदारी कायम करनी होगी, इतिहास के पन्नों को पलटकर सबक हासिल करने होंगे और एक नयी मुक्ति का रास्ता बनाना होगा।

केवल सरकार विफल नहीं हुई है... लेख का अंश

सोशल मीडिया पर हैशटैग मोदी-मस्ट-रिजाइन ट्रेंड कर रहा है। कुछ मीम्स और इलस्ट्रेशंस में मोदी की दाढ़ी के पीछे से झाँकते हुए कंकाल दिखाये गये हैं। मसीहा मोदी लाशों की एक रैली में भाषण दे रहे हैं। गिद्धों के रूप में मोदी और अमित शाह, क्षितिज पर लाशों के लिए नजरें गड़ाये हैं जिनसे वोट की फसलें काटी जानी हैं। लेकिन यह कहानी का सिर्फ एक हिस्सा है।

संकट पैदा करने वाली यह मशीन, जिसे हम अपनी सरकार कहते हैं हमें इस तबाही से निकाल पाने के काबिल नहीं है। खासकर इसलिए कि इस सरकार में एक आदमी अकेले फैसले करता है और वह आदमी खतरनाक है-- और बहुत समझदार नहीं है।

यह वायरस एक अन्तरराष्ट्रीय समस्या है। इससे निबटने के लिए, कम से कम महामारी के नियंत्रण और प्रशासन के लिए, फैसले लेने का काम एक किस्म की गैर दलगत संस्था के हाथों में जाना होगा जिसमें सत्ताधारी दल के सदस्य, विपक्ष के सदस्य और स्वास्थ्य और सार्वजनिक नीतियों के विशेषज्ञ शामिल हों।

--अरुंधती रॉय

गाजा पर इजरायल का हमला : दक्षिणपंथी सरकारों का आजमाया हुआ पैंतरा

-- पारिजात

गाजा पट्टी की फिलिस्तीनी जनता के उपर 11 दिनों तक मिसाइलों, बमवर्षकों, तोपों से गोले दागने के बाद 21 मई को इजराइल युद्ध विराम के लिए राजी हुआ। इस युद्ध में एक तरफ अमरीका से मिली जेडीएएम (ज्वांइट डायरेक्ट अटैक म्यूनेशन) तकनीकी सहायता, 3.8 बिलियन डॉलर (26,600 करोड़ रुपये) प्रति वर्ष की आर्थिक सहायता और तमाम अत्याधुनिक सैन्य साजो सामानों से लैस इजरायल था और दूसरी तरफ थी गाजा पट्टी की फिलिस्तीनी जनता जिसकी दो तिहाई आबादी बतौर शरणार्थी दर्ज है, जिसके 6 लाख लोग शरणार्थी शिविरों में कैद हैं और जिसकी बेरोजगारी दर 50 प्रतिशत इसलिए है क्योंकि इजरायली नाकेबन्दी ने उसे दुनिया की सबसे बड़ी खुली जेल में तब्दील किया हुआ है। वहाँ की आधी आबादी बाहर से मिलने वाली खाद्य सहायता पर निर्भर है।

जेडीएएम तकनीक का इजरायली सेना ने बखूबी इस्तेमाल करके रिहायशी इमारातों, स्वास्थ्य केन्द्रों, कोविड टेस्टिंग प्रयोगशाला, शरणार्थी शिविरों, पानी-बिजली आपूर्ति और यहाँ तक कि एक पुस्तकालय को मटियामेट कर दिया। गाजा के अधिकारियों के मुताबिक इस हमले में उनकी 1500 रिहाइशी इकाइयाँ तबाह हो गयीं। गाजा औद्योगिक क्षेत्र की ज्यादातर फैक्ट्रियों को इजराइली सेना ने निशाना बना कर बर्बाद कर दिया। संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक 50 प्रतिशत जल आपूर्ति इस हमले में ध्वस्त हो गयी।

इजरायल का दावा है कि उसने हमास के 225 कमाण्डरों और सैनिकों को मार डाला, गाजा के स्वास्थ्य मंत्री ने बताया कि मरने वालों की संख्या 248 है जिसमें 66 बच्चे भी शामिल हैं। इस हमले में 1900 फिलिस्तीनी लोग घायल हुए। गाजा पट्टी से दागे गये रॉकेटों से इजरायल के 12 नागरिकों की भी मौत हो गयी।

सबसे जघन्य बात यह रही कि हमला ऐसे समय में हुआ जब क्षेत्र कोविड-19 महामारी से जूझ रहा था। इजराइल ने क्षेत्र में एकमात्र कोविड परीक्षण केन्द्र पर बमबारी की। क्षेत्र पर कब्जा करने के बावजूद, इजराइल ने गाजा को कोई टीका उपलब्ध नहीं कराया। इजरायल की बमबारी के कारण गाजा को भीड़-भाड़ वाले बम आश्रयों बंकरों और स्कूलों में शरण लेनी पड़ी। वहाँ ऐसे समय में महामारी फैलने का डर बढ़ गया है जब क्षेत्र घायलों की देखभाल करने और बुनियादी ढाँचे को हुए जबरदस्त नुकसान की मरम्मत करने की सख्त कोशिश कर रहा है। पानी की आपूर्ति प्रणाली और बिजली ग्रिड, जो इस समय सबसे जरूरी साधनों में से थे, बम विस्फोटों में एक बार फिर बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गये हैं।

इजराइल जंग क्यों चाहता है?

अगर प्रचार को तथ्य की तरह न स्वीकारा जाये और घटनाओं के सिलसिले पर गौर करें तो साफ मालूम हो जाता है कि इजरायल किस कदर एक जंग चाहता था। फिलिस्तीनी जनता पर इजराइल के हालिया हमले को इजराइल में जारी राजनीतिक संकट की रोशनी में भी समझा जा सकता है।

इजरायल में पिछले दो सालों में चार बार हुए चुनाव इस बात की व्याख्या कर सकते हैं कि पूर्व प्रधानमंत्री नेतन्याहू सरकार बनाने के लिए जरूरी सीटें नहीं जीत सके। मार्च 2020 में उनकी लिकुड पार्टी को 120 सदस्यीय कैसेट (इजरायल की संसद) में महज 36 सीटें मिली थीं, मार्च 2021 में हुए चुनावों में सीटें घटकर 30 रह गयीं। नेतन्याहू की सत्ता से बेदखली तय थी। इजरायल के राष्ट्रपति रिवलिन नेतन्याहू को 4 मई तक बहुमत साबित करने का मौका दिया था। नेतन्याहू के लिए कुर्सी पर बने रहना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण था कि उन पर भ्रष्टाचार के गम्भीर आरोप हैं जिनके चलते मुमकिन है कि उन्हें जेल भी हो सकती है। नेतन्याहू ने सत्ता पर बने रहने के लिए हर आजमाइश की। धुर विरोधी विचारों वाली अरब पोलिटिकल पार्टी तक से समर्थन माँगा लेकिन कोई सफलता नहीं मिली। ऐसे मौकों पर अन्धराष्ट्रवाद, धर्मान्धता, दंगे और साम्प्रदायिकता की आग को हवा देना दक्षिणपंथी सरकारों की खास रणनीति रही है। चुनावों से पहले इस तरह की रणनीति का गवाह खुद भारत भी रहता आया है।

युद्धविराम के पाँच दिन बाद 16 मई को अल जजीरा ने एक रिपोर्ट जारी की जो इसकी तस्दीक करती है-- "23 मार्च के चुनावों

के तुरन्त बाद, यायर लैपिड ने रक्षा मंत्री और व्हाइट एण्ड ब्लू गठबन्धन के अध्यक्ष बेनी गैंट्ज से मुलाकात की और हारेत्ज के लेखक योसी वर्टर के अनुसार, उन्हें यह बात बतायी-- 'एक बात है जिस पर आपको विचार करने की जरूरत है। अगर नेतन्याहू को लगता है कि सरकार उनकी उँगलियों से फिसल रही है, तो वह एक सुरक्षा का मामला गढ़ने की कोशिश करेंगे। गाजा या उत्तरी सीमा में। अगर वह सोचते हैं कि उन्हें बचाने का यही एकमात्र तरीका है, तो वह एक पल के लिए भी ऐसा करने से नहीं झिझकेंगे।'"

13 अप्रैल को रमजान के शुरुआती दिन, इजरायली सुरक्षा बल अल अक्सा मस्जिद में घुसे और वहाँ के तार काट दिये जिनका बन्दोबस्त मस्जिद के बाहर नमाज पढ़ने वालों के लिए किया गया था। अल अक्सा मस्जिद मुस्लिम समुदाय के तीन सबसे पवित्र स्थानों में से एक है।

21 अप्रैल को अल अक्सा की घटना के बमुश्किल एक हफ्ते बाद, नेतन्याहू ने कैसेट सदस्य इतामार बेन ग्विर का समर्थन माँगा। ग्विर वास्तव में बारूक गोल्डस्टीन के प्रशंसक हैं, जिसने 1994 में एक मस्जिद में नमाज पढ़ रहे 29 फिलीस्तीनियों को मार डाला और 125 को घायल कर दिया था। ग्विर ने पूर्वी यरुशलम में एक उपद्रवी जुलूस निकाला, जो दशकों से शेख जर्राह में रह रहे फिलिस्तीनियों को निकालने के कारण पहले से ही तनावपूर्ण था। पुलिस की नजरों के सामने ग्विर के अनुयायी "अरबों को मौत" का नारा लगा रहे थे।

4 मई को नेतन्याहू ने राष्ट्रपति को बताया कि वह बहुमत हासिल नहीं कर सके। हालाँकि, उन्होंने सत्ता छोड़ी नहीं। वह कार्यवाहक प्रधानमंत्री के रूप में बने रहे। 5 मई को राष्ट्रपति ने यायर लैपिड को 28 दिनों के भीतर सरकार बनाने का जिम्मा सौंपा। तब तक 56 विधायक राष्ट्रपति से कह चुके थे कि वह लैपिड का समर्थन करेंगे।

7 मई को इजरायली सुरक्षा बल अल अक्सा मस्जिद में घुसे और वहाँ नमाज पढ़ रहे लोगों पर हथगोले और रबर की गोलियों से हमला किया, जिसमें 53 लोग घायल हो गये।

गाजा में हमास के नेतृत्व ने नेतन्याहू की दक्षिणपंथी सरकार को चेतावनी दी थी कि अगर फिलिस्तीनियों को रमजान के पवित्र महीने के दौरान यरुशलम में अल अक्सा मस्जिद में शान्तिपूर्वक नमाज अदा करने की इजाजत नहीं दी गयी और अगर इजरायल राज्य पूर्वी यरुशलम और इजराइल के अन्य हिस्सों और कब्जे वाले क्षेत्रों में फिलिस्तीनी आवासीय क्षेत्रों को जबरन कब्जाना जारी रखता है तो वह निष्क्रिय नहीं रहेगा।

इजराइली सरकार ने अल अक्सा मस्जिद में अपनी उत्तेजक कार्रवाइयों के बाद प्रतिष्ठित दमिश्क गेट को बन्द कर दिया, जो यरुशलम में मुख्य प्रवेश द्वारों में से एक है। यहाँ फिलिस्तीनी रमजान के दौरान अपना रोजा खोलने के लिए इकट्ठा होते हैं। इसके साथ ही शेख जर्राह के पूर्वी यरुशलम के इलाके में शेष फिलिस्तीनी निवासियों को बेदखल करने के लिए इजरायल के अधिकारियों द्वारा एक और कदम उठाया गया था। जिस पर इजरायल की सर्वोच्च अदालत में मई के मध्य में सुनवाई होनी थी लेकिन गाजा पर हमले और इजरायल में हुई दंगों की घटनाओं के चलते इसे टाल दिया गया।

इजराइली कानून यहूदियों को 1948 में यहूदी राज्य की स्थापना से पहले उनके पूर्वजों के स्वामित्व वाली भूमि पर दावा करने की इजाजत देते हैं। इसके चलते लाखों फिलिस्तीनियों को जबरन उस जमीन से बेदखल कर दिया गया था जिसमें वह पैदा हुए और जो अब इजरायल है। कानून उन्हें उस भूमि पर वापस लौटने की इजाजत नहीं देते।

इजराइल के भीतर भी, नेतन्याहू ने 'तोराह न्यूक्लियस' आन्दोलन जैसे चरम दक्षिणपंथी समूहों को उन शहरों और कस्बों में आक्रामक रूप से हमले करने के लिए भड़काया, जिनमें अच्छी खासी तादात में फिलिस्तीनी आबादी बसती है। लोद जैसे शहरों में हिंसा भड़क उठी और यहूदी भीड़ ने फिलीस्तीनियों पर खुलेआम हमले किये। गाजा पर हमला शुरू होने के बाद मॉब लिंचिंग के मामले भी सामने आये।

4 मई को हमास के सैन्य प्रमुख, मोहम्मद दीफ ने शेख जर्राह के लोगों के खिलाफ "हमलों को रोकने" के लिए इजराइल को "अन्तिम चेतावनी" जारी की। इजराइल ने चेतावनी को नजरअन्दाज कर दिया।

हमास उस राजनीतिक शून्य में भी कदम रख रहा था जिसे महमूद अब्बास के नेतृत्व में फिलीस्तीनी अथॉरिटी (पीए) ने अपनी अयोग्यता और अवसरवाद से पैदा किया था। फिलीस्तीनी अथॉरिटी के राष्ट्रपति महमूद अब्बास ने, हमास के हाथों हार के डर से, कब्जे वाले क्षेत्रों में इस साल अप्रैल में होने वाले आम चुनावों को एक मामूली बहाने से रद्द कर दिया था। यह चुनाव 15 साल बाद होने वाले थे। जनवरी 2006 में हुए चुनावों में हमास की जीत हुई थी। हमास ने वेस्ट बैंक और गाजा में 132 में से 74 सीटें जीतकर बहुमत हासिल किया था। आर्थिक और अन्य तरीकों से इजरायल और अमरीका द्वारा समर्थित राष्ट्रपति अब्बास की फतह पार्टी को हार का सामना करना पड़ा था। यूरोपीय संघ ने घोषणा की थी कि यह चुनाव उसके कुछ सदस्य राज्यों के चुनावों से बेहतर थे। इजरायल की खुफिया एजेंसी मोसाद का भी आकलन था कि फतह पार्टी जीत जायेगी। लेकिन लोकतंत्र की स्थापना कराने वाले स्वनामधन्यों ने हमास को जीत की सजा दी। इजराइल और उसके समर्थकों, अमरीका और यूरोप ने हमास के नेतृत्व वाली सरकार से वित्तीय सहायता वापस ले ली और अब्बास की मेहरबानी से प्रधान मंत्री को बर्खास्त कर दिया गया। गाजा में मजबूत समर्थन आधार वाले हमास ने वहाँ का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया और

इजराइल ने गाजा पट्टी पर शिकंजा कसकर इसे खुली जेल में बदलकर बदतर बना दिया।

इजराइल के पीछे अमरीकी ताकत

नवनिर्वाचित अमरीकी राष्ट्रपति जो बायडन प्रशासन ने इजरायल के "खुद का बचाव करने के अधिकार" के तौर पर गाजा पट्टी पर हुए हमलों को जायज ठहराया। सिनेटर रहते हुए बायडन का दावा था कि यहूदी राज्य को मिलने वाली सालाना सैनिक सहायता वाशिंगटन द्वारा इस क्षेत्र में किया गया सबसे अच्छा निवेश है जिसको लेकर शर्मिंदा होने की कोई जरूरत नहीं है। गाजा पर हमले से एक हफ्ते पहले बायडन प्रशासन ने इजरायल को 73.5 करोड़ डॉलर के हथियार बेचने की भी घोषणा की थी।

इजरायल कोई गरीब देश नहीं है। संयुक्त राष्ट्र में शामिल 193 देशों में प्रति व्यक्ति जीडीपी रैंकिंग में वह 19वें स्थान पर है। इजरायल की प्रति व्यक्ति जीडीपी 46,376 डॉलर है। इस मामले में वह जर्मनी, यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस और साउदी अरब से आगे है। इसके बावजूद अमरीका हर साल इजरायल को 3.8 बिलियन डॉलर की आर्थिक सहायता देता है। इस सहायता का भारी हिस्सा वापस अमरीकी हथियारों को खरीदने में किया जाता है।

वित्तीय और सैन्य सहायता के अलावा, पिछले 70 सालों में 42 बार अमरीका ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में इजरायल से सम्बन्धित प्रस्तावों पर वीटो का इस्तेमाल कर उसे बचाया है। इसके अलावा वह इजरायल को बड़ा राजनीतिक समर्थन भी देता है।

जैसे ही इजराइल ने गाजा पर हमला तेज किया और नागरिक हताहत हुए, बायडन ने नेतन्याहू के साथ टेलीफोन बातचीत में, "अन्धाधुन्ध रॉकेट हमलों से खुद को बचाने के लिए इजराइल के अधिकार को अपना दृढ़ समर्थन दोहराया"। बायडन ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में युद्धविराम के चीन और रूस के प्रयासों को 10 से भी ज्यादा दिनों तक रोके रखा।

अमरीका के लिए इजरायल के महत्त्व को, जिसे बायडन इस क्षेत्र में सबसे अच्छा निवेश होने का दावा करते हैं, डी येरगिन ने अपनी किताब *'द प्राइज : द इपिक क्वेस्ट फॉर आयल, मनी एण्ड पावर'* में कुछ इस तरह से दिखाया है-- 1944 में एक ब्रिटिश राजदूत के लिए अमरीकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट के मन में क्या था-- "फारसी तेल... तुम्हारा है। हम इराक और कुवैत के तेल को बाँट लेते हैं। जहाँ तक सऊदी अरब के तेल की बात है, यह हमारा है।"

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन का सूरज डूब गया था और अमरीका एक नयी साम्राज्यवादी ताकत बनकर उभरा था। इजरायल ही मध्य पूर्व के क्षेत्र में अमरीका की सबसे मजबूत चौकी हो सकता था जो वह आज है और अमरीका के भू राजनीतिक हितों को साधता है। इजरायल के सहारे ईरान को काबू में करने की वह लगातार कोशिश करता है।

दुनिया भर में इजरायल के हमलों का विरोध

लेकिन इस बार फिलिस्तीन पर इजरायली हमलों का दुनिया भर में बहुत व्यापक स्तर पर विरोध हुआ। दुनिया भर में लाखों लोग इजरायली हमले और फिलिस्तीन की घेराबन्दी के खिलाफ सड़कों पर उतर आये। भले ही अमरीका, कनाडा और अधिकांश यूरोपीय राष्ट्रों ने फिलिस्तीन राज्य के निर्माण को लेकर हुए ओस्लो समझौते को लागू करने से इनकार करने के बाद भी इजरायल का समर्थन करना जारी रखा है, लेकिन इन देशों में जनता की राय तेजी से यहूदी राज्य के खिलाफ होती जा रही है। युद्ध विराम की घोषणा के बाद से ही न्यू यॉर्क, पेरिस, बर्लिन फ्रेकफर्ट मेलबर्न जैसे पश्चिमी शहरों में भारी तादाम में जनता ने फिलिस्तीन के समर्थन में फिलिस्तीनी झण्डा लेकर प्रदर्शन किये। "आजाद फिलिस्तीन" और इजरायल को युद्ध अपराधी घोषित करने के नारे लगाये गये। लन्दन में 2 लाख से अधिक लोगों ने प्रदर्शन में भाग लिया। फ्रांसीसी सरकार शुरू में महामारी का बहाना बनाकर इस एकजुटता प्रदर्शन पर प्रतिबन्ध लगाना चाहती थी। लेकिन आखिरकार वह ऐसा कर न सकी। प्रदर्शकारी नारे लगा रहे थे-- "हम सभी फिलिस्तीनी हैं" और "इजराइल हत्यारा है, मैक्रोन उसका सहयोगी है।"

अमरीका में यहूदियों का एक महत्त्वपूर्ण वर्ग अब आँख बन्द करके इजराइल का समर्थन नहीं करता है। नेतन्याहू सरकार की नीतियों की आलोचना में उदारवादी यहूदी समूह जैसे जेस्ट्रीट, इफनॉट नाउ और यहूदी वॉयस फॉर पीस जैसे समूह खुल कर सामने आये हैं। "ब्लैक लाइव्स मैटर" आन्दोलन जिसने अमरीका में भारी राजनीतिक महत्त्व पाया है, ने भी फिलिस्तीन की माँग का समर्थन किया है।

अप्रैल में अमरीकी कांग्रेस के 75 डेमोक्रेटिक सदस्यों ने अमरीकन इजरायल पब्लिक अफेयर कमेटी द्वारा तैयार किये गये एक पत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया, जिसमें माँग की गयी थी कि इजराइल को "बिना शर्त" सालाना 4 बिलियन डॉलर का सहायता पैकेज दिया जाये। डेमोक्रेटों का यह धड़ा 'प्रोग्रेसिव डेमोक्रेट' के नाम से जाना जाता है जिसका नेतृत्व बर्नी सैण्डर्स कर रहे हैं। गाजा पर हुए हमलों के बाद डेमोक्रेट पार्टी फिलिस्तीन के सवाल पर खुलेआम बँट गयी है।

न्यूयॉर्क टाइम्स में लिखते हुए, सैण्डर्स ने कहा कि अमरीका को "इजरायल को अपनी रक्षा करने का अधिकार है" की रट लगानी बन्द कर देनी चाहिए और इसके बजाय "फिलिस्तीनी लोगों के अधिकारों" पर भी ध्यान देना चाहिए। उन्होंने कहा कि शेख जर्राह के पूर्वी यरुशलम उपनगर से फिलिस्तीनी परिवारों की निरन्तर बेदखली जैसी घटनाएँ "राजनीतिक और आर्थिक उत्पीड़न की एक व्यापक प्रणाली का हिस्सा हैं"।

अमरीकी कांग्रेस के 25 से अधिक डेमोक्रेटिक सदस्यों ने राज्य सचिव एंटनी ब्लिंकन को पत्र लिखकर बायडन प्रशासन से इजरायल द्वारा फिलिस्तीनियों को जबरन बेदखल करने से रोकने का आग्रह किया। पत्र में बताया गया है कि इजराइल 1967 से पूर्वी यरुशलम में 5,000 से अधिक फिलिस्तीनी घरों को ध्वस्त कर चुका है। इसमें कहा गया है-- "पूर्वी यरुशलम वेस्ट बैंक का हिस्सा है और अन्तरराष्ट्रीय कानून के तहत, यरुशलम नगरपालिका के भीतर अवैध ढंग से पूर्वी यरुशलम का समावेश करने के बावजूद इजराइल इस क्षेत्र पर सैन्य कब्जा जमाये बैठा है।"

युद्धविराम लागू होने के बाद गाजा का दौरा करने वाले फिलिस्तीन के लिए संयुक्त राष्ट्र के मानवीय समन्वयक लिन हेस्टिंग्स ने कहा कि इस क्षेत्र पर इजरायल की नाकेबन्दी को तुरन्त हटा दिया जाना चाहिए और इस क्षेत्र को बाकी फिलिस्तीन के साथ जुड़ने की इजाजत दी जानी चाहिए।

भारत का ढुलमुल रवैया

इजरायल को नयी दिल्ली में इजरायली दूतावास खोलने की इजाजत आजादी के 45 साल बाद जाकर मिली। भारत जबरन एक यहूदी राष्ट्र के निर्माण की अवधारणा के ही खिलाफ था और फिलिस्तीन के साथ सैद्धान्तिक एकजुटता रखता था। नरेन्द्र मोदी देश के पहले प्रधानमंत्री थे जो राजनयिक सम्बन्धों की 25 वीं वर्षगाँठ मनाने के लिए 4 जुलाई 2017 को इजराइल के शहर तेल अवीव पहुँचे। इन 25 वर्षों में इजरायल भारत का रक्षा भागीदार बनकर उभरा है और भारत इजरायल के सबसे बड़े रक्षा बाजार के रूप में सामने आया है, वह अपने हथियारों का 41 प्रतिशत यहीं निर्यात करता है। भारत सरकार ने इजरायल-फिलिस्तीन मसले पर पहले तो युद्ध विराम का आह्वान करने से परहेज किया लेकिन कुछ दिनों बाद जब यह तय हो गया कि खुद अमरीका युद्ध विराम की पैरवी कर रहा है तो वह इसमें शामिल हो गयी।

भारत सरकार ने 27 मई को संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद के उस प्रस्ताव पर वोट करने से खुद को दूर कर लिया जिसके तहत गाजा, इजराइल और आक्यूपाइड वेस्ट बैंक में मानवाधिकारों के उल्लंघन को लेकर एक स्थायी आयोग का गठन किया जाना था। अमरीका और उसके दुमछल्लों के विरोध के बावजूद एक आसान बहुमत से यह प्रस्ताव पारित हो गया। यह पहली बार था कि "राष्ट्रीय, जातीय, नस्लीय और धार्मिक पहचान के आधार पर व्यवस्थागत भेदभाव और दमन सहित, बार बार होने वाले तनाव, अस्थिरता और संघर्ष के फैलाव के सभी अन्तर्निहित मूल कारणों को देखने के लिए एक अन्तरराष्ट्रीय जाँच आयोग की स्थापना" की जा रही थी।

भारत के लिए गुनाह बेलज्जती की हालत यह थी कि इजराइल के प्रधानमंत्री नेतन्याहू ने उसका साथ देने वाले देशों का शुक्रिया अदा किया लेकिन जाने क्यों भारत को इससे अलग रखा। हद तो तब हो गयी जब हिन्दू-मुस्लिम करने में माहिर देश की गोदी मीडिया बेशर्मी से इजरायल की पैरवी करने लगी और आईटी सेल के धुरन्धर नेतन्याहू को टैग करते हुए इजराइल के साथ खड़े होने की कसमें खाने लगे।

इस बीच, उत्तर प्रदेश पुलिस ने आजमगढ़ से 32 वर्षीय एक व्यक्ति को गिरफ्तार किया, जिसका नाम संयोग से यासर अराफात था। (ज्ञात हो कि यासर अराफात फिलीस्तीनी मुक्ति संघर्ष के एक बड़े और लोकप्रिय नेता थे।) यासर ने अपने फेसबुक पेज पर फिलिस्तीन समर्थक तस्वीर और टिप्पणियाँ पोस्ट की थी। उन्हें "शान्ति भंग करने" के लिए गिरफ्तार किया गया था। अराफात ने अपने पोस्ट में कहा था कि इजरायल की आक्रामकता के प्रतिरोध के प्रदर्शन में फिलिस्तीनी झण्डे हर घर, वाहन और कार्यालय पर फहराएँगे। यू.पी. पुलिस ने कहा कि पोस्ट से आजमगढ़ में साम्प्रदायिक तनाव फैल गया था। बाद में अराफात को रिहा कर दिया गया।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी एक यहूदी राज्य की स्थापना के खिलाफ थे। 1934 में लिखे अपने एक लेख 'इसाइयत के अछूत' में उन्होंने लिखा-- "यहूदियों की 'अपना राष्ट्रीय घर' की माँग मुझे जँचती नहीं है। इसके लिए बाइबल का आधार ढूँढा जा रहा है और फिर उसके आधार पर फिलिस्तीनी इलाके में लौटने की बात उठायी जा रही है। लेकिन जैसे संसार में सभी लोग करते हैं वैसा ही यहूदी भी क्यों नहीं कर सकते कि वे जहाँ जन्में हैं और जहाँ से अपनी रोजी-रोटी कमाते हैं, उसे ही अपना घर मानें?... फिलिस्तीनी जगह उसी तरह अरबों की है जिस तरह इंग्लैण्ड अंग्रेजों का है या फ्रांस फ्रांसीसियों का है। यह गलत भी होगा और अमानवीय भी कि यहूदियों को अरबों पर जबरन थोप दिया जाये। उचित तो यह होगा कि यहूदी जहाँ भी जन्में हैं और कमा-खा रहे हैं वहाँ उनके साथ बराबरी का सम्मानपूर्ण व्यवहार हो। अगर यहूदियों को फिलिस्तीनी जगह ही चाहिए तो क्या उन्हें यह अच्छा लगेगा कि उन्हें दुनिया की उन सभी जगहों से जबरन हटाया जाये जहाँ वे आज हैं? या कि वे अपने मनमौज के लिए अपना दो घर चाहते हैं? 'अपने लिए एक राष्ट्रीय घर' के उनके इस शोर को बड़ी आसानी से यह रंग दिया जा सकता है कि इसी कारण उन्हें जर्मनी से निकाला जा रहा था।"

इजराइल फिलिस्तीन के बीच 11 दिनों तक चले युद्ध के बाद संघर्ष विराम की घोषणा भले ही तात्कालिक शान्ति का भरोसा जताती हो लेकिन दोनों पक्ष जानते हैं कि यह ज्यादा दिन नहीं चलेगा।

अमरीकी साम्राज्यवाद और यहूदी राष्ट्र का स्वप्न लिए इजरायल शान्त नहीं बैठेगा और फिलिस्तीनी जनता पर कहर ढाने से बाज नहीं आयेगा। अपनी जमीन, अपनी आजादी के लिए लड़ रही फिलिस्तीनी जनता कभी हार नहीं मानेगी।

बर्मा में सत्ता संघर्ष और अन्तरराष्ट्रीय खेमेबन्दी

-- प्रवीण कुमार

एक फरवरी को बर्मा में सेना ने फिर से सत्ता पर जबरन कब्जा जमा लिया। उसने बन्दूक की नोक पर नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी (एनएलडी) की सरकार को उसकी बची-खुची आंशिक सत्ता से भी बेदखल कर दिया। हालाँकि, सत्ता पूरी तरह एनएलडी के पास नहीं थी, सेना के साथ उसकी साझा सत्ता थी। फिर भी इसे सैन्य तख्तापलट ही कहना पड़ेगा क्योंकि एनएलडी की सरकार और उसकी मुखिया आंग सान सू क्यी चुनाव के रास्ते सत्ता में आयी थी और सत्ता हड़पने वाला जनरल मिन ऑग हालिंग और दूसरे सैन्य अधिकारी चुनाव के जरिये भर्ती नहीं हुए हैं।

बर्मा में तख्तापलट पर विभिन्न देशों की अलग-अलग प्रतिक्रिया आयी। अपनी समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों, जटिल घरेलू राजनीति, अस्थिर अन्तर्राष्ट्रीय रिश्तों और भू-रणनीतिक स्थान के कारण बर्मा में तख्तापलट चीन और इसीलिए अमरीका के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। तख्तापलट पर बर्मा की सैन्य सरकार के खिलाफ, अमरीका और उसके खेमे के देशों ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में कार्रवाई का प्रस्ताव रखा, लेकिन चीन और रूस ने उस पर वीटो कर दिया। अमरीका और उसके सहयोगी देशों ने लोकतंत्र की रक्षा की दुहाई दी जबकि चीन और रूस का मानना है कि बर्मा के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप हालात को और खराब कर देगा। यही राय दक्षिणपूर्वी एशियाई देशों के संगठन, आसियान की है, जिसका बर्मा भी सदस्य है। इस संगठन के देश भी बर्मा के खिलाफ किसी सामूहिक कार्रवाई के सवाल पर एकमत नहीं हुए। बर्मा के दूसरे सबसे महत्त्वपूर्ण पड़ोसी देश भारत का रवैया सबसे खराब रहा। तख्तापलट के तुरन्त बाद उसने भी सेना को लोकतंत्र की नसीहत दी थी लेकिन बाद में रूस-चीन के साथ खड़ा हो गया। 27 मार्च को बर्मा के सैन्य दिवस की परेड में भारत के प्रतिनिधियों ने भी जनरल मिन ऑग हालिंग की मेहमाननवाजी का मजा लिया।

नवम्बर 2020 में हुए चुनाव में एनएलडी ने आंग सान सू क्यी के नेतृत्व में 80 प्रतिशत मत हासिल करके सरकार बनायी थी। 2015 के चुनाव में एनएलडी ने इससे भी बड़ा बहुमत हासिल किया था। इतने बड़े बहुमत के बावजूद सेना से सत्ता साझा करने की एनएलडी की अपनी चाहे जो मजबूरी हो लेकिन बर्मा की जनता मजबूर नहीं है। उसे सेना की तानाशाही और सत्ता में हिस्सेदारी दोनों ही स्वीकार नहीं है। जनता अपने प्रतिनिधि खुद चुनने का अधिकार और इस अधिकार का पूरा सम्मान चाहती है, भले ही उसने एनएलडी के समझौतापरस्त, सत्ता लोलुप नेता चुने हों। अपने इसी अधिकार की रक्षा के लिए बर्मा की जनता बेखौफ होकर सेना की गोलियों और बमों का सामना कर रही है।

बर्मा की सेना ने अपने ही देश की जनता के खिलाफ हथगोले, राकेट लांचर और यहाँ तक कि बम वर्षक विमान तक इस्तेमाल करके जघन्य अपराध को अंजाम दिया है। जिन प्रदर्शनकारियों पर सरकारी हथियारबन्द गिरोहों ने हमले किये, उन की अगली कतार में छात्र, मजदूर, डॉक्टर, वकील और एथेनिक समुदायों की जनता शामिल है। फरवरी के महीने से ही मजदूरों ने कारखाने ठप्प कर रखे हैं और छात्रों ने कालेजों, विश्वविद्यालय पर ताले जड़ दिये हैं। इनका अनुसरण करते हुए कर्मचारी भी जबरदस्त हौसले से मैदान में डटे हैं। लगभग तीन चौथाई कर्मचारियों ने सेना की सत्ता के लिए कोई भी काम करने से इनकार कर दिया है। एथेनिक समुदायों के लड़ाकों ने अपने साधारण हथियारों से सेना के खिलाफ मोर्चा सम्भाल रखा है, इसके बावजूद कि सू क्यी ने इनके साथ वादा-खिलाफी की थी। 2017 में रोहिंग्या एथेनिक समुदाय के सेना द्वारा किये गये नरसंघार को अभी बहुत ज्यादा दिन नहीं बीते हैं। उस वक्त सू क्यी की सरकार सेना के साथ खड़ी थी। एथेनिक समुदायों के हथियारबन्द संघर्ष ने सेना को देश में छितरा जाने के लिए मजबूर किया है जिससे शहरों के प्रदर्शनकारियों को बहुत मदद मिली है।

सत्ता हथियाने के बाद से ही सेना ने एनएलडी के सभी बड़े नेताओं को नजरबन्द कर रखा है। सेना के बर्बर दमन के बढ़ते जाने और अन्तरराष्ट्रीय स्तर से कोई खास मदद मिलने की सम्भावना खत्म हो जाने के बाद एनएलडी ने एथेनिक समूहों से मदद की गुहार लगाई थी। थोड़े गिले-शिकवे के बाद 10 बड़े एथेनिक समूह सेना के खिलाफ व्यापक संघर्ष छेड़ने के लिए तैयार हो गये। इनमें केरेन, काचिन, वा और शान समूह प्रमुख हैं जिनके पास लगभग 16,000 लड़ाकों की सेना है। केरेन नेशनल यूनियन और रेस्टोरेशन काउंसिल ऑफ शान स्टेट ने स्वीकार किया है कि

"हमने हजारों विपक्षी कार्यकर्ताओं को शरण दी है.... और व्यावहारिक कारणों के चलते हमने 2015 में सरकार के साथ हुए शान्ति समझौते को भी तोड़ दिया है।.... मार्च के अन्त में केरेन राज्य में हवाई हमला करके सेना ने खुद शान्ति समझौता तोड़ दिया था, ऐसे में एकतरफा ढंग से शान्ति समझौते का पालन नहीं कर सकते थे।"

पिछले 5 सालों की सत्ता के दौरान सू क्यी सेना की अल्पसंख्यक एथेनिक समूह विरोधी नीतियों के साथ खड़ी रही। इसके बावजूद बर्मा के इतिहास में यह पहली बार हो रहा है कि प्रभुत्वशाली और बहुसंख्यक (कुल आबादी का 60 प्रतिशत) बामार एथेनिक समूह, जिससे सू क्यी समेत बर्मा के तमाम शासक आते हैं, और दूसरे अल्पसंख्यक एथेनिक समूहों के बीच एकता कायम हो रही है। निश्चित तौर पर सैन्य तख्तापलट ही इस नाटकीय बदलाव के लिए जिम्मेदार है। यंगून और मनडाले जैसे बड़े शहरों की सड़कों पर प्रदर्शनकारियों के हाथों में सू क्यी और एथेनिक समूहों के बैनर साथ-साथ दिखाई दिये हैं।

सेना विरोधी प्रदर्शनकारियों के नेताओं और प्रमुख एथेनिक समूहों के नेताओं ने एक समानान्तर नागरिक सरकार की स्थापना की है। इसने 2008 से लागू सेना के बनाये हुए संविधान को खारिज कर दिया है और इसकी जगह एक ऐसा संविधान लागू करने पर सहमति जताई है जो अल्पसंख्यक एथेनिक समूहों को भी समान नागरिक अधिकारों और अवसरों की गारंटी देता हो। यह आन्दोलन की प्रगतिशीलता का सर्वोच्च बिन्दु है। हालाँकि यह इतना आसान नहीं है। समूहों के बीच आपसी मतभेद बहुत ज्यादा हैं और यह कदम एनएलडी के राजनीतिक एजेण्डे से आगे का है। इसे लागू करने के लिए एक अलग राजनीतिक पार्टी की जरूरत है जो बर्मा में मौजूद नहीं है और एनएलडी आज के साम्राज्यवादी दौर में जिस एकाधिकारी पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी कर रही है, वह वर्ग खुद जनता की व्यापक एकता और पहलकदमी से खतरा महसूस करता है।

बर्मा का सैन्य संविधान

बर्मा का संविधान सेना को राष्ट्र का संरक्षक होने का अधिकार देता है। महत्त्वपूर्ण मंत्रालय और संसद के 25 प्रतिशत पद सैन्य अधिकारियों के लिए आरक्षित हैं। 2015 के चुनाव में एनएलडी को 86 प्रतिशत मत मिले थे। इसके बावजूद सत्ता पर इसका पूर्ण अधिकार नहीं था। रक्षा, गृह और सीमा सम्बन्धी मामले जैसे महत्त्वपूर्ण मंत्रालय सेना के पास थे। एनएलडी नेता सू क्यी एक ब्रिटिश नागरिक की पत्नी होने के चलते खुद राष्ट्रपति के पद से वंचित थी और उनके लिए अलग से स्टेट काउंसलर का पद एनएलडी सरकार को गढ़ना पड़ा था। सेना के लिए आरक्षित 25 प्रतिशत पदों के साथ ही 2015 के चुनाव में सेना की राजनीतिक पार्टी, यूडीएसपी को ऊपरी और निचले सदन में 11 और 30 पद हासिल हुए थे। कम से कम 75 प्रतिशत सांसदों की सहमति से ही बर्मा के सैन्य संविधान में कोई संशोधन हो सकता है यानी सेना की इच्छा के बिना इसमें कोई संशोधन सम्भव नहीं है।

इसके अलावा, संविधान की धारा 417 सेना को आपातकाल के नाम पर सत्ता अपने हाथ में ले लेने का अधिकार देती है। इसी संवैधानिक अधिकार का इस्तेमाल करके सेना ने एक फरवरी को सत्ता अपने हाथ में ली है। लोकतंत्र की झण्डाबरदार सू क्यी इसी संविधान को स्वीकार करके सत्ता में हिस्सेदार बनी थी और इसी ने उससे हिस्सेदारी छीन ली। लोकतंत्र के नेताओं के बौनेपन और सत्ता लोलुपता की ऐसी मिसालें इतिहास में भरी पड़ी हैं।

एनएलडी और सेना के बीच संघर्ष लोकतंत्र बनाम तानाशाही के बीच का संघर्ष नहीं है, जैसा कि प्रचारित किया जा रहा है, बल्कि यह बर्मा के सबसे बड़े पूँजीपतियों के दो गुटों के बीच का संघर्ष है। इसमें एक की नुमाइन्दगी एनएलडी करती है और दूसरे की सेना। सू क्यी और उनकी पार्टी एनएलडी कहीं से भी लोकतंत्रवादी नहीं है और ना ही आज के नवउदारवादी दौर में वह हो सकती है। सेना की तरह ही सू क्यी भी एथेनिक समुदायों की स्वायत्ता और सबके लिए समान नागरिक संहिता के खिलाफ हैं। उनके हाथ भी रोहिंग्या मुसलमानों के खून से रंगे हैं। लोकतंत्र के किसी भी चेतनाशील समर्थक के लिए यह भूलना नामुमकिन है कि सेना द्वारा रोहिंग्या मुसलमानों के नरसंहार पर अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय में चले मुकदमे में सू क्यी ने किस बेशर्मी से सेना का बचाव किया था। इस नरसंहार में हजारों की संख्या में कत्ल और बलात्कार की घटनाएँ हुईं, 7 लाख से ज्यादा रोहिंग्या मुसलमान देश छोड़ने के लिए मजबूर हुए थे।

लोकतंत्र के खिलाफ खड़े सैन्य अधिकारी

बर्मा के सैन्य अधिकारी शासक वर्ग का एक सर्वाधिक प्रभावशाली हथियारबन्द आर्थिक गिरोह है। बर्मा एकाधिकारी नौकरशाह पूँजीवाद का एक क्लासिकल उदाहरण है। देश के दो सबसे बड़े आर्थिक समूह म्यांमार इकोनॉमिक होल्डिंग्स लिमिटेड और म्यांमार इकोनामिक कारपोरेशन पूरी तरह सैन्य अधिकारियों के नियंत्रण में हैं। बैंक, बीमा, खनन, विनिर्माण, टेलीकम्युनिकेशन, टिम्बर, कृषि, कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें इन एकाधिकारी कम्पनी समूहों का कारोबार ना हो। इनके मुनाफे से होने वाली आय सैन्य अधिकारियों के धनाढ्य होने का सबसे आसान स्रोत है। देश के चोटी के दस पूँजीपति या तो सेना के अधिकारी रहे हैं या फिर सेना के साथ उनके करीबी पारिवारिक और आर्थिक रिश्ते हैं। देश का सबसे बड़ा पूँजीपति थिएन शेन सेना का पूर्व जनरल और राष्ट्रपति है। मौजूदा जनरल हालिंग का बेटा भी देश के चोटी के पूँजीपतियों में से है।

सैन्य शासकों को अरबपति बनानेवाली आर्थिक नीतियों ने बर्मा की जनता को कंगाल बना दिया है, इसका जिक्र हम आगे करेंगे। इन आर्थिक नीतियों की सहायक संकीर्ण मानसिकता की राजनीति के चलते बर्मा एक अन्तहीन जातीय संघर्ष में फँसा हुआ है और आजादी के 70 साल बाद भी एक सुगठित राष्ट्र नहीं बन पाया है। अभी तक यह भी तय नहीं है कि इसके नागरिक कौन-कौन होंगे। शासक वर्ग आन्तरिक संघर्ष को अपने लिए वरदान मानता है।

बर्मा की जनता 135 एथेनिक समूहों से मिलकर बनी है। बामार एथेनिक समूह सबसे बड़ा है। इसकी आबादी बर्मा की कुल आबादी का 60 प्रतिशत है और बाकि 40 प्रतिशत में दूसरे सभी समूह हैं। इनमें से बहुत से अल्पसंख्यक एथेनिक समूहों को बर्मा के शासक विदेशी मानते हैं। इनका कोई नागरिक अधिकार नहीं है। यह किसी सम्पत्ति पर अपना अधिकार नहीं जता सकते, यहाँ तक कि अपने समूह से बाहर शादी भी नहीं कर सकते। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों ने फूट डालो राज करो की नीति के तहत समूहों के पिछड़ेपन का फायदा उठाकर उनके बीच की कबिलाई दुश्मनी को लगातार बढ़ावा दिया। 1948 में आजादी के बाद सत्ता में आये देशी शासकों ने भी इसी नीति को आगे बढ़ाया और समूहों के बीच के मतभेदों को दूर करने की कोशिश करने के बजाय इसे और ज्यादा जटिल बनाया।

बर्मा की सबसे पहली राजनीतिक पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ बर्मा ने जनता की एकता के लिए काम किया था लेकिन आजादी के पाँच साल बाद ही 1953 में कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। उस समय यह देश की सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी थी। केवल किसानों में ही इसके दस लाख कार्यकर्ता थे। 1962 में नागरिक सरकार का तख्तापलट करके सेना ने सत्ता हथिया ली और कम्युनिस्टों के कत्लेआम का अभियान शुरू कर दिया। पार्टी का काम मुख्य भूमि से एथेनिक समूहों के सीमावर्ती क्षेत्रों में खिसक गया और बर्मा में आन्तरिक संघर्ष शुरू हो गया।

1980 तक बर्मा का आन्तरिक संघर्ष मुख्यतः विचारधारा पर ही केन्द्रित रहा। इस संघर्ष के दौरान एथेनिक समूहों में सशस्त्र दस्ते गठित हुए। इसकी काट के लिए सेना ने इन्हीं समूहों के बीच से हत्यारे दस्ते तैयार किये। भारत में सलवा जुडूम शायद इन्हीं से सीख लेकर बनाया गया था। 1980 के दशक में भारी फूट बिखराव के बाद कम्युनिस्ट पार्टी खत्म हो गयी। इसके साथ ही विचारधारा पर केन्द्रित संघर्ष भी कभी ना खत्म होनेवाले जातीय संघर्ष में तब्दील हो गया। बर्मा के सैन्य शासकों ने इस आन्तरिक संघर्ष का इस्तेमाल सत्ता के कवच के रूप में किया। बहुसंख्यक बामार समूह के अन्दर ऐसा उन्माद भरा गया कि दूसरे समूहों का दमन ही उसके लिए देशभक्ति का पर्याय बन गया। इस आत्मघाती देशभक्ति के उन्माद में बामार आबादी अपने दमन उत्पीड़न से आँख फेरे रही।

1988 के बाद बनी सैन्य जुंटा की सरकार ने देश के सार्वजनिक संस्थानों का निजीकरण और जातीयता के मुद्दे को नये सिरे से तूल देना एक साथ शुरू किया। परिणामस्वरूप जातीय संघर्ष तेज होते गये। आज कैरेन, वा, शेन जैसे 20 बड़े एथेनिक समूहों के पास अपनी सशस्त्र सेना और राजनीतिक पार्टियाँ हैं लेकिन इनकी पहचान अब विचारधारा नहीं बल्कि इनकी जातीयता है। अब इनकी मुख्य माँग शोषकों से मुक्ति नहीं बल्कि अपने समूह के लिए अधिक स्वायत्तता है। सेना ने एथेनिक समूहों पर केन्द्रित गाँव स्तर के सुरक्षा दस्ते से लेकर हजारों लड़ाकों की संख्या वाले सैकड़ों सशस्त्र दस्ते भी तैयार किये हैं। यह प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उसी के नियंत्रण में हैं। इन्हें सेना आर्थिक मदद देती है। सेना ने 23 सीमा रक्षक बल इन्हीं के बीच से बनाये हैं। बहुत से ऐसे दस्ते भी हैं जो अलग-अलग कारणों से खुद-ब-खुद बने हैं। इनका आपस में और सेना के साथ दोनों स्तरों पर अन्तहीन संघर्ष चलता रहता है।

एनएलडी का जन्म और चरित्र

सेना की तरह ही एनएलडी भी देश के एकाधिकारवादी पूँजीपतियों के तुलनात्मक रूप से कमजोर गुट की और नये उभरे पूँजीपति वर्ग की प्रतिनिधि है। इसका उद्भव एक नाटकीय घटनाक्रम में 1988 के आन्दोलन से हुआ था। 1962 के तख्तापलट के बाद सैन्य शासन ने समाजवाद के नाम पर नौकरशाही पूँजीवाद की नीतियाँ अपनायी थीं। इन नीतियों के परिणामस्वरूप बर्मा में दो नये वर्ग पैदा हुए। पहला, एकाधिकारी नौकरशाह पूँजीपतियों का एक वर्ग तैयार हुआ जिसकी मुट्ठी में एक ही साथ आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य, तीनों ताकतें थीं, दूसरा, छोटे पूँजीपतियों का एक वर्ग तैयार हुआ जिसकी अपनी कोई राजनीतिक पार्टी नहीं थी। इन नीतियों से 1980 के दशक की शुरुआत में ही बर्मा आर्थिक संकट में फँस गया। संकट इतना विकराल था कि खाद्य पदार्थों और रोजमर्रा की जरूरी चीजों की कीमतें नियंत्रण से बाहर हो गयीं। ग्रामीण परिवार अपनी आय का 75 प्रतिशत से ज्यादा भोजन पर खर्च करने को मजबूर हुए और 86 प्रतिशत परिवार गरीबी रेखा से नीचे चले गये। समाज का बड़ा हिस्सा खरीदारी की क्षमता से वंचित हो गया जिससे निम्न स्तर के स्थानीय उत्पादन को भी खपाना मुश्किल हो गया। अर्थव्यवस्था को काबू करने के लिए सैन्य सरकार ने 1985 और 1987 में दो बार नोटबन्दी की, बैंकों में जमा रकम की निकासी पर रोक लगायी और रकम की जब्ती की लेकिन हालात पर काबू नहीं पाया जा सका।

जनता के साथ-साथ सैन्य अधिकारियों, खासतौर पर रिटायर्ड सैनिकों का एक हिस्सा और नया उभरता पूँजीपति वर्ग भी सैन्य सरकार से नाराज हो गया। देश में जबरदस्त जनआन्दोलन भड़क उठा। आन्दोलन खड़ा करने में सबसे बड़ी भूमिका कम्युनिस्ट पार्टी की थी लेकिन आन्तरिक और बाह्य संकटों के चलते पार्टी 1988 तक आते-आते बहुत तेजी से बिखरकर खत्म गयी।

1988 में शासक वर्ग के एक हिस्से में नाराजगी थी और जनआन्दोलन भी जबरदस्त था लेकिन इनकी रहनुमाई करनेवाली कोई राजनीतिक शक्ति बर्मा में मौजूद नहीं थी। इन्हीं नाटकीय हालातों में नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी (एनएलडी) का जन्म हुआ। यह एक ऐसा खिचड़ी समूह था जिसमें सेना के रिटायर्ड अधिकारियों से लेकर संशोधनवादी वामपंथी तक शामिल थे। इसीलिए यह कोई पार्टी नहीं "लीग" थी लेकिन नेतृत्व मुख्यतः सैनिक अधिकारियों के ही हाथ में था। इसने 1988 के आन्दोलन को लोकतंत्र के लिए आन्दोलन का नाम दिया। ब्रिटेन में एक प्रोफेसर के साथ वैवाहिक जीवन बिता रही सू क्यी उन दिनों अपनी बीमार माँ की देखभाल के लिए बर्मा आयी हुई थी। सू क्यी संयुक्त राष्ट्र संघ में काम कर चुकी थी, कुछ पश्चिमी नेताओं से सम्पर्क था, राष्ट्रपिता जनरल आंग सान की पुत्री थी और वैचारिक स्तर पर एनएलडी के घटकों में मध्यम स्थान पर थी। शायद इसीलिए बर्मा की राजनीति का कोई अनुभव ना होने के बावजूद इन्हें अध्यक्ष बना दिया गया। जिस सू क्यी ने आन्दोलन में हिस्सा भी नहीं लिया था, वहीं आन्दोलन का चेहरा बन गयी।

एनएलडी में इतनी वैचारिक और सांगठनिक ताकत नहीं थी कि वह जनआन्दोलन को आगे ले जाये। सेना ने आन्दोलन का बर्बर दमन किया, तीन हजार से ज्यादा आन्दोलनकारियों की हत्या की और हजारों को जेल में डाल दिया। जनरल ने विन ने सत्ता सैन्य जुंटा के हाथ में सौंप दी। 1990 में हुए चुनाव में 81 प्रतिशत मतों के साथ एनएलडी ने जबरदस्त जीत हासिल की, लेकिन सैन्य जुंटा ने सत्ता छोड़ने से इनकार कर दिया। 1990 में गठन के लगभग 2 साल बाद ही एनएलडी पर प्रतिबन्ध लग गया और सू क्यी को घर में ही नजर बन्द कर दिया गया। लेकिन इस आन्दोलन से एनएलडी और सू क्यी बर्मा की राजनीति में एक लोकतंत्रवादी के रूप में स्थापित हुईं। 1991 में सू क्यी को शान्ति का नोबेल पुरस्कार देकर एक अन्तरराष्ट्रीय हस्ती बना दिया गया।

बर्मा में 2010 में फिर चुनाव हुए और जनरल थियन सेन के नेतृत्व में सेना की पार्टी एसएनडीपी की सरकार बनी। नयी सरकार ने सेना के बनाये संविधान को लागू किया। इस सरकार ने पश्चिमी देशों की इच्छा के मुताबिक बर्मा का तथाकथित जनवादीकरण किया। एनएलडी समेत सभी विरोधी पार्टियों पर से प्रतिबन्ध खत्म कर दिये गये, अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार बहाल कर दिया गया और सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि अधिकतम विदेशी निवेश हासिल करने के लिए अर्थव्यवस्था के बचे-खुचे खिड़की-दरवाजे भी खोल दिये गये। सू क्यी के बिना ही बर्मा धन्ना सेठों के मन मुताबिक लोकतंत्र बन गया।

2015 में बर्मा में एनएलडी की सरकार बनी। इस सरकार ने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में कोई जनहितैशी कदम नहीं उठाया। सैन्य शासकों के साथ असहज महसूस करने वाले पूँजीपतियों के हित साधने और उन्हें अपने पीछे गोलबन्द करने में एनएलडी जरूर कामयाब रही। थियन सेन की सरकार का झुकाव अमरीका की ओर था, एनएलडी की सरकार बर्मा को फिर से चीन की ओर ले गयी। एथेनिक समुदायों की समस्या और बर्मा की जनता की कंगाली की समस्या पर एनएलडी और सैन्य शासकों के रुख में अब कोई खास अन्तर नहीं रह गया।

बर्मा की बदहाल जनता

लोकतंत्र को लागू करना या जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना बर्मा के शासक वर्ग के दोनों गुटों में से किसी के लिए भी चिन्ता का विषय नहीं है। दोनों ही गुटों पर वर्ग स्वार्थ इतना हावी है कि अपने ही वर्ग के दूरगामी हितों के बारे में सोचना भी इनके लिए मुमकिन नहीं है। लगभग पाँच दशक के सैन्य शासन और पाँच साल के एनएलडी के शासन के दौरान सेना और एनएलडी जनता की शिक्षा, चिकित्सा या सामाजिक हित का कोई महत्त्वपूर्ण काम करने में नाकाम रही हैं।

बर्मा की कुल आबादी 5.4 करोड़ है। देश का औद्योगिकीकरण बहुत निम्न स्तर का है। देश में कुल मात्र 5 लाख औद्योगिक मजदूर हैं। इससे 10 गुना, लगभग 50 लाख बर्मी मजदूर विदेशों में निम्न स्तरीय प्रवासी मजदूर के रूप में खटते हैं। इनमें से अधिकतर अवैध तरीके से विदेश गये हैं। शासक इन्हें विदेशी मुद्रा हासिल करने का अच्छा स्रोत बताते हैं। विश्व बैंक का अनुमान है कि इन अभागों द्वारा देश में भेजी गयी रकम बर्मा के सकल घरेलू उत्पाद का 3.2 प्रतिशत है। बर्मा के नागरिक खासतौर पर एथेनिक समूहों से आने वाले नागरिक सेना के दमन के चलते भारी संख्या में देश छोड़ने को मजबूर हुए हैं। लगभग 10 लाख बर्मा वासी विदेशों के शरणार्थी शिविरों में कैदियों का जीवन बिता रहे हैं।

प्राकृतिक सम्पदा के मामले में बर्मा एक धनी देश है। शानदार इमारती लकड़ी, उपजाऊ जमीन के साथ-साथ यहाँ की मिट्टी में प्रचुर मात्रा में खनिज मौजूद हैं। बर्मा के पास तेल और गैस के अच्छे भण्डार हैं। प्रकृति ने बर्मा को बेशकीमती रत्नों की सौगात भी दी है और यह दुनिया के अगुआ रत्न उत्पादक देशों में शामिल है। कहने को बर्मा की 70 प्रतिशत आबादी किसान

है, लेकिन ठेका खेती ने उनमें से अधिकतर को कम्पनियों का कारिन्दा बना दिया है। यहाँ बागवानी ज्यादा होती है, लेकिन इससे होने वाली आय का लगभग 90 प्रतिशत हिस्सा निवेशक हड़प जाते हैं। बर्मा के किसानों के हिस्से में कंगाली और कृषि रसायनों से बंजर हो चुकी जमीन और दूषित पर्यावरण ही आता है। नतीजतन किसान आबादी का एक हिस्सा उजड़कर मजदूरों में तब्दील हुआ, लेकिन उसे खपाने के लिए देश में उद्योग नहीं हैं। उजड़े हुए किसानों की इस आबादी ने पहले से तंगहाल मजदूर आबादी पर श्रम की आरक्षित सेना का बोझ और ज्यादा बढ़ाया। जिसके चलते बर्मा दुनिया के सबसे सस्ते श्रम के देशों में शामिल हो गया। लगभग मुफ्त में श्रम बेचने के बावजूद भी जब मजदूरों को अपने देश में काम नहीं मिलता तो गैर कानूनी तरीकों से सीमा पार करके विदेशों में मजदूरी करने के लिए मजबूर होते हैं।

शासक वर्ग की नीतियों का परिणाम है कि कभी चावल और इमारती लकड़ी का दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक देश रहा बर्मा आज दुनिया के सबसे सस्ते मजदूरों का सबसे बड़ा निर्यातक देश बन गया है। बर्मा की 10 प्रतिशत से ज्यादा आबादी यानी 55 लाख लोग विदेशों में निम्न स्तरीय मजदूरी करते हैं। सेना द्वारा एथेनिक समूहों के दमन ने बर्मा को दुनिया में सबसे ज्यादा शरणार्थी निर्यात करने वाला देश भी बनाया है। बर्मा की दो प्रतिशत से ज्यादा आबादी दूसरे देशों के शरणार्थी शिविरों में कैद है।

बर्मा के मैदान में अमरीका चीन को नहीं पछाड़ सकता

बर्मा एक तरफ चीन से सटा है और दूसरी ओर इसकी सीमा बंगाल की खाड़ी और हिन्द महासागर में खुलती है। आजादी के बाद सत्ता किसी की भी रही हो लेकिन बर्मा के शासकों के साथ चीन के रिश्ते हमेशा अच्छे बने रहे। केवल 2008 से 2014 तक का एक छोटा सा दौर था जब चीन के बजाय अमरीका की ओर रहा। 1989 के बाद जब बर्मा के शासकों ने बन्द अर्थव्यवस्था की कुछ खिड़कियाँ खोली तो निवेश के लिए पश्चिमी शासकों ने बर्मा से राजनीतिक बदलावों की माँग की। पश्चिमी देशों को सैन्य जुंटा की सरकार पर भरोसा नहीं था। वे उसे पूरी तरह चीनपरस्त मानते थे। इसीलिए सत्ता और अर्थव्यवस्था पर एकाधिकारी सैन्य पूँजीपतियों की पकड़ ढीली करवाना चाहते थे। बर्मा के शासकों को यह स्वीकार नहीं था। वह अमरीकी प्रतिबन्धों को और कुछ समय तक झेलने के लिए तैयार थे।

बर्मा आर्थिक और रणनीतिक दोनों तरह से चीन के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण था। दक्षिणी चीन के औद्योगिक क्षेत्र बर्मा के रास्ते आसानी से हिन्द महासागर से जुड़ सकते थे। इस जुड़ाव से चीन को खाड़ी के देशों, मध्य पूर्व के देशों और यूरोपीय देशों के साथ जोड़ने वाला व्यापारिक मार्ग छोटा हो सकता था। मालवाहक जहाजों को मलक्का जलडमरू और दक्षिण चीन सागर से होकर नहीं आना पड़ता और चीन का नौपरिवहन खर्च घटता। इसके अलावा बर्मा चीन के तैयार माल का अच्छा बाजार और कच्चे माल का, खासतौर पर तेल, गैस और धातु खनिजों का स्रोत भी हो सकता था। मौके का फायदा उठाकर चीन ने बर्मा में ढाँचागत परियोजनाओं और खनन में भारी-भरकम निवेश करना शुरू किया। इसके साथ ही दोनों देशों के बीच व्यापार भी तेजी से बढ़ा। 1989 में दोनों देशों के बीच लगभग 32 करोड़ डॉलर का व्यापार हुआ था, जिसमें चीन को 6 करोड डॉलर का लाभ हुआ। 2008 में द्विपक्षीय व्यापार 8 गुना बढ़कर 2.6 अरब डॉलर हो गया और चीन का लाभ 20 गुना बढ़ा। डेढ़ दशक में ही बर्मा के शासकों को लगने लगा कि वह चीन के आर्थिक गुलाम बनते जा रहे हैं। तकनीक और पूँजी के लिए एक ही महाशक्ति पर निर्भर होकर उन्होंने अपनी सौदेबाजी की ताकत गवाँ दी है तो उन्होंने अमरीका की और झुकना शुरू किया।

2010 में फिर से चुनाव हुए और थिएन शेन के नेतृत्व में सेना की पार्टी, स्टेट पीस एण्ड डेवलपमेंट पार्टी की सरकार बनी। सत्ता सम्भालते ही उन्होंने पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों की पसन्द के फैसले धड़ाधड़ लेने शुरू किये। अर्थव्यवस्था के दरवाजे पूरी तरह खोल देने की उदारवादी आर्थिक नीति अपनायी। एनएलडी समेत सभी विरोधी पार्टियों पर से प्रतिबन्ध खत्म कर दिये गये। अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार बहाल कर दिया गया। बर्मा तुरन्त पश्चिम के लिए पवित्र बन गया। 2011 में अमरीकी गृह मंत्री हिलेरी क्लिंटन ने बर्मा की यात्रा की। अगले ही साल राष्ट्रपति बराक ओबामा भी बर्मा की यात्रा पर आये। यह किसी अमरीकी राष्ट्रपति की पहली बर्मा यात्रा थी। इसके साथ ही बर्मा का राजनीतिक महत्त्व पश्चिमी दुनिया में स्थापित हो गया। पहली बार बर्मा में अमरीका का दूतावास खुला। बर्मा की सत्ता में पकड़ बनाने की आर्थिक के अलावा दूसरी वजह थी चीन की घेराबन्दी। 2012 में चीन को घेरने के लिए अमरीका ने "पाइवेट टू ईस्ट एशिया" क्षेत्रीय रणनीति पर काम शुरू कर दिया था। 2014 में बराक ओबामा ने फिर से बर्मा की यात्रा की।

अमरीका के प्रति वफादारी के प्रदर्शन के लिए 2011 में बर्मा के शासकों ने चीन के 3.6 अरब डॉलर के निवेश से बन रही 'माई जो' जल विद्युत परियोजना पर निर्माण कार्य बन्द करवा दिया। चीन को लेपदुंग में ताम्बा खनन से भी रोक दिया गया। अमरीका को खुश करने के लिए चीन के येनान प्रान्त को बर्मा के रखाइन प्रान्त से जोड़ने वाली और हिन्द महासागर तक चीन की सीधी पहुँच सुनिश्चित करने वाली रेलवे लाइन पर काम रुक गया। चीन को सबसे बड़ा झटका तब लगा जब बर्मा ने क्यांग फू बन्दरगाह से चीन के कुनमिंग तक जाने वाली गैस और तेल

की समानान्तर पाइप लाइनों का निर्माण भी अधर में लटका दिया। इन पाइप लाइनों से चीन के हाइड्रोकार्बन आयात में काफी कमी आनी थी। चीन घाग शिकारी की तरह मौके के इन्तजार में चुपचाप बैठ गया। उसे बर्मा के शासकों के चरित्र की अमरीका से ज्यादा समझ थी।

2014 आते-आते बर्मा-अमरीका के मधुमास का आवेग शिथिल पड़ गया। अमरीका बर्मा में मात्र 33 करोड़ डॉलर का प्रत्यक्ष निवेश करके सिंगापूर और चीन से बहुत पीछे रहा और चीन की तरह कोई ढाँचागत निर्माण नहीं कर सका। बर्मा की आर्थिक, सामाजिक और उसकी भौगोलिक स्थिति ने शासक वर्गों को चीन से अस्थायी दूरी बनाने की इजाजत नहीं दी। चीन बर्मा का सबसे बड़ा पड़ोसी, पारम्परिक और आसान दोस्त और व्यापारिक साझेदार था। भारत की चपाती और पश्चिम की गुड़िया कही जाने वाली सू क्यी 2015 में चुनाव जीतने के तुरन्त बाद चीन की यात्रा पर चली गयी। अगले ही साल बर्मा के राष्ट्रपति यू तिन क्याव ने चीन की यात्रा की। इसके बाद ही दोनों देशों के राजनयिकों की आपसी यात्राओं की झड़ी लग गयी। 2015 में ही चीन फिर से बर्मा का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार बन गया। सभी लंबित परियोजनाओं का काम फिर से शुरू हुआ और पूरा हुआ। इसके अलावा चीन की महत्त्वकांक्षी ओबीओआर के क्षेत्रीय गलियारों के लिए चीन और बर्मा के बीच कई द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझौते हुए। बर्मा से चीन को होने वाला निर्यात रॉकेट की रफ्तार से बढ़कर 7.7 अरब डॉलर पहुँच गया। बर्मा के शासक इससे बड़ा सपना नहीं देख सकते थे। इसके अलावा अन्तरराष्ट्रीय मामलों में चीन मजबूती से बर्मा के साथ खड़ा रहा।

पश्चिमी मीडिया द्वारा गढ़ी गयी आम धारणा के विपरीत, बर्मा में तख्तापलट से चीन खुश नहीं है। वास्तव में, वह बर्मा में पश्चिमी हस्तक्षेप नहीं चाहता। पश्चिमी हस्तक्षेप का अर्थ बर्मा में नाटो सेना की मौजूदगी है जिसे चीन, रूस और यहाँ तक कि भारत भी स्वीकार नहीं करेगा। दक्षिण पूर्वी मामलों के विशेषज्ञ स्विस्तिक स्त्रेंजियो ने बीबीसी को दिये एक इण्टरव्यू में कहा था कि "बर्मा की स्थिति पर चीन का रुख अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप के प्रति उसके पूर्ण अविश्वास के चलते है। एनएलडी और आंग सान सू क्यी के साथ रिश्ते बेहतर करने के लिए उसने बहुत बड़ा निवेश किया हैं। वास्तव में, सेना की सत्ता में वापसी का अर्थ है कि अब चीन को उन संस्थाओं से दुबारा रिश्ता जोड़ना पड़ेगा जो ऐतिहासिक रूप से चीन के उद्देश्यों को सर्वाधिक सन्देह से देखते हैं।"

बर्मा गृहयुद्ध की ओर नहीं जायेगा

सोशल मीडिया और संचार के दूसरे साधनों पर अपने प्रभुत्व के चलते बर्मा में तख्तापलट का जिम्मेदार चीन को ठहराने में अमरीका काफी हद तक सफल हुआ है, लेकिन उसे इतने से ही सन्तोष करना पड़ेगा। मौजूदा वैश्विक परिस्थितियों में सैन्य हस्तक्षेप तो क्या बर्मा पर कठोर आर्थिक प्रतिबन्ध लगाना भी अमरीका के लिए मुश्किल है। उसने अभी तक केवल कुछ सैन्य अधिकारियों और दो कम्पनियों पर प्रतिबन्ध लगाये हैं। बर्मा में घुसने के दूसरे तरीके, "पाइवेट टू ईस्ट एशिया" को ओबामा शासन की सबसे बड़ी मूर्खता कहकर अमरीकी शासक बहुत पहले ही खारिज कर चुके हैं। बर्मा में अभी कोई ऐसा राजनीतिक समूह भी नहीं है जिसे बढ़ावा देकर अमरीका पैर रखने की जगह पा सके। चीन, रूस और भारत तीनों बर्मा में बाहरी हस्तक्षेप के खिलाफ हैं और इनकी मर्जी के बिना यह हो भी नहीं सकता।

एनएलडी और सेना दोनों में चीन के लिए भरपूर समर्थन है। चीन 2013 से ही एथेनिक समूहों के बीच के संघर्षों में मध्यस्त की भूमिका निभा रहा है। एथेनिक आबादी मूलतः बर्मा के सीमाई इलाकों में बसती है। अपने आर्थिक हितों के अनुरूप, चीन वहाँ शान्ति चाहता है। वह बर्मा का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार और विदेशी निवेशक है। मौजूदा हालात में बर्मा के शासक चीन से दूरी नहीं बना सकते हैं। इसलिए बर्मा के मैदान में चीन को पछाड़ना अमरीका के लिए सम्भव नहीं है।

बर्मा का मौजूदा सत्ता संघर्ष देश के सबसे धनी, एकाधिकारी पूँजीपतियों के दो गुटों के बीच का संघर्ष है। इनमें से एक का प्रतिनिधित्व एनएलडी करती है और एक का सेना। बर्मा में लोकतंत्र लाना, एक एकीकृत राष्ट्र का निर्माण करना, जनता की बदहाली दूर करना इनका मकसद नहीं है। इनमें से कोई भी गुट सत्ता को पूरी तरह अपने हाथ में ज्यादा देर तक रखने में सक्षम नहीं है। सम्भावना है कि कुछ दिनों बाद दोनों में समझौता हो जायेगा। बर्मा में एनएलडी जनआन्दोलन को आगे नहीं ले जा सकती और सेना के पास आन्दोलनों को कुचलने का लम्बा अनुभव है।

जनता की लोकतंत्र की चेतना सू क्यी से बहुत आगे है। जनता ने उस संविधान को ही खारिज कर दिया है जिसे स्वीकार करके सू क्यी ने चुनाव लड़ा था। वह जनआन्दोलन को आगे नहीं बढ़ा सकती, इसके उलट उनकी धार को कुन्द करेगी, जैसा 1988 के आन्दोलन के साथ किया था। विडम्बना यह है कि 1988 की तरह ही आज भी जनता की अगुवाई करने के लिए कोई संगठित राजनीतिक ताकत मौजूद नहीं है। इस ताकत की गैरमौजूदगी में जनान्दोलनों की लहरें उठती रहेंगी और टूटती रहेंगी। उम्मीद है बर्मा की जनता के जनसंघर्षों के बीच से उस ताकत का जन्म जल्दी ही होगा, जो वहाँ आमूल-चूल परिवर्तन की लहर पैदा करेगी।

महामारी के बावजूद 2020 में वैश्विक सामरिक खर्च में भारी उछाल

1988 को आधार वर्ष माने तो कोविड-19 महामारी के बावजूद दुनियाभर के देशों ने 2020 में सर्वाधिक सैन्य खर्च किया है। हमेशा की तरह ही इनमें अमरीका पहले स्थान पर है। यह तथ्य स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टिट्यूट (एसआईपीआरआई) की हालिया रिपोर्ट, ट्रेंड्स इन वर्ल्ड मिलिटरी एक्सपेंडीचर, 2020 पर आधारित है।

2020 में हर देश महामारी के चलते थोपे गये लॉकडाउन और दुर्दशा से अपनी अर्थव्यवस्था को बचाने की कोशिश कर रहा था। रिपोर्ट में कहा गया है कि ऐसा लगता है ये कोशिशें भी सरकारों को सैन्य खर्च में पहले से ज्यादा रकम झोंकने से नहीं रोक पायी।

26 अप्रैल, 2021 को प्रकाशित इस रिपोर्ट में कहा गया है-- 2020 में वैश्विक सैन्य खर्च 1,981 अरब डॉलर रहा है जो 1988 के बाद सबसे ज्यादा है। अधिकतम खर्च वाले पिछले सालों, 2019 और 2011 का सटीक हिसाब पीस रिसर्च इंस्टिट्यूट के पास उपलब्ध है, जिससे पता चलता है 2020 का वैश्विक सैन्य खर्च 2019 की तुलना में 2.6 प्रतिशत और 2011 की तुलना में 9.3 प्रतिशत ज्यादा है।

रिपोर्ट में दर्ज है कि पिछले दशक में वैश्विक सैन्य खर्च लगभग 10 प्रतिशत बढ़ा है। यह बढ़ोतरी उस साल में भी हुई है जब दुनिया के "सकल घरेलू उत्पाद में 4.4 प्रतिशत गिरावट आयी।" वैश्विक सैन्य बोझ यानी वैश्विक सैन्य खर्च 2020 में 0.2 बिंदु बढ़कर सकल घरेलू उत्पाद का 2.4 प्रतिशत हो गया।

इसमें यह भी कहा गया है कि इस बढ़ोत्तरी के चलते "2009 के वित्तीय और आर्थिक संकट के बाद सैन्य बोझ में सबसे ज्यादा वार्षिक वृद्धि हुई है।"

इसमें भी दक्षिणी कोरिया और चिली जैसे कुछ देशों ने अपने योजनागत सैन्य खर्च के कुछ हिस्से को महामारी से मुकाबला करने में इस्तेमाल करने का फैसला किया जबकि रूस, ब्राजील जैसे देशों ने अपने सैन्य मद में योजना से "काफी कम खर्च किया।"

पीस रिसर्च इंस्टिट्यूट का कहना है कि सैन्य मद में सबसे ज्यादा खर्च अमरीका ने किया है। कुल वैश्विक सैन्य खर्च का 39 प्रतिशत अमरीका ने किया है। खर्च में वृद्धि दर के हिसाब से भी अमरीका सबसे ज्यादा वृद्धि वाले दस देशों में शामिल है, इससे ज्यादा वृद्धि दर केवल जर्मनी और दक्षिणी कोरिया की रही है जिनका सैन्य खर्च अमरीका की तुलना में बहुत कम है।

अमरीका के सबसे नजदीकी "प्रतियोगी" चीन ने सैन्य मद में उसकी तुलना में 2020 में लगभग तीन गुना कम खर्च किया है, हालाँकि, चीन ने कुल वैश्विक सैन्य खर्च का 13 प्रतिशत खर्च किया है। बीजिंग ने अर्थव्यवस्था पर सैन्य बोझ बढ़ाने की कीमत पर सैन्य खर्च नहीं बढ़ाया क्योंकि चीन की अर्थव्यवस्था उन गिनी-चुनी अर्थव्यवस्थाओं में से एक थी जिसकी वृद्धि दर 2020 में भी सकारात्मक थी।

भारत, रूस और ब्रिटेन भी सैन्य मद में सर्वाधिक खर्च करने वाले पाँच देशों में शामिल हैं, जबकि इनका प्रतिरक्षा बजट, अमरीका की तो बात ही क्या चीन की तुलना में भी बहुत कम है। सैन्य मद में सबसे ज्यादा खर्च करने वाले 10 देशों में सऊदी अरब ऐसा इकलौता देश है जिसका प्रतिरक्षा खर्च 2020 में घटा है।

नाटो के सदस्य देशों ने अपनी जीडीपी का 2 प्रतिशत सैन्य मद में खर्च करने की आपसी सहमति बना रखी है, आर्थिक गिरावट के साथ-साथ सैन्य मद में खर्च की लगातार बढ़ोत्तरी ने नाटो के कुछ सदस्य देशों को अपना यह वायदा पूरा करने में मदद की है, पीस रिसर्च इंस्टिट्यूट के मुताबिक 2019 में 12 में से केवल 9 सदस्य देश ही ऐसा कर पाये थे। फ्रांस तो 2009 के बाद पहली बार 2019 में इस औसत को छू पाया।

पीस रिसर्च इंस्टिट्यूट ने अलग-अलग देशों के हथियार और सैन्य खर्च की जाँच पड़ताल के लिए एक कार्यक्रम चलाया था, इस शोध कार्य में काम करने वाले शोधकर्ता डिएगो लोपेज दा सिल्वा (ब्राजील), नान तियन (दक्षिणी अफ्रीका), अलेक्सान्द्रा मार्कस्ताइनर (ऑस्ट्रिया/जर्मनी) का कहना है कि इस रिपोर्ट के तथ्य 2020 के क्षेत्रीय और राष्ट्रीय सैन्य खर्च और 2011-20 के दशक के खर्च के रुझान को उजागर करते हैं। ये आँकड़े पीस रिसर्च इंस्टिट्यूट के सार्वजनिक रूप से उपलब्ध अपडेटेड मिलिटरी एक्सपेंडीचर डाटाबेस से लिये गये हैं जिसमें हर देश द्वारा सैन्य

मद में खर्च के 1949-2020 की अवधि के आँकड़े उपलब्ध हैं।

2020 के 15 सबसे ज्यादा सैनिक खर्च करने वाले देश

रिपोर्ट के अनुसार सबसे ज्यादा सैन्य खर्च करने वाले 15 देशों ने इस मद में कुल 1,603 अरब डॉलर खर्च किये हैं और यह कुल वैश्विक सैन्य खर्च का 81 प्रतिशत है। 2019 और 2020 के दौरान सूची की बनावट और इसमें शामिल देशों के क्रम में फेरबदल हुआ है। सबसे उल्लेखनीय है तुर्की की जगह इजराइल का इस सूची में शामिल होना और ब्रिटेन का सऊदी अरब से ऊपर जगह पाना क्योंकि सऊदी अरब के सैन्य खर्च में 10 प्रतिशत की कमी आयी है जिसके चलते 2020 में वह पाँचवें स्थान पर खिसक गया। अमरीका (10 प्रतिशत कमी), ब्रिटेन (4.2 प्रतिशत कमी) और इटली (3.3 प्रतिशत कमी) इसमें अपवाद थे। 2011-20 के दशक में चीन ने सैन्य खर्च में 76 प्रतिशत बढ़ोतरी की जो इन 15 देशों में सबसे ज्यादा थी। दक्षिणी कोरिया (41 प्रतिशत), भारत (34 प्रतिशत), ऑस्ट्रेलिया (33 प्रतिशत) और इजराइल (32 प्रतिशत) इस सूची के दूसरे ऐसे देश हैं जिनका सैन्य खर्च 2011-20 के दशक में काफी बढ़ा है।

अमरीका

2020 में अमरीका ने सैन्य बजट में 778 अरब डॉलर खर्च किये, यह दुनिया का सबसे ज्यादा खर्च करने वाला देश रहा। इसने वैश्विक सैन्य खर्च का 39 प्रतिशत खर्च किया है। 2020 में अमरीका ने अपनी सेना पर लगभग उतना खर्च किया है जितना उसके बाद के 12 देशों का कुल सैन्य खर्च था। 2020 में अमरीका का सैन्य बोझ बढ़कर जीडीपी का 3.7 प्रतिशत हो गया है जो पिछले साल की तुलना में 0.3 प्रतिशत ज्यादा है। हालाँकि 2019 की तुलना में उसका खर्च 4.4 प्रतिशत बढ़ा है। 2010-17 के दौरान लगातार सैन्य खर्च में गिरावट के बाद 2020 तीसरा ऐसा साल था जब अमरीका ने लगातार खर्च बढ़ाया। 2018-20 के दौरान बढ़े हुए खर्च का श्रेय शोध और विकास तथा अमरीकी नाभिकीय हथियारों के आधुनिकीकरण जैसी दीर्घकालिक परियोजनाओं और बड़े पैमाने पर हथियारों की खरीददारी को दिया जा सकता है। चीन और रूस से तथाकथित रणनीतिक खतरा और पूर्व राष्ट्रपति डोनाल्ड जे ट्रम्प द्वारा सेना का पुनर्निर्माण जिसे वे खस्ताहाल मानते थे, इसकी मुख्य चालक शक्ति रहे हैं।

चीन

2020 में चीन दूसरा सबसे ज्यादा सैनिक खर्च करने वाला देश रहा। इसने वैश्विक सैन्य खर्च का 13 प्रतिशत खर्च किया है। 2020 में सेना पर खर्च किये गये 252 अरब डॉलर इसकी जीडीपी का 1.7 प्रतिशत था जो 2019 की तुलना में 1.9 प्रतिशत ज्यादा था। चीन का सैन्य खर्च पिछले 26 सालों में लगातार बढ़ा है, चीन की दीर्घकालिक सैन्य आधुनिकीकरण और विस्तार प्रक्रिया इसका कारण है। चीन के राष्ट्रीय प्रतिरक्षा मन्त्रालय के अनुसार 2020 की बढ़ोत्तरी का कारण कुछ हद तक 'ताकत की राजनीति' से चीन की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए पैदा हुआ कथित खतरा है।

भारत

रिपोर्ट में कहा गया है कि 2020 में भारत का सैन्य बजट 72.9 अरब डॉलर था जो 2019 की तुलना में 2.1 प्रतिशत और 2011 की तुलना में 34 प्रतिशत ज्यादा था। कश्मीर को लेकर पाकिस्तान के साथ मौजूदा विवाद और चीन के साथ शुरू हुआ नया सीमा-विवाद तथा एशिया और ओसियानिया क्षेत्र में मुख्य क्षेत्रीय शक्ति के रूप में सामान्यतः चीन के साथ प्रतिद्वन्दिता इस बढ़ोत्तरी का मुख्य कारण रहे हैं।

रूस

पीस रिसर्च इंस्टिट्यूट की रिपोर्ट के अनुसार 2020 में रूस का सैन्य खर्च 61.7 अरब डॉलर था जो 2019 की तुलना में 2.5 प्रतिशत और 2011 की तुलना में 26 प्रतिशत ज्यादा था। 2017 और 2018 में लगातार गिरावट के बाद रूस के सैन्य बजट में 2019 और 2020 में लगातार बढ़ोत्तरी हुई है। 2017 से पहले रूस का सैन्य खर्च लगातार 18 साल तक बढ़ता रहा है। 2020 में भी बढ़ोत्तरी के बावजूद ऐसा लगता है कि रूस के सैन्य खर्च पर कोविड-19 महामारी के आर्थिक परिणाम का तात्कालिक असर पड़ा है। वास्तव में 2020 में रूस का सैन्य खर्च प्रस्तावित सैन्य बजट की तुलना में 6.6 प्रतिशत कम रहा है।

नाटो

रिपोर्ट के अनुसार नॉर्थ अटलान्टिक ट्रीटी आर्गेनाईजेशन (नाटो) के सदस्य देशों का 2020 में कुल सैन्य खर्च 1,103 अरब डॉलर रहा है। सबसे ज्यादा सैन्य खर्च करने वाले 15 देशों में से 6 नाटो के सदस्य हैं-- अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, इटली और कनाडा।

इन 6 देशों का योगदान नाटो के सैन्य खर्च का 90 प्रतिशत और वैश्विक सैन्य खर्च का 50 प्रतिशत है।

इसमें यह भी कहा गया है कि 2019 और 2020 में 15 सबसे खर्चीलें देशों में से चीन के अलावा सबका सैन्य बोझ बढ़ गया है। 2020 में कोविड-19 महामारी के आर्थिक दुष्प्रभाव के चलते लगभग सभी देशों की जीडीपी में गिरावट आयी थी। सैन्य खर्च चाहे बढ़ा हो या घटा हो, 2020 में ज्यादातर देशों में इसके चलते सैन्य बोझ बढ़ गया। चोटी के 15 देशों में सऊदी अरब, रूस, इजराइल और अमरीका पर सबसे ज्यादा बोझ पड़ा।

क्षेत्रीय रुझान

रिपोर्ट में कहा गया है कि 2020 में दुनिया के पाँच क्षेत्रों में से जिन दो में सैन्य खर्च का भारी संकेन्द्रण हुआ है वह हैं अमरीकी महाद्वीप (उत्तरी और दक्षिणी अमरीका में 43 प्रतिशत) और एशिया तथा ओसियानिया (27 प्रतिशत) जो अपने आप में वैश्विक सैन्य खर्च के दो-तिहाई से भी ज्यादा है। 19 प्रतिशत सैन्य खर्च करने वाला यूरोप, तीसरे स्थान पर है। अफ्रीका ने सबसे कम क्षेत्रीय खर्च किया है, विश्व के कुल सैन्य खर्च का **केवल** 2.2 प्रतिशत। मध्यपूर्व के सीमित उपलब्ध आँकड़ों से पता चलता है कि यहाँ के देशों ने 2020 के वैश्विक सैन्य खर्च का 9 प्रतिशत खर्च किया है।

मध्यपूर्व

इसमें कहा गया है कि सबसे ज्यादा सैन्य खर्च का बोझ झेलने वाले 10 देशों में से पाँच मध्यपूर्व के देश हैं-- ओमान (जीडीपी का 11 प्रतिशत), सऊदी अरब (8.4 प्रतिशत), कुवैत (6.5 प्रतिशत), इजराइल (5.6 प्रतिशत) और जॉर्डन (5 प्रतिशत)। सबसे ज्यादा बोझ वाले बाकी पाँच देश हैं अल्जीरिया (6.7 प्रतिशत), अजरबैजान (5.4 प्रतिशत), अर्मेनिआ (4.9 प्रतिशत), मोरक्को (4.9 प्रतिशत) और रूस (4.3 प्रतिशत)।

(साभार काउन्टरकर्रेंट्स कलेक्टिव, अनुवाद-- अमित इकबाल)

कोरोना महामारी में मौतों की ऐतिहासिक समानता

ब्रिटिश शासन में भारत ने अनगिनत अकालों को झेला, लेकिन सबसे ज्यादा दर्दनाक और भयानक बंगाल का अकाल था। 1943 का वह भयावह दौर जिसमें तकरीबन 30 लाख लोग भूख से मार दिये गये। उस वक्त ब्रितानी प्रधानमंत्री थे विन्सटन चर्चिल। उस दौर में भी नदियों में लाशें तैर रही थीं। कुत्ते और गिद्ध लाशों को नोंचकर खा रहे थे। खेतों में लाशें पड़ी हुई सड़ रही थीं। लाशें इतनी ज्यादा थीं कि किसी में भी यह सामर्थ्य नहीं थी कि वह अन्तिम क्रियाकर्म कर सके। लोग कस्बों में जाकर सिर्फ माड़ माँग रहे थे, क्योंकि उन्हें पता था कि चावल की कमी है, इसलिए भात तो कोई देगा नहीं।

आज जिस मासूमियत से लोग कह रहे हैं कि इस महामारी की वजह नरेन्द्र मोदी नहीं हैं वैसा ही एक धड़ा उस वक्त भी मौजूद था जिसका मानना था कि अकाल के लिए चर्चिल दोषी नहीं हैं। कोई भी व्यक्ति महामारी या अकाल पैदा नहीं करता है। सभी जानते हैं कि यह कुदरती हादसा है। लेकिन ऐसे समय में जिम्मेदारी के पद पर बैठे व्यक्ति की भूमिका की पड़ताल से ही पता चल सकता है कि उसने चीजों को किस तरह सँभालने की कोशिश की? कोई कोशिश की भी या त्रासदी को नजरन्दाज करता रहा? कहीं ऐसा तो नहीं कि उसकी वजह से स्थिति और ज्यादा बदतर हुई?

भारत के लिए नियुक्त मंत्री लियोपोल्ड एमेरी के मुताबिक, एक बार चर्चिल ने अकाल के दौरान मदद करने को लेकर होने वाले विचार-विमर्श के दौरान कहा था कि भारत के लिए कोई भी मदद नाकाफी होगी क्योंकि "भारतीय खरगोश की तरह बच्चे पैदा करते हैं।"

आज भी पूरी बेशर्मी से स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी की वजह 'जनसंख्या' बतायी जा रही है। क्या आज भी हम औपनिवेशिक भारत में हैं, जहाँ लोग संसाधनों की कमी की वजह से मरते हैं तो उन्हें इसलिए मरने दिया जाता है क्योंकि उन्होंने लगातार अपनी आबादी बढ़ाई है? जनसंख्या अधिक होने से क्या व्यक्ति के तौर पर मिलने वाले अधिकार भी कम हो जाते हैं? संविधान में जीवन के अधिकार को मूल अधिकारों की श्रेणी में रखा गया है। यहाँ रह रहे हरेक व्यक्ति का अपना वजूद है और इस देश के निर्मिती में उसका योगदान भी है तब इस तरह की बातें सरकार के बचाव में क्यों की जाती हैं?

चर्चिल कट्टर साम्राज्यवादी और नस्लवादी था। वह भारत के लाखों लोगों की जान बचाने की जगह युद्ध जीतने को ज्यादा तरजीह दे रहा था। उसकी प्राथमिकता उस वक्त खाद्यान्न की जमाखोरी थी, काले लोगों से नफरत थी। लेकिन प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की प्राथमिकता क्या थी? वे तो इसी देश के हैं । उन्होंने क्यों अपने लोगों को मरने दिया? इतिहास में यह भी दर्ज किया जाएगा कि कोविड महामारी के दौरान उनकी प्राथमिकता चुनाव जीतना थी।

-- विवेक मिश्र के फेसबुक पेज (3 जून 2021) से साभार

फासीवाद-विरोधी बेला चाओ का नया वर्जन “वापस जाओ”

बेला चाओ 19 वीं सदी में इटली में धान के खेतों में क्रूर परिस्थितियों में काम करने वाले मजदूरों की स्थिति को उजागर करने के लिए महिला किसानों द्वारा गाया गया। गीत बेला चाओ बीते सालों में दुनिया भर में फ़ासीवाद-विरोधी, स्वतंत्रता और प्रतिरोध का प्रतीक गीत बन कर उभरा है।

बेला चाओ उत्तरी इटली के धान के खेतों में कठोर परिस्थितियों में काम कर रहे मोंडीना श्रमिकों ने इस गीत के माध्यम से अपना प्रतिरोध जताया था। बाद में इटैलियन पार्टीसंस द्वारा इटालियन गृहयुद्ध के दौरान 1943 और 1945 के बीच नाजी जर्मन और फासीवादी ताकतों के खिलाफ प्रतिरोध के एक गीत के रूप में गाया गया था। देसी संस्करण भारतीय जनता पार्टी सरकार द्वारा पारित तीन कृषि कानूनों के खिलाफ महीनों से राजधानी दिल्ली की सीमा पर आन्दोलन कर रहे किसानों ने वैसे तो प्रदर्शन के विभिन्न स्वरुप दिखाये हैं लेकिन बेला चाओ गाने का पंजाबी संस्करण ‘फार्म लॉज वापस जाओ’ सिंघू बॉर्डर पर प्रदर्शन कर रहे किसानों का ‘अपना’ गाना बन गया है। ‘फार्म लॉज वापस जाओ’ शीर्षक के साथ यूट्यूब पर बीते दिसम्बर में अपलोड किये गये इस गीत के वीडियो में दिखाये गये प्रत्येक दृश्य को सिंघू बॉर्डर पर फिल्माया गया है। पंजाबी में लिखे इस गीत के बीच किसानों की आवाजें भी सुनी जा सकती हैं।

यह पहला मौका नहीं है जब बेला चाओ ने भारत में किसी आन्दोलन के सुरों में आवाज फूँकी हो। अक्टूबर 2019 में जामिया मिलिया इस्लामिया में इजरायल समर्थित एक कार्यक्रम का विरोध करने पर 5 छात्र-छात्राओं को यूनिवर्सिटी प्रशासन द्वारा ‘कारण बताओ नोटिस’ जारी किया गया था। तब, पूजन साहिल ने जामिया की सेंट्रल कैंटीन के सामने चल रहे छात्रों के प्रदर्शन में जाकर बेला चाओ का हिन्दी संस्करण ‘वापस जाओ’ गाना गया था। बूम से बात करते हुए पूजन साहिल ने बताया कि उन्होंने बेला चाओ का एक रूपान्तरण किसानों के आन्दोलन से भी बहुत पहले गाया था। “उस वक्त जब छात्र आन्दोलन चल रहे थे जेएनयू और जामिया में फीस हाइक को ले कर, मेरे कुछ दोस्तों ने मुझे सुझाया की बेला चाओ का एक हिन्दी रूपान्तरण भी होना चाहिए ताकि लोग गीत से जुड़ सके। उस वक्त मैंने एक हिन्दी रूपान्तरण बनाया था,” पूजन साहिल ने हमें बताया। सीएए-एनआरसी के विरोध प्रदर्शन के दौरान, उन्होंने इस कानून के खिलाफ देश भर के विभिन्न प्रदर्शन स्थलों के दृश्य दिखाते हुए गीत बनाया था। गाने के वीडियो में जामिया मिलिया इस्लामिया और अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में सीएए बिल का विरोध कर रहे छात्र-छात्राओं पर पुलिस द्वारा कथित क्रूर हमले के दृश्य दिखाये थे। तब यह गीत, देशभर में हुए विरोध-प्रदर्शनों में एक सुर में गाया जा रहा था।

(साभार हिन्दी बूमलाइव डॉट इन)

क्रांतिकारी भगवतीचरण वोहरा

नौजवान साथियो,

हमारा देश एक अव्यवस्था की स्थिति से गुजर रहा है। चारों तरफ एक-दूसरे के प्रति अविश्वास और हताशा का साम्राज्य है। देश के बड़े नेताओं ने अपने आदर्श के प्रति आस्था खो दी है और उसमें से अधिकांश को जनता का विश्वास प्राप्त नहीं है। भारत की आजादी के पैरोकारों के पास कोई कार्यक्रम नहीं है, और उनमें उत्साह का अभाव है। चारों तरफ अराजकता है। लेकिन किसी राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया में अराजकता एक अनिवार्य तथा आवश्यक दौर है। ऐसी ही नाजुक घड़ियों में कार्यकर्ताओं की ईमानदारी की परख होती है, उनके चरित्र का निर्माण होता है, वास्तविक कार्यक्रम बनता है, और तब नये उत्साह, नयी आशाओं, नये विश्वास और नये जोशो-खरोश के साथ काम आरम्भ होता है। इसलिए इसमें मन ओछा करने की कोई बात नहीं है।

हमने कुछ भी हासिल नहीं किया और हम किसी भी उपलब्धि के लिए कुछ भी त्याग करने को तैयार नहीं हैं। सम्भावित उपलब्धि में किस सम्प्रदाय का क्या हिस्सा होगा, यह तय करने में हमारे नेता आपस में झगड़ रहे हैं। महज अपनी बुजदिली को और आत्मत्याग की भावना के अभाव को छिपाने के लिए वे असली समस्या पर पर्दा डालकर नकली समस्याएँ खड़ी कर रहे हैं। यह आरामतलब राजनीतिज्ञ हड्डियों के उन मुट्ठीभर टुकड़ों पर आँखें गड़ाये बैठे हैं जिन्हें, जैसा उनका विश्वास है, सशक्त शासकगण उनके सामने फेंक सकते हैं। यह बहुत ही अपमानजनक बात है। जो लोग आजादी की लड़ाई में बढ़कर आते हैं वे बैठकर यह तय नहीं कर सकते कि इतने त्याग के बाद उनकी कामयाबी होगी और उसमें उन्हें इतना हिस्सा सुनिश्चित रहना चाहिए। इस प्रकार के लोग कभी भी किसी प्रकार का त्याग नहीं करते। हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो बगैर उम्मीदों के, निर्भय होकर और बगैर किसी प्रकार की हिचकिचाहट के लड़ने को तैयार हों और बगैर सम्मान के, बगैर आँसू बहानेवालों के और बगैर प्रशस्तिगान के मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हों। इस प्रकार के उत्साह के अभाव में हम दो मोर्चोंवाले उस महान युद्ध को नहीं लड़ सकेंगे, जिसे हमें लड़ना है यह युद्ध दो मोर्चों वाला है, क्योंकि हमें एक तरफ अन्दरूनी शत्रु से लड़ना है और दूसरी तरफ बाहरी दुश्मन से। हमारी असली लड़ाई स्वयं अपनी अयोग्यताओं के खिलाफ है। हमारा शत्रु और कुछ हमारे अपने लोग निजी स्वार्थ के लिए उनका फायदा उठाते हैं।

युवकों के सामने जो काम है, वह काफी कठिन है और उनके साधन बहुत थोड़े हैं। उनके मार्ग में बहुत सी बाधाएँ भी आ सकती हैं। लेकिन थोड़े किन्तु निष्ठावान व्यक्तियों की लगन उन पर विजय पा सकती है। युवकों को आगे जाना चाहिए। उनके सामने जो कठिन एवं बाधाओं से भरा हुआ मार्ग है, और उन्हें जो महान कार्य सम्पन्न करना है, उसे समझना होगा। उन्हें अपने दिल में यह बात रख लेनी चाहिए कि "सफलता मात्रा एक संयोग है, जबकि बलिदान एक नियम है।"...

नौजवानों को चाहिए कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक, गम्भीरता से, शान्ति और सब्र के साथ सोचें। उन्हें चाहिए कि वे भारतीय स्वतन्त्रता के आदर्श को अपने जीवन के एकमात्र लक्ष्य के रूप में अपनायें। उन्हें अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए। उन्हें अपने आपको बाहरी प्रभावों से दूर रहकर संगठित करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि मक्कार तथा बेईमान लोगों के हाथों में न खेलें, जिनके साथ उनकी कोई समानता नहीं है और जो हर नाजुक मौके पर आदर्श का परित्याग कर देते हैं। उन्हें चाहिए कि संजीदगी और ईमानदारी के साथ "सेवा, त्याग, बलिदान" को अनुकरणीय वाक्य के रूप में अपना मार्गदर्शक बनायें। याद रखिये कि "राष्ट्रनिर्माण के लिए हजारों अज्ञात स्त्री-पुरुषों के बलिदान की आवश्यकता होती है जो अपने आराम व हितों के मुकाबले, तथा अपने एवं अपने प्रियजनों के प्राणों के मुकाबले देश की अधिक चिन्ता करते हैं।"

(भगवतीचरण वोहरा बी. ए., प्रचारमन्त्री, नौजवान भारत सभा द्वारा अरोड़ वंश प्रेस, लाहौर से मुद्रित एवं प्रकाशित)